ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला [अपभ्रंश ग्रन्थाङ्क २]

कविराज स्वयम्भूदेव विरचित

पउमचरिउ

[पद्मचरित]

हिन्दी अनुवाद सहित

द्वितीय भाग—अयोध्याकाण्ड



—अनुवादक—

श्री देवेन्द्रकुमार जैन एम० ए०, साहित्याचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रथम आवृत्ति
१००० प्रति

माघ वीर नि० सं० २४८४
वि० सं० २०१४
जनवरी १९५८

मूल्य ३ रु०

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें
तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा
संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

अपभ्रंश ग्रन्थाङ्क २

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन,
एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ० आ० ने० उपाध्ये
एम० ए०, डी० लिट्०



प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड,
वाराणसी

• मुद्रक •
बाबूलाल जैन फागुल्ल, सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

स्थापनाब्द
फाल्गुन कृष्ण ९
वीर नि० २४७०

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी सन् १९४४

JÑĀNAPĪTH MŪRTIDEVĪ JAIN GRANTHMĀLĀ
Apabhransha Grantha No. 2

PAUMCHHRIU

of

[illegible] SWAYAMBHŪDEVE

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनूं
को सप्रेम भेंट –

Translated by
Devendra Kumar Jain M. A., Sahityāchārya

Published by
Bhāratīya Jnānapītha Kāshī

First Edition
1000 Copies

MAGHA VIR SAMVAT 2484
VIKRAMA SAMVAT 2014
JANUARY 1958

Price
Rs. 3/-

Bhāratīya Jnāna-Pīṭha Kāshī

FOUNDED BY

SETH SHĀNTI PRASĀD JAIN

In Memory of his late Benevolent Mother

SHRĪ MURTĪ DEVĪ

BHĀRATĪYA JÑĀNA-PĪTHA MŪRTI DEVĪ JAIN GRANTHAMĀLĀ

Apabhransh Granatha No. 2.

In this Granthamālā critically edited Jain āgamic philosophical, paurānic, literary, historical and other original texts available in prākrit, sanskrit, apabhransha, hindi, kannada and tamil etc., will be published in their respective languages with their translations in modern languages

AND

Catalogues of Jain Bhandaras, inscriptions, studies of competent scholarts & popular jain literature will also be published

General Editor	Publisher
Dr. Hiralal Jain, M A D. Litt.	**Ayodhya Prasad Goyaliya**
Dr.A.N. Upadhye M A D Litt.	Secy. Bharatiya Jnanapitha Durgakund Road, Varanasi.

Founded on Phalguna Krishna 9 Vira Sam. 2470

Vikrama Samavat 2000
18th Feb.1944.

विषय-सूची

इक्कीसवीं संधि

बाईसवीं संधि

तेईसवीं संधि

चौवीसवीं संधि

सत्ताईसवीं संधि

अट्ठाईसवीं सन्धि

उनतीसवीं सन्धि

तीसवीं सन्धि

इकतीसवीं सन्धि

बत्तीसवीं सन्धि

तैंतीसवीं सन्धि

चौंतीसवीं सन्धि

पैंतीसवीं सन्धि

छत्तीसवीं सन्धि

सैंतीसवीं सन्धि

अड़तीसवीं सन्धि

उनतालीसवीं सन्धि

चालीसवीं सन्धि

इकतालीसवीं सन्धि

ब्यालीसवीं सन्धि

[२]

पउमचरिउ

•

कइराय-सयम्भुएव-किउ

पउमचरिउ



बीअं उज्झाकण्डं

२१. एक्कवीसमो संधि

सायरबुद्धि विहीसणेण परिपुच्छिउ 'जयसिरि-माणणहों।
कहें केत्तडउ कालु अचलु जउ जीविउ रज्जु दसा दसाणणहों' ॥

[१]

पभणइ सायरबुद्धि भडारउ। कुसुमाउह-सर-पसर-णिवारउ ॥ १ ॥
'सुणु अक्खमि रहुवंसु पहाणउ। दसरहु अत्थि अउज्झहें राणउ ॥ २ ॥
तासु पुत्त होसन्ति धुरन्धर। वासुएव-बलएव धणुद्धर ॥ ३ ॥
तेहिँ हणेवउ रक्खु महारणें। जणय-णराहिव-तणयहें कारणें ॥ ४ ॥
तो सहसत्ति पलित्तु विहीसणु। णं घय-घडएँहिं सित्तु हुआसणु ॥ ५ ॥
'जाम ण लङ्का-णयरि मुक्कइ। जाम ण मरणु दसाणणें ढुक्कइ ॥ ६ ॥
तोडमि ताम ताहुँ सय-खण्डइँ। दसरह-जणय-णराहिव-मुण्डइँ' ॥ ७ ॥
तो तं वयणु सुणेंवि कलियारउ। वद्धावणहँ पधाइउ णारउ ॥ ८ ॥
'अज्जु विहीसणु उप्परि एसइ। तुम्हहँ बिहि मि सिरइँ तोडेसइ' ॥ ९ ॥

घत्ता

दसरह-जणय विणासिय लेप्पमउ थवेप्पिणु अप्पणउ।
णियइँ सिरइँ विज्जाहरेंहिं परियणहों करेप्पिणु जप्पणउ ॥१०॥

पउमचरिउ

अयोध्याकाण्ड

इक्कीसवीं सन्धि

[१] एक दिन विभीषणने सागरबुद्धि भट्टारकसे पूछा कि "जयलक्ष्मीके प्रिय, रावणकी विजय, जीवन और राज्य, कितने समय तक अविचल रहेगा।" तब उन्होंने कहा—"सुनो, मैं बताता हूँ, अयोध्याके रघुवंशमें दशरथ नामका मुख्य राजा होगा, उसके दो पुत्र धुरंधर धनुर्धारी, वासुदेव और बलदेव होंगे, राजा जनककी कन्याको लेकर, होनेवाले महायुद्धमें रावण उनके द्वारा मारा जायगा"। यह सुनकर विभीषण एकदम उत्तेजित हो उठा मानो घीका घड़ा आगमें पड़ गया हो। उसने कहा—"लंकाकी बेल न सूखे और रावणका मरण न हो, इसलिए क्यों न मैं, भयभीषण दशरथ और जनकके सिरोंको तुड़वा दूँ"। यह जानकर कलहकारी नारद वर्धमान नगर पहुँचा। उसने दशरथ और जनकसे कहा कि आज विभीषण आयगा और तुम दोनोंके सिर तोड़ देगा। तब, वे दोनों अपनी लेपमयी मूर्ति स्थापित करवा कर वहाँसे चल दिये। विद्याधर आये और उन्हीं लेपमयी मूर्तियोंके सिर काटकर ले गये ॥ १-१० ॥

[२]

दसरह-जणय वे वि गय तेत्तहेँ। पुरवरु कउतुकमङ्गलु जेत्तहेँ ॥ १ ॥
जेम्मइ जेत्थु अमग्गिय-लद्धउ। सूरकन्त-मणि-हुयवह-रद्धउ ॥ २ ॥
जहिं जलु चन्दकन्ति-णिज्झरणेँहिँ। सुप्पइ पडिय-पुप्फ-पत्थरणेँहिँ ॥ ३ ॥
जहिँ णेउर-झङ्कारिय-चलणेँहिँ। रम्मइ अचण-पुप्फ-क्खलणेँहिँ ॥ ४ ॥
जहिँ पासाय-सिहरेँ णिहसिज्जइ। तेण मियङ्कु वङ्कु किम्मु किज्जइ ॥ ५ ॥
तहिँ सुहमइ-णामेण पहाणउ। णं सुरपुरहोँ पुरन्दरु राणउ ॥ ६ ॥
पिहुसिरि तहो महएवि मणोहर। सुरकरि-कर कुम्भयल-पओहर ॥ ७ ॥
णन्दणु ताहेँ दोणु उप्पज्जइ। केकय तणय काइँ वण्णिज्जइ ॥ ८ ॥
सयल - कला - कलात्र - संपण्णी। णं पच्चक्ख लच्छी अवइण्णी ॥ ९ ॥

घत्ता

ताहेँ सयम्वरेँ मिलिय वर हरिवाहण-हेमप्पह-पमुह।
णाइँ समुद्द-महासिरिहेँ थिय जलवाहिणि-पवाह समुह ॥१०॥

[३]

तो करेणु आरुहेँवि विणिग्गय। णं पच्चक्ख महासिरि-देवय ॥ १ ॥
पेक्खन्तहेँ णरवर - संघायहुँ। भूगोयर - विज्जाहर - रायहुँ ॥ २ ॥
घित्त माल दससन्दण - णामहोँ। मणहर-गइएँ रइएँ णं कामहोँ ॥ ३ ॥
तहिँ अवसरेँ विरुद्ध हरिवाहणु। धाइउ 'लेहु' भणन्तु स-साहणु ॥ ४ ॥
'वरु आहणहोँ कण्ण उद्दालहोँ। रयणइँ जेम तेम महिपालहोँ ॥ ५ ॥
सुहमइ रहु-सुएण त्रिण्णप्पइ। 'धीरउ होहि माम को चप्पइ ॥ ६ ॥
मइँ जियन्तेँ अणरण्णहोँ णन्दणेँ'। एउ भणेवि परिट्ठिउ सन्दणेँ ॥ ७ ॥
केकइ धुरहिँ करेप्पिणु सारहि। तहिँ पयट्टु जहिँ सयल महारहि ॥ ८ ॥

[२] जनक और दशरथ दोनों ही वहाँसे कौतुकमंगल नगर चले गये, उस नगरमें सूर्यकांतमणिकी आगमें पका हुआ भोजन, विना माँगे ही खानेके लिए मिलता था और चंद्रकांत मणियोंके झरनोंसे पानी। फूलोंसे ढके ऐसे पत्थर सोनेके लिए मिल जाते थे जो नूपुरोंसे झंकृत चरणों और पूजाके कुसुमोंके गिरनेसे सुन्दर हो रहे थे। चन्द्रमा वहाँके प्रासादोंके शिखरोंसे घिसकर टेढ़ा और काला हो गया था। उस नगरका शासक शुभमति था। वैसे ही जैसे सुरपुरका शासक इन्द्र है। उसकी सुन्दरी कुंभस्तनी पृथुश्री रानीसे दो सन्तान उत्पन्न हुईं। उनमेंसे कैकेयीका वर्णन किस प्रकार किया जाय। वह सभी कलाओंके कलापसे संपूर्ण थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो साक्षात् लक्ष्मीने अवतार लिया हो। जिस प्रकार समुद्रकी महाश्रीके सम्मुख नदियोंके नाना प्रवाह आते हैं उसी प्रकार, उसके स्वयंवरमें हरिवाहन हेमप्रभ प्रभृति अनेक राजा आये ॥१-१०॥

[३] वह, हथिनीपर बैठकर ऐसे निकली मानो महालक्ष्मी ही हो। नरवर-समूहों, मनुष्य, तथा विद्याधर राजाओंके देखते-देखते, उसने दशरथके गलेमें माला ऐसे डाल दी, मानो कमनीय गतिवाली रतिने ही कामदेवके गलेमें माला डाल दी हो। उस अवसर पर हरिवाहन बिगड़ उठा, 'पकड़ो' यह कहकर, वह सेना सहित दौड़ा। वह फिर बोला, "इस राजासे कन्या वैसे ही छीन ले जैसे सर्पसे मणि छीन लिया जाता है।" तब दशरथने अपने ससुर शुभमतिको धीरज बँधाते हुए कहा, "आप ढाढ़स रक्खें। अणरण्णके पुत्र मेरे जीतेजी, कौन इसे चाँप सकता है।" वह रथ पर चढ़ गया—और कैकेयी धुरा पर सारथि बनकर जा बैठी। वह महारथियोंके बीच गया। उसने अपनी नई पत्नीसे

घत्ता

तो वोल्लिज्जइ दसरहेंण 'दुद्धर-णिवारिय-गयवरइँ ।
रज्जु वाहेँवि तहिँ णेहि पियएँ थय-छत्तइँ जेत्थु णिरन्तरइँ ॥ ९ ॥

[४]

तं णिसुणेँवि परिओसिय-मणएँ । वाहिउ रहवरु पिहुमहि-तणएँ ॥ १ ॥
तेण वि सरहिँ परज्जिउ साहणु । भग्गु स-हेमप्पहु हरिवाहणु ॥ २ ॥
परिणिय केक्कइ दिण्णु महा-वरु । चवइ अउज्झाउर - परमेसरु ॥ ३ ॥
'सुन्दरि मग्गु मग्गु जं रुच्चइ' । सुहमइ-सुयएँ णवेप्पिणु वुच्चइ ॥ ४ ॥
'दिण्णु देव पइँ मग्गमि जइयहुँ । णियय-सच्चु पालिज्जइ तइयहुँ' ॥ ५ ॥
एम चवन्तइँ थण-कम-संकुलेँ । थियइँ वे वि पुरेँ कउतुकमङ्गलेँ ॥ ६ ॥
बहु - वासरेहिँ अउज्झ पइट्ठइँ । सइ-वासव इव रज्जेँ वइट्ठइँ ॥ ७ ॥
सयल-कला - कलाव - संपण्णा । ताम चयारि पुत्त उप्पण्णा ॥ ८ ॥

घत्ता

रामचन्दु अपराइयहेँ सोमित्ति सुमित्तिहेँ एक्कु जणु ।
भरहु पसन्थउ केक्कइहेँ सुप्पहहेँ पुत्तु पुणु सत्तुहणु ॥ ९ ॥

[५]

एव चयारि पुत्त तहोँ रायहोँ । णाइँ महा-समुद्द महि-मायहोँ ॥ १ ॥
णाइँ दन्त णिव्वाण - गइन्दहोँ । णाइँ सगोयर सुअण-विन्दहोँ ॥ २ ॥
जणउ वि मिहिला-णयरें पइट्ठउ । समउ विदेहएँ रज्जेँ णिविट्ठउ ॥ ३ ॥
ताहँ विहि मि वर-विक्कम-सायउ । भामण्डलु उप्पण्णु स-सीयउ ॥ ४ ॥
पुव्व-वइरु संभरेँवि अ - मेत्तेँ । डाहिण लेवि दरिसिउ णिउ देवेँ ॥ ५ ॥
तहिँ रहणेउरचक्कवाल - पुरेँ । बहल-धवल-सुह - पङ्कपङ्कुरेँ ॥ ६ ॥
चन्दगइहेँ चन्दुज्जल - वयणहोँ । णन्दणवण-समीवेँ तहोँ सयणहोँ ॥ ७ ॥
घत्तिउ पिङ्गलेण अमरिन्दें । पुप्फवइहेँ अल्लविउ णरिन्दें ॥ ८ ॥

कहा "प्रिये रथ हाँककर वहाँ ले चलो जहाँ अपने तेजसे सूरजको हटानेवाले अनेक छत्र और ध्वज हैं" ॥१-९॥

[४] यह सुनकर, जनोंको संतुष्ट करने वाली कैकेयीने रथ [हाँका। तब दशरथने भी बाणोंसे शत्रु-सेनाको रोककर हेमप्रभु और हरिवाहनको भग्न कर दिया। कैकेयीसे विवाह हो चुकनेपर दशरथने उसे दो महा वर दिये। अयोध्याके अधिपति दशरथने उससे कहा "सुन्दरी माँगो माँगो, जो भी अच्छा लगता हो।" तब शुभमतिकी कन्या कैकेयीने माथा झुकाकर कहा, "देव, जब मैं माँगूँ तब दे देना। तब तक अपने सत्यका पालन करते रहिए।" ऐसा कह सुनकर वे दोनों कुछ दिनों तक धन-धान्यसे व्याप्त कौतुकमंगल नगरमें रहे। फिर बहुत समयके बाद उन्होंने अयोध्या नगरीमें प्रवेश किया। वे दोनों इन्द्र और शचीकी तरह राजगद्दी पर बैठे। दशरथ राजाके सकल कलाओंसे संपूर्ण चार पुत्र उत्पन्न हुए, सबसे बड़ी कौशल्यासे रामचन्द्र, सुमित्रासे लक्ष्मण, कैकेयीसे धुरन्धर भरत, और सुप्रभासे शत्रुघ्न उत्पन्न एक पुत्र हुआ ॥ १-९ ॥

[५] राजा दशरथके वे चार पुत्र मानो भूमण्डलके लिए चार महासमुद्र, ऐरावत हाथीके दाँत या सज्जनोंके मनोरथोंके समान थे। जनक भी मिथिलापुरीमें जाकर विदेहका राज्य करने लगे। उनके भी दूसरे विक्रमकी तरह भामंडल, तथा सीता देवी उत्पन्न हुई। परन्तु भामंडलको, पिछले जन्मके वैरका स्मरणकर पिंगल देव उसे हरकर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें ले गया, और उसने उसे, स्वच्छ सुधा चूर्णसे सफेद रतनूपुरचक्रवाल-पुरमें चन्द्रमुख और चन्द्रगति नामके विद्याधरोंके उपवनके समीप डाल दिया। विद्याधरने उठाकर उसे अपनी पत्नी पुष्पावतीको

घत्ता

ताव रज्जु जणयहोँ तणउ उद्दद्धु महाडइ-वासिएँहिँ ।
वब्बर-सवर-पुलिन्दएँहिँ हिमवन्त-विञ्झ-संवासिएँहिँ ॥ ६ ॥

[६]

वेढिय जणय-कणय दुप्पेच्छेँहिँ । वब्बर-सवर-पुलिन्दा - मेच्छेँहिँ ॥ १ ॥
गरुयासङ्कएँ वाल - सहायहोँ । लेहु विसज्जिउ,दसरह-रायहोँ ॥ २ ॥
दूरइँ देवि सो वि सण्णज्झइ । रामु स-लक्खणु ताव विरुज्झइ ॥ ३ ॥
'मइँ जीयन्तेँ ताय तुहुँ चल्लहि । हणमि वइरि छुडु हत्थुत्थल्लहि' ॥ ४ ॥
वुत्तु णराहिवेण 'तुहुँ वालउ । रम्भा-खम्भ - गब्भ-सोमालउ ॥ ५ ॥
किह आलग्गहि णरवर-विन्दहुँ । किह घड भञ्जहि मत्त-गइन्दहुँ ॥ ६ ॥
किह रिउ-रहहँ महारहु चोयहि । किह वर-तुरय तुरङ्गहुँ ढोयहि' ॥ ७ ॥
पभणइ रामु 'ताय पल्लट्टहि । हउँ जेँ पहुच्चमि काइँ पयट्टहि ॥ ८ ॥

घत्ता

किं तुम हणइ ण वालु रवि किं वालु दवग्गि ण डहइ वणु ।
किं करि दलइ ण वालु हरि किं वालु ण डङ्कइ उरगमणु' ॥९॥

[७]

पहु पल्लट्टु पयट्टिउ राहउ । दूरासंविय - मेच्छ - महाहउ ॥ १ ॥
दूसहु सो जि अण्णु पुणु लक्खणु । एक्कु पवणु अण्णेक्कु हुआसणु ॥ २ ॥
विण्णि मि भिडिय पुलिन्दहोँ साहणेँ । रहवर - तुरय-जोह-गय-वाहणेँ ॥ ३ ॥
दीहर - सरेँहिँ वइरि संताविय । जणय-कणय रणेँ उव्वेढाविय ॥ ४ ॥
धाइउ समरङ्गणेँ तसु राणउ । वब्बर-सवर-पुलिन्द - पहाणउ ॥ ५ ॥
तेण कुमारहोँ चूरिउ रहवरु । छिण्णु छत्तु दोहाइउ धणुहरु ॥ ६ ॥

दे दिया। ठीक इसी समय, महाअटवी हिमवन्त, और विन्ध्याचलमें रहनेवाले वर्वर शवर, पुलिंद और म्लेच्छोंने राजा जनकके राज्यको छीनना शुरू कर दिया ॥ १–९ ॥

[६] वर्वर शवर, पुलिंद और म्लेच्छोंसे अपनी सेना घिर जानेपर राजा जनकने बहुत भारी आशंकासे बालकोंकी सहायताके लिए राजा दशरथके पास लेखपत्र भेजा। उस पत्रसे यह जानकर राजा दशरथ स्वयं जानेकी तैयारी करने लगे। तब इसपर राम और लक्ष्मणने आपत्ति प्रकट की। रामने कहा, "मेरे जीवित रहते हुए आप जा रहे हैं। आप तो केवल यह आदेश दें कि मैं शीघ्र शत्रुका संहार करूँ।" इसपर राजाने कहा, "तुम अभी बच्चे हो, केलेके गाभकी तरह अत्यन्त सुकुमार तुम बड़े-बड़े राज-समूहोंसे कैसे लड़ोगे? हाथियोंकी घटा कैसे विदीर्ण करोगे? महारथसे शत्रुओंके रथको कैसे प्रेरित करोगे? अपने उत्तम अश्वोंसे अश्वोंके निकट कैसे पहुँचोगे?" तब रामने कहा—"तात, आप लौट जाइये, हम लोग ही काफी हैं, आप क्यों प्रवृत्ति कर रहे हैं। क्या बालरवि अन्धकार नष्ट नहीं करता? क्या छोटी दावाग्नि जंगल नहीं जला देती? क्या साँपका बच्चा नहीं काटता?" ॥ १–९ ॥

[७] तब दशरथ घर लौट आये। और राघव दूरसे ही म्लेच्छोंके महायुद्धकी सूचना पाकर चल पड़े। उनके साथ दूसरा केवल दुःसह लक्ष्मण था, मानो एक पवन था तो दूसरा आग। वे दोनों श्रेष्ठ रथ, अश्व, योधा और गजवाहनों सहित म्लेच्छोंसे लड़े। अपने लम्बे बाणोंकी मारसे शत्रु-सेनाको सन्त्रस्त कर उन्होंने सीताका उद्धार किया। तब शवर और पुलिन्दोंका प्रधानतम नामका राजा युद्धमें आया। उसने कुमारके रथको नष्ट कर दिया, और छत्र छिन्न-भिन्न। धनुषके दो टुकड़ेकर दिये। तब रामने नाग

तो राहवेंण लइज्जइ वाणेंहिँ। णाइणि-णाय- काय-परिमाणेंहिँ ॥ ७ ॥
साहणु भग्गउ लग्गु उमग्गेंहिँ। करयलेंहिँ ओलम्बिय-खग्गेंहिँ ॥ ८ ॥

घत्ता

दमहिँ तुरङ्गहिँ णीसरिउ भिल्लाहिउ भञ्जेंवि आहवहोँ।
जाणइ जणय-णराहिवेंण तहिँ कालेँ वि अप्पिय राहवहोँ ॥९॥

[८]

बब्बर - सबर - वरूहिणि भग्गी। जणयहोँ जाय पिहिवि आवग्गी ॥ १ ॥
णाणा - रयणाहरणहिँ पुज्जिय। वासुएव - वलएव विसज्जिय ॥ २ ॥
सीयहेँ देह रिद्धि पावन्तिहेँ। एक्कु दिवसु दप्पणु जोयन्तिहेँ ॥ ३ ॥
पडिमा- छलेँण महा-भय-गारउ। आरिस-वेसु णिहालिउ णारउ ॥ ४ ॥
जणय-तणय सहसत्ति पणट्ठी। सीहागमणें कुरङ्गि व तट्ठी ॥ ५ ॥
'हा हा माएँ' भणन्तिहिँ सहियहिँ। कलयलु किउ सज्झस-गह-गहियहिँ।६।
अमरिस-कुद्धुद्धाइय किङ्कर। उक्खय-वर-करवाल-भयङ्कर ॥ ७ ॥
मिलेंवि तेहिँ कह कह विणमारिउ। लेंवि अद्धचन्देंहिँ णीसारिउ ॥ ८ ॥

घत्ता

गउ स-पराहउ देवरिसि पडेँ पडिम लिहेंवि सीयहेँ तणिय।
दरिसाविय भामण्डलहोँ विस-जुत्ति णाइँ णर-घारणिय ॥ ९ ॥

[९]

दिट्ठ जं जेँ पडेँ पडिम कुमारें। पञ्चहिँ सरहिँ विद्धु णं मारें ॥ १ ॥
सुसिय-वयणु घुम्मइय-णिडालउ। वलिय-अङ्गु मोडिय-भुव-डालउ ॥ २ ॥
वद्ध-केसु पक्खोडिय-वच्छउ। दरिसाविय-दस-कामावत्थउ ॥ ३ ॥
चिन्त पढम-थाणन्तरें लग्गइ। वीयएँ पिय-मुह-दंसणु मग्गइ ॥ ४ ॥
तइयएँ ससइ दीह-णीसासें। कणइ चउत्थएँ जर-विण्णासें ॥ ५ ॥

और नागिनीके आकारके बाणोंसे उसका सामना किया। तब उसकी सेना, तलवार झुकाये हुए इधर-उधर भागने लगी। युद्धमें आहत होकर भिल्लराज दशों ही घोड़ोंसे किसी तरह भाग निकला। तब जनकने उसी समय रामके लिए जानकी अर्पित कर दी॥ १-६॥

[८] बर्बर शबरोंकी सेना नष्ट होने पर जनककी धरा स्वतन्त्र हो गई। उन्होंने रामलक्ष्मण (बलभद्र और वासुदेव) का तरह-तरहके आभरणों और रत्नोंसे आदर-सत्कारकर उन्हें विदा किया लेकिन इस समय तक सीता देवीकी देह-ऋद्धि (यौवन) विकसित हो चुकी थी। तब एक दिन दर्पण देखते हुए उसने (दर्पणकी) परछाईमें महाभयंकर नारदको ऋषिवेषमें देखा। वह तुरन्त ही उसी तरह मूर्छित हो गई जिस तरह कुरंगी सिंहके आनेपर भीत हो जाती है। आशंकाके ग्रहसे अभिभूत सहेलियोंने "हाय माँ, हाय माँ" कहते हुए कोलाहल किया। (उसे सुनकर) अनुचर अमर्ष और क्रोधसे भरकर तलवार उठाये हुए दौड़े। नारदको पाकर मारा तो नहीं परन्तु तो भी गर्दनिया देकर बाहर निकाल दिया। अपमानित होकर देवर्षि चले गये। उन्होंने तब, पटपर सीताका चित्र अंकित किया। और जाकर, विषयुक्तिकी भाँति उस प्रतिमा को भामंडलके लिए 'गृहपत्नी' के रूपमें दिखाया॥१-६॥

[६] कुमार भी उस चित्र-प्रतिमाको देखकर कामदेवके पंचबाणोंसे आहत हो गया। उसका मुख सूखने लगा। मस्तक घूमने लगा। अंग-अंगमें जलन होने लगी। भुजा रूपी डालें मुड़ने लगीं। बाल बँधे हुए होने पर भी वक्षःस्थल खुला हुआ था। कामकी दशों दिशाएँ इस प्रकार साफ प्रकट होने लगीं—पहली अवस्थामें चिंता, तो दूसरी अवस्थामें प्रियको देखनेको अभिलाषा हो रही थी। तीसरीमें लम्बी साँसे खींचना और चौथीमें ज्वरका आ

पञ्चमँ डाहँ अङ्गु ण मुच्चइ । छट्टएँ मुहहोँ ण काइ मि रुच्चइ ॥ ६ ॥
सत्तमँ थाणेँ ण गासु लइज्जइ । अट्टमँ गमणुम्माएँहिँ भिज्जइ ॥ ७ ॥
णवमँ पाण-संदेहहोँ ढुक्कइ । दसमएँ मरइ ण केम वि चुक्कइ ॥ ८ ॥

घत्ता

कहिउ णरिन्दहोँ किङ्करेँहिँ 'पहु दुक्करु जीवइ पुत्तु तउ ।
काहेँ वि कण्णहेँ कारणेँण सो दसमी कामावत्थ गउ ॥ ९ ॥

[१०]

णाग - णरामर - कुल-कलियारउ । चन्दगइएँ पडिपुच्छिउ णारउ ॥ १ ॥
'कहि कहोँ तणिय कण्ण कहिँ दिट्ठी । जा महु पुत्तहोँ हियएँ पइट्ठी' ॥ २ ॥
कहइ महारिसि 'मिहिला-राणउ । चन्दकेउ - णामेण पहाणउ ॥ ३ ॥
तहोँ सुउ जणउ तेत्थु मइँ दिट्ठउ । कण्णा-रयणु तिलोय-वरिट्ठउ ॥ ४ ॥
तं जइ होइ कुमारहोँ भायहोँ । तो सिय हरइ पुरन्दर-रायहोँ' ॥ ५ ॥
तं णिसुणेँवि विज्जाहर - णाहेँ । पेसिउ चवलवेउ असगाहेँ ॥ ६ ॥
'जाहि विदेहा-दइउ हरेवउ । मइँ विवाह-संबन्धु करेवउ' ॥ ७ ॥
गउ सो चन्दगइहेँ मुहु जोएँवि । इन्दुर ढुक्कु तुरङ्गमु होएँवि ॥ ८ ॥
कोड्डें चडिउ णराहिउ जावेँहिँ । दाहिण सेढि पराइउ तावेँहिँ ॥ ९ ॥
मिहिला-णाहु सुपुप्पिणु जिण-हरेँ । चवलवेउ पइसइ पुरेँ मणहरेँ ॥ १० ॥

घत्ता

आणिउ जणय-णराहिवइ णिय-णाहहोँ अक्खिउ स-रहसेँण ।
वन्दणहत्तिएँ सो वि गउ सहुँ पुत्तें विरह-परव्वसेँण ॥ ११ ॥

जाना। पाँचवींमें जलनका अंगोंको नहीं छोड़ना, छठीमें मुँहमें कोई भी चीज अच्छी नहीं लगना, सातवींमें एक कौर भी भोजन नहीं करना। आठवींमें चलना और जम्हाई लेना बंद हो जाना। नवींमें प्राणोंमें संदेह होने लगना और दशवींमें मृत्युका किसी भी तरह नहीं चूकना ॥१–८॥

उसकी यह हालत देखकर, अनुचरोंने जाकर राजासे कहा "देव, अब आपके पुत्रका जीवित रहना कठिन है। किसी लड़कीके (प्रेममें) वह कामकी दसवीं अवस्थाको पहुँच गया है" ॥६॥

[१०] जब विद्याधर चन्द्रगतिने, "नाग नर और अमर-कुलोंमें कलह करनेवाले नारदजीसे पूछा, "कहिए आपने कहीं कोई ऐसी भी कन्या देखी है जो मेरे पुत्रके हृदयमें बस सकती है।" यह सुनकर महर्षि बोले–"मिथिलामें चन्द्रकेतु नामका राजा हुआ था। उसके पुत्र जनककी कन्या सीता तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ है। वही इस कुमारके योग्य है अतः पुरंदरराज जनकसे उसका अपहरण कर लाओ।" यह सुनकर, विद्याधरस्वामी चंद्रगतिने, अकुंठित-गतिवाले चपलवेग नामके विद्याधरसे कहा—"जाओ, विदेहराज जनकको हरकर ले आओ, मुझे उससे विवाह-सम्बन्ध करना है।" वह भी चन्द्रगतिका मुँह देखकर चला गया, और घोड़ा बनकर राजा जनकके भवनमें पहुँचा। राजा जनक कौतुकसे जैसे ही उस घोड़े पर चढ़ा, वैसे ही वह दक्षिण श्रेणीमें पहुँच गया। विद्याधर मिथिला-नरेश जनकको जिन-मंदिरमें छोड़कर, अपने सुन्दर नगरमें प्रविष्ट हुआ, और अपने स्वामीके पास जाकर कहा, "मैं राजा जनकको ले आया हूँ।" यह सुनते ही, विरह-परवश अपने पुत्रके साथ चंद्रगति जिन-मंदिरमें, वंदना भक्तिके लिए गया ॥ १–११ ॥

[११]

विज्जाहर - णर - णयणाणन्दे॑हिँ । किउ संभासणुविहि मि परिन्दे॑हिँ ॥ १ ॥
पभणइ चन्द्रगमणु तोसिय-मणु । 'विण्णि वि किण्ण करहुँ सयणत्तणु ॥२॥
दुहिय तुहारी पुत्तु महारउ । होउ विवाहु मणोरह-गारउ' ॥ ३ ॥
अमरिसु णवर पवड्ढिउ जणयहाँ । 'दिण्ण कण्ण महँ दसरह-तणयहाँ ॥४॥
रामहाँ जयसिरि- रामासत्तहाँ । सवर - वरूहिणि-चूरिय-गत्तहाँ ॥ ५ ॥
तहिँ अवसरेँ वड्ढिय-अहिमाणें । वुत्तु णरिन्दु चन्दपत्थाणें ॥ ६ ॥
'कहिँ विज्जाहरु कहिँ भूगोयरु । गय-मसयहुँ वड्डारउ अन्तरु ॥ ७ ॥
माणुस-खेत्तु जेँ ताम कणिट्ठउ । जीविउ तहिँ कहिँ तणउ विसिट्ठउ' ॥८॥

घत्ता

भणइ णराहिउ 'केत्तिऍण जगेँ माणुस-खेत्तु जेँ अग्गलउ ।
जसु पासिउ तित्थङ्करेहिँ सिद्धत्तणु लद्धउ केवलउ' ॥ ९ ॥

[१२]

तं णिसुणेॅवि भामण्डल-वप्पें । वुच्चइ विज्जा-बल-माहप्पें ॥ १ ॥
'पगुण-गुणइँ अइ-दुज्जय-भावइँ । पुरेँ अच्छन्ति पुत्थु बे चावइँ ॥ २ ॥
वज्जावत्त- समुद्दावत्तइँ । जक्खारक्खिय-रक्खिय-गत्तइँ ॥ ३ ॥
किं भामण्डलेण किं रामें । ताइँ चडावइ जो आयामें ॥ ४ ॥
परिणउ सो ज्जें कण्ण एँउ पभणिउ'। तं जि पमाणु करेॅवि पहु भणियउ ॥५॥
गय स-सरासणु मिहिला-पुरवरु । वद्ध मञ्च आढत्तु सयम्वरु ॥ ६ ॥
मिलिय णराहिव जे जगेँ जाणिय। सयल वि धणु-पयाव-अवमाणिय ॥७॥
को वि णाहिँ जो ताइँ चडावइ । जक्ख-सहासहुँ मुहु दरिसावइ ॥ ८ ॥

घत्ता

जाम ण गुणहिँ चडन्ताइँ अहिजायइँ कउ सुह-दंसणइँ ।
अवसेँ जणहाँ अणिट्ठाइँ कुकलत्तइँ जेम सरासणइँ ॥ ९ ॥

[११] विद्याधर और मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले चंद्रगति और जनकमें बातें होने लगीं। संतुष्टमन चंद्रगतिने कहा, "हम दोनों स्वजनता (रिश्तेदारी) क्यों न कर लें, तुम्हारी लड़की और मेरा लड़का, यदि दोनोंका विवाह हो जाय तो मेरा मनोरथ सफल हो।" पर इस बातसे जनकका केवल क्रोध बढ़ा। उन्होंने कहा, "परंतु मैंने अपनी लड़की दशरथ-पुत्र रामको दे दी है, विजयश्री रूपी कामिनीमें आसक्त उन्होंने भीलोंकी सेनाको ध्वस्त किया है।" इस प्रसंग पर, चन्द्रगतिने अहंकारके स्वरमें कहा—"कहाँ विद्याधर और कहाँ धरतीवासी मनुष्य? इन दोनोंमें वही अन्तर है जो हाथी और मच्छरमें, और फिर मनुष्य क्षेत्र अत्यंत तुच्छ है। वहाँका जीवन स्तर भी कुछ विशेष ऊँचा नहीं है।" तब जनकने उत्तरमें कहा,—"विश्वमें मनुष्य क्षेत्र ही सबसे आगे और अच्छा है। उसमें ही तीर्थकरोंने भी मुक्ति और केवलज्ञान प्राप्त किया है" ॥१–६॥

[१२] यह सुनकर भामंडलके पिता चन्द्रगतिने, जो विचार और शक्तिमें बड़ा था, कहा—"अच्छा हमारे नगरमें, मजबूत प्रत्यंचाके दो दुर्जेय धनुष हैं, उनके नाम हैं वज्रावर्त और समुद्रावर्त। यक्ष-राक्षसों द्वारा वे सुरक्षित हैं। भामंडल और राममेंसे जो उन्हें चढ़ानेमें समर्थ होगा, सीता उसीको ब्याही जाय।" जनकने यह शर्त मान ली। और उन धनुषोंको लेकर वह अपनी नगरीको चले गये। मंच (और मंडप) बनवाकर उन्होंने स्वयंवर बुलवाया। दुनियाके जिन राजाओंको मालूम हो सका, वे सब उसमें आये, परन्तु धनुषके प्रतापके आगे सबको पराजित होना पड़ा। उनमें एक भी ऐसा नहीं था जो धनुषको चढ़ा सकता। हजारों यक्ष भी अपना मुँह दिखाकर रह गये। वे दोनों धनुष, कुलीकी तरह शुद्धवंश (बांस और कुल) के और शोभन होते

[१३]

जं णरवइ असेस अवयाणिय । दसरह-तणय चयारि वि आणिय ॥१॥
हरि-वलएव पढुक्किय तेत्तहें । सीय-सयम्वर-मण्डउ जेत्तहें ॥ २ ॥
दूर-णिवारिय-णरवर-लक्खेंहिं । धणुहराइँ अल्लवियइँ जक्खेंहिं ॥ ३ ॥
'अप्पण-अप्पणाइँ सु-पमाणइँ । णिव्वाडेवि लेहु वर-चावइँ' ॥ ४ ॥
लइयइँ सायर-वज्जावत्तइँ । गामहणा इव गुणेंहिं चडन्तइँ ॥ ५ ॥
मेल्लिउ कुसुम-वासु सुर-सत्थें । परिणिय जणय-तणय काकुत्थें ॥ ६ ॥
जे जे मिलिय सयम्वरें राणा । णिय-णिय णयरहों गय विद्दाणा ॥ ७ ॥
दिवसु वारु णक्खत्तु गणेप्पिणु । लग्गु जोग्गु गह-दुत्थु णिएप्पिणु ॥ ८ ॥

घत्ता

जोइसिएँहिं आएसु किउ 'जउ लक्खण-रामहुँ स-रहसहुँ ।
आयहँ कण्णहें कारणेंण होसइ विणासु वहु-रक्खसहुँ' ॥९॥

[१४]

'ससिवद्धणेण ससि-वयणियउ । कुवलय-दल-दीहर-णयणियउ ॥ १ ॥
कल-कोइल-वीणा-वाणियउ । अट्ठारह कण्णउ आणियउ ॥ २ ॥
दस लहु-भायरहुँ समप्पियउ । लक्खणहों अट्ठ परिकप्पियउ ॥ ३ ॥
दोणेण विसल्ला-सुन्दरिय । कण्हहों चिन्तविय मणोहरिय ॥ ४ ॥
वइदेहि अउज्झा-णयरि णिय । दसरहेंण महोच्छव-सोह किय ॥ ५ ॥
रह तिक्क-चउक्कहिँ चच्चरहिँ । कुङ्कुम-कप्पूर-पवर-वरहिँ ॥ ६ ॥
चन्दन-छडोह-दिज्जन्तएँहिँ । गायण-गीयहिँ गिज्जन्तएँहिँ ॥ ७ ॥
मणिमइयउ रइयउ देहलिउ । मोत्तिय कणएँहिँ रङ्गावलिउ ॥ ८ ॥
सोवण्ण-दण्ड-मणि-तोरणइँ । वद्धइँ सुरवर-मण-चोरणइँ ॥ ९ ॥

घत्ता

सीय-वलइँ पइसारियइँ जणें जय-जय-कारिज्जन्ताइँ ।
थियइँ अउज्झहें अवचलइँ रइ-सोक्ख-स यं भुञ्जन्ताइँ ॥१०॥

हुए भी, गुण (प्रत्यंचा और अच्छे गुण) पर नहीं चढ़ रहे थे, इसलिए अवश्य वे लोगोंको अनिष्टकर थे ॥ १–९ ॥

[१३] सब राजाओंके पराजित होनेपर बलभद्र और वासुदेव सीताके स्वयंवर-मंडपमें पहुँचे। तब लाखों राजाओंको दूरसे ही हटानेवाले रक्षक यक्षोंने दोनों धनुष बताते हुए उनसे कहा,— "लीजिये, अपने-अपने प्रमाणके अनुरूप इनमेंसे एक-एक चुन लें। उन्होंने समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष हाथमें लेकर मामूली धनुषोंकी भाँति, उनपर डोरी चढ़ा दी, तब देववृंदने फूलोंकी वर्षा की। राम-सीताका विवाह हो गया, जो राजा स्वयंवरमें आये थे वे उदास होकर अपने-अपने नगर चले गये। दिन-वार-नक्षत्र गिन लगनके योग्य ग्रहोंको देखकर, ज्योतिषियोंने भविष्यवाणी की, "इस कन्याके कारण बहुतसे राक्षसोंका विनाश होगा" ॥१–९॥

[१४] शशिवर्द्धन नामक राजाकी अठारह लड़कियाँ थीं। सभी चन्द्रमुखी कमलदलकी तरह आयत नेत्रवालीं, कोयल और वीणाकी तरह सुन्दर स्वरवाली थीं। उसने उनमेंसे दस रामके छोटे भाइयों (भरत और शत्रुघ्न) को तथा शेष आठ लक्ष्मणको विवाह दीं। द्रोणने भी अपनी सुन्दर कन्या लक्ष्मणको विवाह दी। वैदेहीके अयोध्या आनेपर राजा दशरथने धूमधामसे उत्सव किया। त्रिपथ चतुष्पथ और कथा-स्थान केशर और कपूर-धूलिसे पूरित थे। चन्दनका छिड़काव हो रहा था। तरह-तरहके गायन और गीत गाये जा रहे थे। देहली मणियोंसे रचित थी, और मोतियोंके दानोंसे 'रंगावली' बनाई जा रही थी। सुवर्ण और मणियोंसे बने, देवताओंका भी मन चुराने-वाले तोरण बाँधे जा रहे थे। सीता और रामके (गृह) प्रवेशपर लोगोंने जयजयकार किया। वे दोनों भी, साकेतमें अविचल रति सुखका आनन्द लेते हुए रहने लगे ॥ १–१० ॥

[२२. बावसमो संधि]

कोसलणन्दणेण स-कलत्तें णिय-घरु आएं ।
आसाढट्ठमिहिँ किउ ण्हवणु जिणिन्दहों राएं ॥

[१]

सुर-समर-सहासेंहिँ दुम्महेण । किउ ण्हवणु जिणिन्दहों दसरहेण ॥ १ ॥
पट्ठवियइँ जिण-तणु-धोवयाइँ । देविहिँ दिव्वइँ गन्धोदयाइँ ॥ २ ॥
सुप्पहहें णवर कञ्चुइ ण पत्तु । पहु पभणइ रहसुच्छलिय-गत्तु ॥ ३ ॥
'कहें काइँ णियम्बिणि मणें विसण्ण । चिर-चित्तिय भित्ति व थिय विवण्ण' ॥४॥
पणवेप्पिणु वुच्चइ सुप्पहाएँ । 'किर काइँ महु त्तणियएँ कहाएँ ॥५॥
जइ हउँ जेँ पाणवल्लहिय देव । तो गन्ध-सलिलु पावइ ण केम' ॥ ६ ॥
तहिँ अवसरें कञ्चुइ ढुक्कु पासु । छण-ससि व णिरन्तर-धवलियासु ॥ ७॥
गय-दन्तु अयंगमु (?) दण्ड-पाणि । अणियच्छिय-पहु पक्खलिय-वाणि॥८॥

घत्ता

गरहिउ दसरहेंण 'पइँ कञ्चुइ काइँ चिराविउ ।
जलु जिण-वयणु जिह सुप्पहहें दवत्ति ण पाविउ' ॥ ९ ॥

[२]

पणवेप्पिणु तेण वि वुत्तु एम । 'गय दियहा जोव्वणु ल्हसिउ देव ॥१॥
पढमाउसु जर धवलन्ति आय । पुणु असइ व सीस-वलग्ग जाय ॥ २ ॥
गइ तुट्टिय विहडिय सन्धि-बन्ध । ण सुणन्ति कण्ण लोयण णिरन्ध ॥ ३ ॥
सिरु कम्पइ मुहें पक्खलइ वाय । गय दन्त सरीरहों णट्ठ छाय ॥ ४ ॥
परिगलिउ रुहिरु थिउ णवर चम्मु । महु एत्थु जेँ हुउ णं अवरु जम्मु ॥५॥

बाईसवीं संधि

अपने घर आकर, कौशल्यानन्दन रामने सपत्नीक, आषाढ़की अष्टमीके दिन जिनेन्द्रका अभिषेक किया।

[१] हजारों देवयुद्धोंमें अजेय राजा दशरथने भी जिनका अभिषेक किया, उन्होंने जिन-प्रतिमाके प्रक्षालनका दिव्य गंधोदक रानियोंके पास भेजा। परन्तु बूढ़ा कंचुकी रानी सुप्रभाके पास उसे नहीं ले गया। इतनेमें राजा दशरथ रानीके पास पहुँचे, और उसे (दीनमुद्रामें) देख, हर्षसे गद्गद स्वरमें बोले "हे नितम्बिनी, तुम खिन्नमन क्यों हो ? चिर चित्रित दीवालकी तरह तुम्हारा मुँह फीका क्यों हो रहा है।" इसपर प्रणाम करके रानी सुप्रभा बोली—"देव मेरी कहानीको सुननेसे क्या, यदि मैं भी औरोंकी तरह प्रिय होती तो गंधोदक मुझे भी मिलता। ठीक इसी समय कंचुकी उसके पास आया। चेहरा पूर्ण चन्द्रकी तरह एकदम सफ़ेद, दाँत लम्बे, हाथमें दण्ड, बोली लड़खड़ाती हुई, राजाको भी देखनेमें असमर्थ। देखते ही राजाने उसे खूब डाँटा, कंचुकी तुमने इतनी देर क्यों की, जिससे जिन-वचनकी तरह ही पवित्र गंधोदक रानीको शीघ्र नहीं मिल सका ॥१–६॥

[२] तब प्रणाम करके कंचुकीने निवेदन किया, "महाराज, मेरे दिन अब चले गये, मेरा यौवन ढल चुका है। पहलेकी अवस्थापर सफेदी पोतती हुई यह जरा आ रही है। और दुराचारिणी स्त्रीकी तरह जबर्दस्ती मेरे सिरसे लग रही है, मेरी गति टूट चुकी है, हड्डियोंके जोड़ ढीले पड़ गये है, कान सुनते नहीं, आँखे देखती नहीं (अन्धी हो चुकी हैं), सिर कांप रहा है; और बोली मुँहमें ही लड़खड़ा जाती है, दाँत भी चले गये और शरीरकी कांति भी क्षीण हो गई। खून सब गल गया है, केवल

गिरि-णइ-पवाह ण वहन्ति पाय । गन्धोवउ पावउ केम राय' ॥ ६ ॥
वयणेण तेण किउ पहु-वियप्पु । गउ परम-विसायहों राम-वप्पु ॥ ७ ॥
चच्चसउलु, जीविउ कवणु सोक्खु । तं किज्जइ सिज्झइ जेण मोक्खु ॥ ८ ॥

घत्ता

सुहु महु-विन्दु-समु दुहु मेरु-सरिसु पवियम्भइ ।
वरि त कम्मु हिउ जं पउ अजरामरु लब्भइ ॥ ९ ॥

[३]

कं दिवसु वि होसइ आरिसाहुँ । कञ्चुइ-अवत्थ अम्हारिसाहुँ ॥१॥
को हउँ का महि कहों तणउ दव्वु । सिंहासणु छत्तइँ अथिरु सव्वु ॥२॥
जोव्वणु सरीरु जीविउ धिगत्थु । संसारु असारु अणत्थु अत्थु ॥३॥
विसु विसय वन्धु दिढ-वन्धणाइँ । घर-दारइँ परिहव-कारणाइँ ॥४॥
सुय सत्तु विढत्तउ अवहरन्ति । जर-मरणहँ किङ्कर किं करन्ति ॥५॥
जीवाउ वाउ हय हय वराय । सन्दण सन्दण गय गय जें णाय ॥६॥
तणु तणु जें खणद्धें खयहों जाइ । धणु धणु जि गुणेण वि वङ्कु थाइ ॥७॥
दुहिया वि दुहिय माया वि माय । सम-भाउ लेन्ति किर तेण भाय ॥८॥

घत्ता

आयइँ अवरइ मि सव्वइँ राहवहों समप्पेंवि ।
अप्पुणु तउ करमि' थिउ दसरहु एम वियप्पेंवि ॥९॥

[४]

तहिँ अवसरेँ आइउ सवण-सङ्घु । पर-समयसमीरण-गिरि-अलङ्घु ॥१॥
दुस्सहमह-वम्मह-महण-सीलु । भय-भङ्गुर-भुअणुद्धरण-लीलु ॥२॥
अहि-विसम-विसय-विस-वेय-समणु । खम-दम-णिसेणि-किय-मोक्ख-गमणु ॥३॥

चमड़ी ही चमड़ी है यहाँ मैं ऐसा ही हूँ जैसे दूसरा जन्म हो। अब पहाड़ी नदीके वेगकी तरह मेरे पैर सरपट नहीं चलते, अब आप ही बताइए देव ! गंधोदक सभीको कैसे मिलता ॥१-६॥

कंचुकीके वचन सुनकर राजा दशरथने जब उनपर विचार किया तो वह गहरे विषादमें पड़ गये। उन्हें लगा—सचमुच जीवन अस्थिर है, कौन सा सुख है इसमें। इसलिए मुझे वह काम करना चाहिए जिसमें मोक्ष सध सके" (दुनियामें) सुख मधुकी बूँदकी तरह है और दुख मेरु पर्वतकी तरह फैल जाता है। अतः वही कर्म करना ठीक है जिससे मोक्षकी सिद्धि हो ॥७-९॥

[३] किसी दिन मेरी भी, इस बूढ़े कंचुकीकी तरह हालत हो जायगी, कौन मैं ? किसकी यह धरती ? किसका धन ? छत्र और सिंहासन ? सभी कुछ अस्थिर है, यौवन शरीर और जीवनको धिक्कार है। संसार असार है और धन अनर्थकर है। विषय विष है, और बंधुजन दृढ़बन्धन। घरकी स्त्रियाँ अपमानकी कारण हैं। पुत्र केवल विघ्न करनेवाले शत्रु हैं, बुढ़ापे और मौतमें ये नौकर चाकर क्या करते हैं, जीवकी आयु वायु है, हय भी बेचारे हत हो जाते हैं। रथ खण्डित हो जाते हैं। और गज भी रोगको जानते हैं। तन तृणकी तरह है जो आधे पलमें ही नष्ट हो जाता है। धन धनुषकी तरह है जो गुण (डोरी) से भी टेढ़ा होता है। दुहिता दुष्ट हृदय ही होती है। माताको माया ही समझो। समभाग (धनका) बँटानेवाले होनेसे भाई भाई हैं। यह, और जो भी है वह सब 'राम' को अर्पितकर मैं तप करूँगा" राजा दशरथने यह विकल्प अपने मनमें स्थिर कर लिया ॥१-९॥

[४] ठीक इसी समय एक श्रमणसंघ वहाँ आया। जो परमत-रूपी पवनके लिए अलंघ्य पर्वत, दुर्दम कामदेवको मथनेवाला, भयभीत जनोंका उद्धारक, विषयरूपी साँपके विषका शमन

तवसिरि-वररामालिङ्गियङ्गु । कलि-कलुस-सलिल-सोसण-पयङ्गु ॥४॥
तित्थङ्कर-चरणम्बुरुह-भमरु । किय-मोह-महासुर-णयर-डमरु ॥ ५ ॥
तहिँ सच्चभूइ णामेण साहु । जाणिय-संसार-समुद्द-थाहु ॥ ६ ॥
मगहाहिउ विसय-विरत्त-देहु । अवहत्थिय-पुत्त-कलत्त-णेहु ॥ ७ ॥
गिव्वाण-महागिरि धीरिमाएँ । रयणायर-गुरु गम्भीरिमाएँ ॥ ८ ॥

घत्ता

रिसि-सङ्घाहिवइ सो आउ अउज्झ भडारउ ।
'सिवपुरि-गमणु करि' दसरहहों णाइँ हक्कारउ ॥ ९ ॥

[५]

पडिवण्णएँ तहिँ तेत्तडएँ कालें । तो पुरें रहणेउरचक्कवालें ॥ १ ॥
भामण्डलु मण्डलु परिहरन्तु । अच्छइ रिसि सिद्धि व संभरन्तु ॥२॥
वइदेहि-विरह-वेयण सहन्तु । दस कामावत्थउ दक्खवन्तु ॥ ३ ॥
पडिहन्ति ण विज्जाहर-तियाउ । णउ णाण-ण्हाण-भोयण-क्रियाउ ॥४॥
ण जलद्द ण चन्दणु कमल-सेज्ज । ढुक्कन्ति जन्ति अण्णोण्ण वेज्ज ॥५॥
वाहिज्जइ विरहें दूसहेण । णउ फिट्टइ केण वि ओसहेण ॥६॥
णीसासु मुएप्पिणु दीहु दीहु । पुणरवि थिउ थक्केवि जेम सीहु ॥७॥
'भूगोयरि भुञ्जमि मण्ड लेवि' । णीसरिउ स-साहणु सण्णहेवि ॥८॥

घत्ता

पत्तु वियड्ढ-पुरु तं णिएँवि जाउ जाईसरु ।
'अण्णहिँ भव-गहणेँ हउँ होन्तु एत्थु रज्जेसरु' ॥ ९ ॥

[६]

मुच्छाविउ तं पेक्खेंवि पएसु । संभरेंवि भवन्तरु णिरवसेसु ॥ १ ॥
सब्भावें पभणिउ तेण ताउ । 'कुण्डलमण्डिउ णामेण राउ ॥ २ ॥

करनेके लिए गरुड़, शम और दमकी सीढ़ियोंसे मोक्षगामी, तप लक्ष्मीरूपी उत्तम स्त्रीका आलिंगन करनेवाला, कलियुगके पाप-जल का शोषण करनेके लिए सूर्य, तीर्थंकरोंके चरणकमलोंके लिए भ्रमर और मोहरूपी महासुरकी नगरीके लिए भयंकर था। उसमें संसार समुद्रकी थाहको जाननेवाले सत्यभूति नामक एक साधु थे जो कभी मगध शासक थे। वह पुत्र और स्त्रीके प्रेमसे दूर हो चुके थे। वह धीरतामें मन्दराचल और गम्भीरतामें समुद्र थे, संघपति वह भट्टारक सत्यभूति, अयोध्यामें, मानो राजा दशरथको यही चेतावनी देने आये थे कि शिवपुरीके लिए चल ॥१-६॥

[५] उधर रथनूपुरचक्रवालपुरमें भामंडल (सीताके वियोगमें) अपनी श्रेणीका राजपाट छोड़कर, सिद्धिके ध्यानमें रत मुनिकी तरह धूनी रमाये बैठा था। सीताके वियोगको किसी प्रकार सहन करते हुए उसके कामकी अवस्थाएँ प्रगट होने लगीं, उसे किसी भी विचारधाराकी इच्छा नहीं थी। वह भोजन पान सब कुछ छोड़ बैठा, न ठण्डा पानी, न चन्दन, न कमलोंकी सेज, कुछ भी उसे अच्छा नहीं लगता। वैद्य आते और देखकर चले जाते, वह दुःसहविरहसे पीड़ित हो रहा था, जो किसी भी दवासे नष्ट नहीं हो सकता था। लम्बी लम्बी साँसे छोड़ता हुआ वह थक कर ऐसा बैठा था, मानो सिंह ही बैठा हो। "मैं उस मानवीका बलपूर्वक अपहरण कर भोग करूँगा," यह सोचकर वह सेनाके साथ तैयार होकर निकल पड़ा, परन्तु जैसे ही विदग्ध नगर पहुँचा, उसे देखते ही उसे जाति-स्मरण हो आया। पिछले जन्ममें मैं इसी नगरमें राजा था ॥१-६॥

[६] उस प्रदेशको देखकर वह मूर्छित हो गया। और फिर सब भवान्तरोंका स्मरण कर उसने तातसे श्रद्धापूर्वक कहा, "मैं पहले यहाँ कुण्डलमंडित नामका अत्यन्त अहंकारी राजा था। और एक

हउँ होन्तु एत्थु अखलिय-मरट्टु । पिङ्गलु णामेण कुबेर-भट्टु ॥ ३ ॥ ३ ॥
ससिकेउ-दुहिय अवहरॅवि आउ । परिवसइ कुडीरएँ किर वराउ ॥ ४ ॥
उद्दालिउ मइँ तहों तं कलत्तु । सो वि मरॅवि सुरत्तणु कहि मि पत्तु ॥५॥
मुउ हउ मि विदेहहें देहें आउ । णिउ देवें जाणइ-जमल-जाउ ॥ ६ ॥
वणें घत्तिउ कण्टेण वि ण भिण्णु । पुप्फवइहें पइँ सायरेंण दिण्णु ॥ ७ ॥

घत्ता

वड्ढिउ तुम्ह घरें जणु सयलु वि एँउ परियाणइ ।
जणउ जणेरु महु मायरि विदेह सस जाणइ' ॥ ८ ॥

[७]

वित्तन्तु कहेप्पिणु णिरवसेसु । गउ वन्दणहत्तिएँ तं पएसु ॥ १ ॥
जहिँ वसइ महारिसि सच्चभूइ । जहिँ जिणवर-ण्हवण-महाविभूइ ॥ २ ॥
वइरग्ग-कालु जहिँ दसरहासु । जहिँ सीय-राम-लक्खण-विलासु ॥ ३ ॥
सत्तुहण-भरह जहिँ मिलिय वे वि । गउ तहिँ भामण्डलु जणणु लेवि ॥ ४ ॥
जिणु वन्दिउ मोक्ख-वलग्ग-जङ्घु । पुणु गुरु-परिवाडिएँ सवण-सङ्घु ॥ ५ ॥
पुणु किउ संभासणु समउ तेहिँ । सत्तुहण-भरह-बल-लक्खणेहिँ ॥ ६ ॥
जाणाविउ सीयहें भाइ जेम । जिह हरि-बल-साला सावलेव ॥ ७ ॥
सुउ परम-धम्मु सुह-भायणेण । तवचरणु लयउ चन्दायणेण ॥ ८ ॥

घत्ता

दसरहु अण्ण-दिणें किर रामहों रज्जु समप्पइ ।
केक्कय ताव मणें उण्हालएँ धरणि व तप्पइ ॥९॥

पिंगल नामका कुवेरभट्ट था। वह राजा चन्द्रध्वजकी लड़कीका अपहरणकर एक कुटियामें रहता था। परन्तु मैंने उसकी पत्नीको छीन लिया। वह मरकर किसी प्रकार देव हुआ। मैं भी मरकर विदेह स्वर्गमें पहुँचा। वहाँसे आकर सीताके साथ जुड़वा भाई उत्पन्न हुआ। वनमें फेंके जाने पर भी मुझे एक कांटा तक नहीं लगा, और आपने आदरके साथ मुझे अपनी पत्नी पुष्पावतीको सौंप दिया। फिर आपके घरमें किस प्रकार बड़ा हुआ। यह सब लोग जानते हैं, जनक मेरे पिता, माँ विदेही और सीता बहन हैं ॥१-६॥

[७] (इस प्रकार) समस्त वृत्तान्तको कहकर वह (भामण्डल) उस प्रदेशकी वन्दना-भक्तिके लिए गया, जहाँ महाऋषि सत्यभूति रहते थे। जहाँ जिनवरके स्नान (अभिषेक) की महाविभूति हो रही थी। जहाँ महाराज दशरथका वैराग्य काल था। जहाँ सीता देवी, राम और लक्ष्मणका (लीला) विलास हो रहा था, और जहाँ शत्रुघ्न तथा भरतके मिलनेकी (संभावना) थी (ऐसे उस स्थानको) भामण्डल अपने पिता (चन्द्रगति) को लेकर गया। उसने (वहाँ) मोक्षके आधार-स्तम्भ जिनकी वंदना कर फिर गुरु और श्रमण-संघकी परिक्रमा दी, और उनके साथ संभाषण किया। (इसके बाद) शत्रुघ्न, भरत, राम और लक्ष्मणको उसने यह बताया कि किस प्रकार वह सीताका भाई और रामका अपराधी साला है। विद्याधर चन्द्रगतिने भी शुभभावसे परमधर्म सुनकर तपस्या अंगीकार कर ली ॥१-८॥

दूसरे दिन दशरथने जब रामको राज्य अर्पित किया तो कैकेयी अपने मनमें वैसे ही संतप्त हो उठी जैसे ग्रीष्मकालमें धरती तप उठती है ॥६॥

[८]

णरिन्दस्स सोऊण पव्वज्ज-यत्तं । स-रामाहिरामस्स रामस्स रज्जं ॥ १ ॥
ससा दोणरायस्स भग्गाणुराया । तुलाकोडि-कन्ती-लयालिद्ध-पाया ॥ २ ॥
स-पालम्ब-कञ्ची-पहा-भिण्ण-गुज्झा । थणुत्तुङ्ग-भारेण जा णित्त-मज्झा ॥३॥
णवासोय-पच्छच्छयाछाय-पाणी । वरालाविणी-कोइलालाव-वाणी ॥ ४ ॥
महा-मोरपिच्छोह-संकास-केसा । अणङ्गस्स भल्ली व पच्छण्ण-वेसा ॥५॥
गया केक्कया जत्थ अत्थाण-मग्गो । णरिन्दो सुरिन्दो व पीढं वलग्गो ॥६॥
वरो मग्गिओ 'णाह सो एस कालो । महं णन्दणो ठाउ रज्जाणुपालो ॥७॥
पिए होउ एवं तओ सावलेवो । समायारिओ लक्खणो रामएवो ॥८॥

घत्ता

'जइ तुहुँ पुत्तु महु, तो एत्तिउ पेसणु किज्जइ ।
छत्तइँ वइसणउ, वसुमइ भरहहाँ अप्पिज्जइ ॥९॥

[९]

अहवइ भरहु वि आसण्ण-भव्वु । सो चिन्तइ अथिरु असारु सव्वु ॥१॥
घरु परियणु जीविउ सरीरु वित्तु । अच्छइ तवचरण-णिहित्त-चित्तु ॥२॥
तइँ मुएँवि तासु जइ दिण्णु रज्जु । तो लक्खणु लक्खइँ हणइ अज्जु ॥३॥
ण वि हउँ ण वि भरहु ण केक्कया वि । सत्तुहणु कुमारु ण सुप्पहा वि'॥४॥
तं णिसुणेँवि पप्फुल्लिय-मुहेण । वोल्लिज्जइ दसरह-तणुरुहेण ॥५॥
'पुत्तहों पुत्तत्तणु एत्तिउं जे । जं कुलु ण चडाइ वसण-पुञ्जें ॥६॥
जं णिय-जणणहों आणा-विहेउ । जं करइ विवक्खहों पाण-च्छेउ ॥ ७ ॥
किं पुत्तें पुणु पयपूरणेण । गुण-हीणें हियय-विसूरणेण ॥ ८ ॥

[८] राजा दशरथके दीक्षायज्ञ और लक्ष्मीके अभिराम रामको राज्य (मिलनेकी) बात सुनकर द्रोणराजकी बहन कैकेयीका अनुराग भग्न हो उठा। नूपुरोंकी कांतिलतासे उसके चरण लिप्त हो रहे थे। उसका मध्य लम्बी करधनीके प्रभावसे उद्विग्न हो रहा था। ऊँचे स्तनोंके भारसे कमर झुकी जा रही थी। उसके हाथ नव-अशोक वृक्षकी कान्ति समान आरक्त थे। वह कोयलके आलापकी तरह बहुत ही मधुर बोलती थी। श्रेष्ठ मोरके पंख समूहके सदृश उसकी केशराशि (अत्यन्त चमकीली) थी। प्रच्छन्न वेष, कामदेवकी भल्लिकाके समान थी वह। कैकेयी वहाँ गई जहाँ दरबारका मार्ग था, और राजा दशरथ, इन्द्रकी तरह सिंहासनपर बैठे हुए थे। उसने (उनसे) वर माँगा, "स्वामी यही वह समय है (कि जब) आप मेरे पुत्र (भरत) को राज्यपाल बनाएँ। तब दशरथने यह कहकर कि प्रिये तुम्हारी यह अपराधपूर्ण (बात) होगी, लक्ष्मण और रामको बुलाया ॥१-८॥

उन्होंने कहा, "यदि तुम मेरे पुत्र हो तो इस आज्ञाको मानो। छत्र सिंहासन और सारी धरती भरतको सौंप दो" ॥९॥

[९] अथवा भरत आसन्न भव्य है, वह समस्त संसार, घर-परिजन, जीवन शरीर और धनको असार समझता है। उसका मन तो तपश्चरणमें रखा है। यदि मैं तुम्हें छोड़कर उसे राज्य दं दूँ तो लक्ष्मण आज ही लाखोंको साफ़ कर देगा। तब न मैं, न न भरत, न कैकेयी, न कुमार शत्रुघ्न और न सुप्रभा, कोई भी उससे नहीं बचेगा।" यह सुनकर प्रफुल्ल मुखसे रामने कहा—"पुत्रका पुत्रत्व तो इसीमें है कि वह अपने कुलको संकटके मुखमें न डाले, और अपने पिताकी आज्ञा न टाले। शत्रुपक्षका संहार करे। अन्यथा, हृदयपीडक, गुणहीन, पुत्र शब्दकी पूर्ति करनेवाले

घत्ता

लक्खणु ण वि हणइ तवु भावहों सच्चु पयासहों।
भुञ्जउ भरहु महि हउँ जामि ताय वण-वासहों' ॥ ६ ॥

[१०]

हक्कारिउ भरहु णरेसरेण। पुणु वुच्चइ णेह-महाभरेण ॥ १ ॥
'तउ छत्तइँ तउ वइसणउ रज्जु। साहेवउ मइँ अप्पणउ कज्जु' ॥ २ ॥
तं वयणु सुणेँवि दुम्मिय-मणेण। धिक्कारिउ केक्कय-णन्दणेण ॥ ३ ॥
'तुहुँ ताय धिगत्थु धिगत्थु रज्जु। मायरि धिगत्थु सिरें पडउ वज्जु ॥४॥
णउ जाणहुँ महिलहँ को सहाउ। जोव्वण-मएण ण गणन्ति पाउ ॥ ५ ॥
णउ वुज्झहि तहुँ मि महा-मयन्धु। किं रामु मुएँवि महु पट्ट-वन्धु ॥ ६ ॥
सप्पुरिस वि चञ्चल-चित्त होन्ति। मणेँ जुत्ताजुत्त ण चिन्तवन्ति ॥ ७ ॥
मा णिक्कु मुएँवि को लेइ कच्चु। कामन्धहों किर कहिँ तणउ सच्चु ॥ ८ ॥

घत्ता

अच्छहु पुणु वि घरें सत्तुहणु रामु हउँ लक्खणु।
अलिउ म होहि तुहुँ महि भुञ्जेँ भडारा अप्पुणु' ॥ ९ ॥

[११]

सुय-वयण-विरमेँ दससन्दणेण। वुच्चइ अणरण्णहों णन्दणेण ॥ १ ॥
'केक्कयहेँ रज्जु रामहों पवासु। पव्वज्ज मज्झु एउ जगेँ पगासु ॥ २ ॥
तुहुँ पालेँ धरासउ परम-रम्मु। णउ आयहों पासिव को वि धम्मु ॥३॥
दिज्जइ जइवरहुँ महप्पहाणु। सुअ - भेसह-अभयाहार-दाणु ॥ ४ ॥
रक्खिज्जइ सीलु कुसीम-णासु। किज्जइ जिणु-पुज्ज महोववासु ॥ ५ ॥
जिण-वन्दण वारापेक्ख-करणु। सल्लेहण-कालु समाहि-मरणु ॥ ६ ॥
एहु सव्वहुँ धम्महुँ परम-धम्मु। जो पालइ तहों सुर-मणुय-जम्मु' ॥७॥
तं वयणु सुणेवि सइत्तणेण। वुच्चइ सुहमइ-दोहित्तएण ॥ ८ ॥

पुत्रसे क्या लाभ ? हे तात ! लक्ष्मण भी बात नहीं करेगा। आप तप साधें और सत्यको प्रकाशित करें। भरत धरतीको भोगे, और मैं वनवासके लिए जाता हूँ ॥१-६॥

[१०] तब स्नेहसे भरे हुए राजाने भरतको बुलाकर कहा—"यह छत्र सिंहासन और राज्य तुम्हारा है, अब मैं अपना काम साधूँगा। यह सुनते ही कैकेयीपुत्र भरतने धिक्कारते हुए कहा—"पिताजी, तुम्हें और तुम्हारे राज्यको धिक्कार है। माँको धिक्कार है। उसके सिर पर वज्र क्यों नहीं गिर पड़ा ? पर क्या आप भी नहीं जानते, महिलाओंका क्या स्वभाव होता है ? यौवनके मदमें वे पाप नहीं गिनतीं। महामदान्ध तुम भी यह नहीं समझ सके कि रामको छोड़कर राज्यपट्ट मुझे बाँधा जायगा ? सज्जन पुरुप भी चञ्चलचित्त हो जाते हैं और उचित-अनुचितका विचार नहीं कर पाते ? माणिक्य छोड़कर काँच कौन लेगा, कामान्धके लिए सच कैसा ? अथवा आप घर पर ही रहें, शत्रुघ्न, राम, लक्ष्मण और मैं वनको जाते हैं, आप धरतीका भोग करें, आपका वचन भी झूठा नहीं होगा ॥१-६॥

[११] भरतके कह चुकनेपर, अणरण्णके पुत्र दशरथ बोले, "जगमें प्रकट है कि भरतको राज्य, रामको प्रवास और मुझे संन्यास मिलेगा। अतः घर रह कर तुम धरतीका पालन करो। इससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं हो सकती। यतिवरोंको बड़प्पन देना, शास्त्र, औपध, अभय और आहार दान करते रहना, अपना शील रखना, कुशीलका नाश करना, जिन पूजा उत्सव और उपवास करते रहना, जिन वंदनाके बाद द्वार पर अतिथिकी बाट देखना, सल्लेखनाके समय समाधिमरण करना, बस, सब धर्मोंमें यही परमधर्म है, जो इसका पालन करता है वह देव या मनुष्य योनिमें उत्पन्न होता है।" यह वचन सुनकर सहृदय भरतने फिर कहा

घत्ता

'जइ घर-वासेँ सुहुं एउ जें ताय वड्ढिवज्जहि।
तो तिण-समु गणेँवि कज्जेण केण पव्वज्जहि' ॥ ९ ॥

[१२]

तो खेड्ड मुएँवि दसरहेँण वुत्तु। 'जइ सच्चउ तुहुं महु तणउ पुत्तु ॥१॥
तो किं पव्वज्जहेँ करहि विग्घु। कुलवंस-धुरन्धरु होहि सिग्घु ॥ २ ॥
केक्कयहेँ सच्चु जं दिण्णु आसि। तं णिरिणु करहि गुण-रयण-रासि' ।३।
तो कोसल-दुहिया-दुल्लहेण। वोल्लिज्जइ सीया-वल्लहेण ॥ ४ ॥
'गुणु केवलु वसुहहेँ भुत्तियाएँ। कि खणेँ खणेँ उत्त-पउत्तियाएँ ॥ ५ ॥
पालिज्जउ तायहोँ तणिय वाय। लइ महु दवरोहेँ पिहिवि भाय' ॥ ६ ॥
तो एम भणन्तें राहवेण। णिव्वूढाणेय-महाहवेण ॥ ७ ॥
खीरोवमइण्णव-णिम्मलेण। गिव्वाण-महागिरि-अविचलेण ॥ ८ ॥

घत्ता

पेक्खन्तहोँ जणहोँ सुरकरि-कर-पवर-पचण्डेँहिँ।
पट्टु णिवद्धु सिरेँ रहु-सुएँण सयं भुव-दण्डेँहिँ ॥ ९ ॥

[२३. तेवीसमो संधि]

तहिँ मुणि-सुव्वय-तित्थेँ वुहयण-कण्ण-रसायणु।
रावण-रामहुँ जुज्झु तं णिसुणहु रामायणु ॥

[१]

णमिऊण भडारउ रिसह-जिणु। पुणु कव्वहोँ उप्परि करमि मणु ॥१॥
जगेँ लोयहुँ सुयणहुँ पण्डियहुँ। सद्दत्थ-सत्थ परिचड्ढियहुँ ॥ २ ॥
किं चित्तइँ गेण्हेँवि सक्कियइँ। वासेण वि जाइँ ण रञ्जियइँ ॥ ३ ॥

तात, आपने जो यह कहा कि घरमें रहनेमें सुख है, तो आप उसे तिनकेके समान छोड़कर संन्यास क्यों ग्रहण कर रहे हैं ? ॥१-६॥

[१२] इसपर अपनी खिन्नता दूर करते हुए दशरथने कहा, "यदि तू मेरा सच्चा पुत्र है, तो प्रव्रज्यामें विघ्न क्यों करता है। तुम अपने कुलवंशके धुरन्धर तुम सिंह बनो, कैकेयीको जो सच्चा वचन मैं दे चुका हूँ, उसे हे गुणरत्नराशि, तुम पूरा करो। तब (बीचमें टोककर) कोशल नरेशकी पुत्री अपराजिताके लिए दुर्लभ सीतापति रामने कहा, "अब तो धरतीका भोग करनेमें ही भलाई है, क्षण-क्षणमें उक्ति प्रति उक्तिसे क्या लाभ ? अपने पिताका वचन पालो, अच्छा भाई मेरे अनुरोधसे ही तुम यह पृथ्वी स्वीकार कर लो," यह कहकर, अनेक महायुद्धोंको निपटानेवाले, क्षीरसागरकी तरह निर्मल, मंदराचलकी तरह अविचल, रघुसुत रामने लोगोंके देखते-देखते, अपने प्रचंड हाथों (ऐरावतकी सूँड़की तरह विशाल) से भरतके सिरपर राजपट्ट बाँध दिया ॥१-६॥



तेईसवीं संधि

इसके बाद, मुनिसुव्रत तीर्थंकरके तीर्थ-कालमें राम और रावणका भयंकर युद्ध हुआ। अतः बुधजनोंके कानोंके लिए 'रसायन स्वरूप' उस रामायणको सुनो।

[१] भट्टारिक जिनको नमन करके मैं-काव्यके ऊपर अपना मन कर रहा हूँ। शब्दार्थ समूहसे अच्छी तरह परिचित, संसारमें जो सज्जन और पण्डित हैं, और जिनके चित्तका अनुरञ्जन व्यास भी नहीं कर पाते क्या वे इस काव्यको मनसे ग्रहण कर सकेंगे ? अथवा व्याकरण और आगमसे हीन हम जैसे लोगोंका [काव्यका]

तो कवणु गहणु अम्हारिसँहिँ । वायरण-विहूणँहिँ आरिसँहिँ ॥४॥
कइ अत्थि अणेय भेय-भरिय । जे सुयण-सासँहिँ आयरिय ॥५॥
चक्कलएँहिँ कुलएँहिँ खन्दएँहिँ । पवणुद्धुअ-रासालुद्धएँहिँ ॥ ६ ॥
मञ्जरिय - विलासिणि - णक्कुडँहिँ । सुह-छन्देंहिँ सद्देहिँ खडइडँहिँ ॥ ७ ॥
हउँ किं पि ण जाणमि मुक्खु मणेँ । णिय बुद्धि पयासमि तो वि जणेँ ॥८॥
जं सयलेँ वि तिहुवणेँ वित्थरिउ । आरम्भिउ पुणु राहवचरिउ ॥ ९ ॥

घत्ता

भरहहोँ वद्धएँ पट्टेँ तो णिव्वूढ-महाहउ ।
पट्टणु उज्झ मुएवि गउ वण-वासहोँ राहउ ॥ १० ॥

[२]

जं परिवद्धु पट्टु परिओसें । जय-मङ्गल-जय-तूर-णिघोसें ॥ १ ॥
दसरह-चरण-जुयलु जयकारेंवि । दाइय-मच्छरु मणेँ अवहारेंवि ॥ २ ॥
सम्पय रिद्धि विद्धि अवगण्णेंवि । तासहोँ तणउ सच्चु परिमण्णेंवि ॥ ३ ॥
णिग्गउ वलु वलु णाइँ हरेप्पिणु । लक्खणो वि लक्खणइँ लएप्पिणु ॥ ४ ॥
संचल्लेहिँ तेहिँ विहाणउ । ठिउ हेट्ठामुहु दसरहु राणउ ॥ ५ ॥
हियवएँ णाइँ तिसूलें सल्लिउ । 'राहउ किह वण-वासहोँ चल्लिउ ॥ ६ ॥
धिगधिगत्थु' जणएण पवोल्लिउ । 'लङ्घिउ कुल-कमु वि सुमहल्लउ ॥ ७ ॥
अहवइ जइ मइँ सच्चु ण पालिउ । तो णिय-णामु गोत्तु मइँ मइलिउ ॥ ८ ॥
वरि गउ रामु ण सच्चु विणासिउ । सच्चु महन्तउ सव्वहोँ पासिउ ॥ ९ ॥
सच्चें अम्वरें तवइ दिवायरु । सच्चें समउ ण चुक्कइ सायरु ॥१०॥
सच्चें वाउ वाइ महि पच्चइ । सच्चें ओसहि खयहोँ ण वच्चइ ॥११॥

ग्राहक कौन हो सकता है? फिर कवियोंके अनेक भेद हैं और जो हजारों सज्जनों द्वारा आदरणीय हैं। जो चक्कलक, कुलक, स्कन्धक, पवनोद्धत, रासाकुन्धक, मञ्जरीक, विलासिनी, नक्कुड, और खडहड शुभछन्द तथा शब्दमें निपुण है। मैं कुछ भी नहीं जानता, मनमें मूर्ख हूँ तो भी लोगोंके सम्मुख अपनी बुद्धिको प्रकाशित करता हूँ। तीनों लोकोंमें जो प्रसिद्ध है मैं उस राघव-चरितको आरम्भ करता हूँ ॥१—९॥

भरतको राज्यपट्ट बाँधे जानेपर महायुद्धमें समर्थ राम अयोध्य।नगरी छोड़कर वनवासके लिए चले गये ॥१०॥

[२] जय मंगल और जय तूर्यके निर्घोषके साथ, रामने परितोषपूर्वक [भरतको] राजपट्ट बाँध दिया। अपने पिताके चरणोंकी जय बोल, मनमें देव-मत्सर, और ऋद्धि-वृद्धिकी उपेक्षाकर, केवल अपने पिताके सत्य वचनको मानते हुए, राम अपने भवनसे निकल पड़े, उन्होंने अपना साहस नहीं खोया। सब लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिया। उन दोनों भाइयोंके जाते ही, खिन्न दशरथ नीचा मुख करके रह गये। मानो किसीने उनके हृदयमें त्रिशूल ही छेद दिया हो। उन्होंने कहा, "रामको वनवास कैसे दे दिया धिक्कार—है।" [दशरथने] महान् कुल परम्पराका उल्लंघन किया है। अथवा यदि मैं अपने सत्य वचनका पालन नहीं करता, तो अपने नाम और गोत्रको कलंक लगाता, अच्छा हुआ जो राम वनको चले गये, मेरा सत्य तो नष्ट नहीं हुआ। सबकी अपेक्षा सत्य ही महान् है। सत्यसे ही आकाशमें सूरज तपता है, सत्यसे ही समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता। सत्यसे ही हवा चलती है और सत्यसे ही धरती सब कुछ सहन कर लेती है। जो मनुष्य सत्यका पालन

घत्ता

जो ण वि पालइ सच्चु मुहें दाढियउ वहन्तउ।
णिवडइ णरय-समुद्दे वसु जेंम अलिउ चवन्तउ' ॥१२॥

[३]

चिन्तावण्णु णराहिउ जावेंहिं। वलु णिय-णिलउ पराइउ तावेंहिं ॥ १ ॥
दुम्मणु एन्तु णिहालिउ मायएँ। पुणु विहसेवि वुत्तु पिय-वायएँ ॥ २ ॥
'दिवें दिवें चडहि तुरङ्गम-णाएँहिं। अज्जु काइँ अणुवाहणु पाएँहिं ॥ ३ ॥
दिवें दिवें वन्दिण-विन्दें हिं थुच्चहि। अज्जु काइँ थुव्वन्तु ण सुव्वहि ॥ ४ ॥
दिवें दिवें धुव्वहि चमर-सहासेंहिं। अज्जु काइँ तउ को वि ण पासेंहिं ॥ ५ ॥
दिवें दिवें लोयहिं वुच्चहि राणउ। अज्जु काइँ दीसहि विद्दाणउ ॥ ६ ॥
तं णिसुणेवि वलेण पजम्पिउ। 'भरहहों सयलु वि रज्जु समप्पिउ ॥ ७ ॥
जामि माएँ दिढ हियवएँ होज्जहि। जं दुम्मिय तं मच्चु खमेज्जहि' ॥ ८ ॥

घत्ता

जें आउच्छिय माय 'हा हा पुत्त' भणन्ती।
अपराइय महएवि महियलें पडिय रुयन्ती ॥ ९ ॥

[४]

रामें जणणि जं जें आउच्छिय। णिरु णिच्चेयण तक्खणें मुच्छिय ॥ १ ॥
लज्जियाहिँ 'हा माएँ' भणन्तिहिँ। हरियन्दणेंण सित्त रोवन्तिहिँ ॥ २ ॥
चमरुक्खेवेंहिँ किय पडिवायण। दुक्खु दुक्खु पुणु जाय स-चेयण ॥ ३ ॥
अङ्गु वलन्ति समुट्ठिय राणी। सप्पि व दण्डाहय विद्दाणी ॥ ४ ॥
णीलक्खण णीरासुम्माहिय। पुणु वि सदुक्खउ मेल्लिय धाहिय ॥ ५ ॥
'हा हा काइँ वुत्तु पइँ हलहर। दसरह-वंस-दीव जग-सुन्दर ॥ ६ ॥
पइँ विणु को पल्लङ्के सुवेसइ। पइँ विणु को अत्थाणें वईसइ ॥ ७ ॥
पइँ विणु को हय-गयहुँ चडेसइ। पइँ पइँ विणु को किन्दुएँण रमेसइ ॥ ८ ॥

नहीं करता वह मुँहमें दाढ़ी रखकर भी, नरक-समुद्रमें उसी प्रकार पड़ता है जिस प्रकार राजा वसुको झूठ बोलकर नरक जाना पड़ा था ॥१-१२॥

[३] इधर राजा दशरथ चिन्तातुर थे, और उधर राम अपने भवनमें पहुँचे। माँने दुर्मन आते हुए उन्हें देख लिया। फिर भी वह हँसकर प्रियवाणीमें बोली, "प्रति-दिन तुम घोड़ों और हाथियोंकी सवारीपर चढ़कर आते थे। परंतु आज पैदल ही कैसे आये ? प्रतिदिन बंदीजन तुम्हारी स्तुति करते थे, परंतु आज तुम्हारी स्तुति क्यों नहीं सुन रही हूँ ? प्रतिदिन तुम्हारे ऊपर सैकड़ों चमर डुलाये जाते थे; परंतु आज तुम्हारे निकट कोई भी नहीं है; प्रतिदिन लोग तुम्हें 'राजा' कहकर पुकारते थे; पर आज तुम्हारा मुख मलीन क्यों है ?" यह सुनकर रामने कहा, "माँ ! भरत को सब राज्य अर्पित कर दिया, मैं जा रहा हूँ। अपना हृदय दृढ़ कर लो और जो भी अविनय मुझसे हुई हो उसे क्षमा करो।" रामने जो यह पूछा उससे अपराजिता महादेवी "हा पुत्र हा पुत्र"—कहकर रोती हुई धरतीपर गिर पड़ीं ॥१-८॥

[४] रामने माँसे जो पूछा, उससे वे तत्काल चेतनाहीन हो मूर्छित हो गईं। तब 'हा माँ' यह कहती हुई दासियोंने हरिचन्दनका उनपर लेप किया। चमरधारिणी स्त्रियोंके हवा करनेपर वह धीरे-धीरे बड़े दुखसे सचेतन हुईं। अपने अंगोंको मोड़ती हुई, दंडाहत म्लान नागिनकी तरह रानी उठी। उसकी आंखें गीली और अश्रुजलसे डबडबाई हुई थीं। फिर वह दुखके आवेगसे डाढ़ मार कर रोने लगीं—हे बलभद्र, तुमने यह सब क्या कहा ? दशरथकुलके दीपक, जगसुंदर राम ! तुम्हारे बिना अब कौन पलंगपर सोयेगा। तुम्हारे बिना कौन अब दरबारमें बैठेगा। तुम्हारे बिना कौन अब हाथी-घोड़े पर

पइँ विणु रायलच्छि को माणइ। पइँ विणु को तम्बोलु समाणइ ॥ ६ ॥
पइँ विणु को पर-बलु भञ्जेसइ। पइँ विणु को मइँ साहारेसइ' ॥ १० ॥

घत्ता

तं कुवारु सुणेवि अन्तेउरु मुह-कुण्णउ।
लक्खण-राम-विओएं धाह मुएवि परुण्णउ ॥ ११ ॥

[५]

ता एत्थन्तरें असुर-विमद्दे। धीरिय णिय-जणेरि बलहद्दें ॥ १ ॥
'धीरिय होहि माएँ किं रोवहि। लुहि लोयण अप्पाणु म सोयहि ॥ २ ॥
जिह रवि-किरणेंहिँ ससि ण पहावइ। तिह मइँ होन्तें भरहु ण भावइ ॥ ३ ॥
तें कज्जें वण-वासें वसेवउ। तायहों तणउ सच्चु पालेवउ ॥ ४ ॥
दाहिण-देसें करेविणु थत्ति। तुम्हहँ पासें एइ सोमित्ति' ॥ ५ ॥
एम भणेप्पिणु चलिउ तुरन्तउ। सयलु वि परियणु आउच्छन्तउ ॥ ६ ॥
धवल-कसण-णीलुप्पल-सामेंहिँ। घरु मुच्चन्तउ लक्खण-रामेंहिँ ॥ ७ ॥
सोह ण देइ ण चित्तहों भावइ। णट्ठु णिचन्दाइच्चउ णावइ ॥ ८ ॥
णं किय-उद्ध-हत्थु धाहावइ। वलहों कलत्त-हाणि णं दावइ ॥ ९ ॥
भरह णरिन्दहों णं जाणावइ। 'हरि-बल जन्त णिवारहि णरवइ' ॥१०॥
पुणु पाआर-भुअउ पसरेप्पिणु। णाइँ णिवारइ आलिङ्गेप्पिणु ॥११॥

घत्ता

चाव-सिलीमुह-हत्थ बे वि समुण्णय-माणा।
तहों मन्दिरहों रयन्तहों णाइँ विणिग्गय पाणा ॥१२॥

[६]

तो एत्थन्तरें णयणाणन्दें। संचल्लन्तें राहवचन्दें ॥ १ ॥
सीयाएवि्हें वयणु णिहालिउ। णं चित्तेण चित्तु संचालिउ ॥ २ ॥

चढ़ेगा? तुम्हारे विना गेंद कौन खेलेगा? तुम्हारे विना राजलक्ष्मी को कौन मानेगा? तुम्हारे विना ताम्बूलका आनन्द कौन करेगा? तुम्हारे विना कौन शत्रुसेनाको पराप्त करेगा? तुम्हारे विना अब कौन मुझे सहारा देगा, रानीका करुण क्रन्दन सुनकर अन्तःपुरका मुख म्लान हो गया। राम और लक्ष्मणके वियोगमें वह अन्तःपुर डाढ़ मारकर रो पड़ा॥ १–११॥

[५] इसी बीच असुरसंहारक रामने अपनी माँको धीरज बँधाते हुए कहा, "मां, धीरज धारण करो। रोती क्यों हो? आँखें लाल लालकर अपने आपको शोकमें मत डालो। सूर्यकी किरणोंके रहते जैसे चन्द्रमा शोभायुक्त नहीं हो पाता वैसे ही मेरे रहनेसे भरतकी शोभा नहीं होगी। केवल इसीलिए मैं वनवासके लिए जा रहा हूं। मैं वहीं रहकर तातके वचनका पालन करूँगा। दक्षिण देशमें निवास बनाकर, लक्ष्मण तुम्हारे पास आ जायगा।" यह कहकर राम तुरन्त, सब परिजनोंसे पूछकर चल पड़े। धवल और कृष्ण नील कमलकी तरह लक्ष्मण और रामके छोड़ते ही, घर न तो सोहता था और न मनको ही भाता था, वैसे ही जैसे सूर्य और चन्द्रसे रहित आकाश अच्छा नहीं लगता। वह भवन हाथ ऊपर उठाकर और डाढ़ मारकर चिल्लाता हुआ, मानो रामको उसकी पत्नीका हरण दिखा रहा था या नरेन्द्र भरतको यह जता रहा था कि जाती हुई रामकी सेनाको रोको। या फिर मानो अपनी प्राकाररूपी भुजाओंको फैलाये हुए, आलिंगन कर, उसका निवारण कर रहा था। धनुष-बाण हाथमें लेकर उन्नतमान वे दोनों उस रोते हुए राजभवनसे ऐसे चले गये मानो उसके प्राण ही चले गये हों।" ॥१–१२॥

[६] इसी अंतर में, जाते समय, नयनप्रिय रामने सीताका मुख कमल देखा, मानो चित्तने चित्त ही को संचारित कर दिया

णिय-मन्दिरहोँ विणिग्गय जाणइ । णं हिमवन्तहोँ गङ्ग महा-णइ ॥ ३ ॥
णं छन्दहोँ णिग्गय गायत्ती । णं सद्दहोँ णीसरिय विहत्ती ॥ ४ ॥
णाइँ कित्ति सप्पुरिस-विमुक्की । णाइँ रम्भ णिय-थाणहोँ चुक्की ॥ ५ ॥
सुललिय-चलण-जुयल-मल्हन्ती । णं गय-घड भड-थड विहडन्ती ॥ ६ ॥
णेउर-हार-डोर-गुप्पन्ती । वहु-तम्बोल-पङ्कें खुप्पन्ती ॥ ७ ॥
हेट्ठा-मुह कम-कमलु णियच्छेँवि । अवराइय-सुमित्ति आउच्छेँवि ॥ ८ ॥

घत्ता

णिग्गय सीयाएवि सिय हरन्ति णित-भवणहोँ ।
रामहो दुक्खुप्पत्ति असणि णाइँ दहवयणहोँ ॥ ६ ॥

[७]

राय-वारु वलु वोल्लिउ जावेँहिँ । लक्खणु मणेँ आरोसिउ तावेँहिँ ॥ १ ॥
उट्ठिउ धगधगन्तु जस-लुद्धउ । णाइँ विएण सित्तु धमद्धउ ॥ २ ॥
णाइँ महन्तु महा-घण-गज्जिएँ । तिह सोमित्ति कुविउ गमें सज्जिएँ ॥ ३ ॥
'कें धरणिन्द-फणा-मणि तोडिउ । कें सुर-कुलिस-दण्डु भुएँ मोडिउ ॥ ४ ॥
कें पलयाणलेँ अप्पउ ढोइउ । कें आरुट्ठउ सणि अवलोइउ ॥ ५ ॥
कें रयणायरु सोसेँवि सक्किउ । कें आइच्चहोँ तेउ कलङ्किउ ॥ ६ ॥
कें महि-मण्डलु वाहहिँ टालिउ । कें तइलोक्क-चक्क संचालिउ ॥ ७ ॥
कें जिउ कालु कियन्तु महाहवेँ । को पहु अण्णु जियन्तएँ राहवेँ ॥ ८ ॥

घत्ता

अहवइ किं वहुएण भरहु धरेप्पिणु अज्जु ।
रामहो णीसावण्णु देमि सहत्थें रज्जु ॥ ६ ॥

[८]

तो फुरन्त-रत्तन्त-लोयणो । कलि कियन्त-कालो व भीसणो ॥ १ ॥

हो, वह भी अपने भवनसे वैसे ही निकल पड़ी, जैसे, हिमालय से गंगा, छंदसे गायत्री, शब्दसे विभक्ति, सत्पुत्रसे कीर्ति, या अपने स्थानसे चूककर अप्सरा रंभा ही निकल पड़ी हो। वह सुललित अपने सुघर पैरोंसे ऐसी अल्हड़ चल रही थी—मानो गजघटा भटसमूहको पराजित कर रही हो। नूपुर और हार डोरसे व्याकुल, प्रचुर ताम्बूलोंकी लालीमें निमग्न अपना मुँह वह नीचे किये थी। अपराजिता और सुमित्राके पैर पड़कर और उनसे पूछकर सीता देवी भी घरसे निकल आई। अपने भवनकी शोभा का हरण करती हुई सीता देवी इस तरह निकल आई मानो वह रामके लिए दुख का उत्पत्ति और रावणके लिए वज्र थीं ॥१–६॥

[७] रामके राजाज्ञा सुनाते ही लक्ष्मणको मन ही मन असह्य वेदना हुई। यशका लोभी वह तमतमाता हुआ उठा, मानो किसीने आगको घीसे सींच दिया हो। जैसे महामेघ गरजते हैं, वैसे ही लक्ष्मण जानेकी तैयारी करने लगा। उसने कहा, "किसने आज धरणेंद्रके फनसे मणिको तोड़ लिया है? देववज्रदंडको किसने हाथसे मोड़ दिया है? प्रलयकाल में कौन अपनेको बचा सका है, शनिको देखकर कौन उचित हो सका है, समुद्रका शोषण कौन कर सकता है? सूर्यको कौन कलंक लगा सकता है? कौन पृथ्वीमंडलको अपनी भुजाओंसे टाल सकता है, त्रिलोक चक्रको कौन चला सकता है, यमका काल पूरा हो चुकनेपर महायुद्धमें कौन बचा सकता है, ठीक इसी प्रकार रामके जीतेकी राजा दूसरा कौन हो सकता है? अथवा बहुत बकवादसे क्या, मैं ही आज भरतको पकड़ कर, अशेष राज्य अपने हाथसे रामको अर्पित किये देता हूं।

[८] लक्ष्मणकी लाल-लाल आंखें फड़क रही थीं, वह कलि, यम

दुण्णिवारु   दुव्वार-वारणो । सुउ चवन्तु जं एम लक्खणो ॥ २ ॥
भणइ रामु तइलोक्क-सुन्दरो । 'पइँ विरुद्धेँ किं को वि दुद्धरो ॥ ३ ॥
जसु पडन्ति गिरि सिंह-णाएँणं । कवणु गहणु वो भरह राएँणं ॥ ४ ॥
कवणु चोज्जु जं दिवि दिवायरे । अमिउ चन्दे जल-णिवहु सायरे ॥ ५ ॥
सोक्खु मोक्खेँ दय-धम्मु जिणवरे । विसु भुयङ्गेँ वर लील गयवरे ॥ ६ ॥
धणएँ रिद्धि सोहग्गु वम्महे । गइ मरालेँ जय-लच्छि महुमहे ॥ ७ ॥
पउरुसं च पइँ कुविएँ लक्खणे । भणेँवि एम करेँ धरिउ तक्खणे ॥ ८ ॥

घत्ता

'रज्जेँ किज्जइ काइँ तायहोँ सच्च-विणासेँ ।
सोलह वरिसइँ जाम वे वि वसहुँ वण-वासेँ' ॥ ९ ॥

[६]

एह वोल्ल णिम्माइय जावँहिँ । ढुक्कु भाणु अत्थवणहोँ तावँहिँ ॥ १ ॥
जाइ सञ्झ आरत्त पदीसिय । णं गय-घड सिन्दूर-विहूसिय ॥ २ ॥
सूर - मंस - रुहिरालि - चच्चिय । णिसियरि व्व आणन्दु पणच्चिय ॥ ३ ॥
गलिय सञ्झ पुणु रयणि पराइय । जगु गिलेइ णं सुत्त महाइय ॥ ४ ॥
कहि मि दिव्व दीवय-सय वोहिय । फणि-मणि व्व पजलन्त सु-सोहिय ॥५॥
तिण्णु कालेँ णिरु णिच्चं दुग्गमे । णीसरन्ति रयणिहेँ चन्दुग्गमे ॥ ६ ॥
वासुएव - वलएव महव्वल । साहम्मिय साहम्मिय-वच्छल ॥ ७ ॥
रण - भर-णिव्वाहण णिव्वाहण । णिग्गय णीसाहण णीसाहण ॥ ८ ॥
विगयपओलि पवोलेँवि खाइय । सिद्धकूडु जिण-भवणु पराइय ॥ ९ ॥
जं पायार - वार - विप्फुरियउ । पोत्थासिय-गन्थ-वित्थरियउ ॥१०॥
गङ्ग - तरङ्गहँ रङ्गसमुज्जलु । हिमइरि-कुन्द-चन्द-जस-णिम्मलु ॥११॥

घत्ता

तहोँ भवणहोँ पासेहिँ विविह महा-दुम दिट्ठा ।
णं संसार-भएण जिणवर-सरणेँ पइट्ठा ॥ १२ ॥

और कालसे भी अधिक भयंकर हो रहा था। दुर्वार हाथीकी तरह दुर्वार, लक्ष्मणको ऐसा कहते सुनकर रामने कहा—"तुम्हारे विरुद्ध होनेपर भला क्या कोई दुर्द्धर हो सकता है, पहाड़ सिंह और हाथीतक गिर पड़ते हैं, तो फिर भरत राजाको पकड़नेमें क्या रक्खा है ? यदि सूर्यमें दीप्ति, चंद्रमामें अमृत, समुद्रमें जल का समूह, मोक्षमें सुख, जिनवरमें दया धर्म, साँपमें विष, गजवर में वरलीला, धनमें ऋद्धि, वामामें सौभाग्य, मरालमें गति, विष्णुमें जयलक्ष्मी, और कुपित होनेपर तुममें पौरुष रहता है, तो इसमें अचरजकी कोई बात नहीं"—यह कहकर रामने भाई लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया। वह बोले, "तातनाशक राज्यके करनेसे क्या ? चलो सोलह वर्षतक हम दोनों वनवासमें रहें" ॥१-६॥

[६] जब राम यह वचन कह ही रहे थे कि सूर्यका अस्त हो गया, आरक्त सन्ध्या ऐसी दिखाई दी मानो सिंदूरसे अलंकृत गजघटा हो या वीरके रक्तमांससे लिपटी हुई निशाचरी आनन्दसे नाच रही हो। सांझ बीती और रात आ गई मानो वरिष्ठ उसने सोते हुए विश्वको लील लिया हो। कहींपर सैकड़ों जलते हुए दीपक शेषनागके फणमणियोंकी तरह चमक रहे थे। रातके उस सतत दुर्गमकालमें जब चाँद उग आया, तो महाबली, युद्धभार उठानेमें समर्थ राम और लक्ष्मणने माताओं तथा स्नेहीजनोंसे विदा माँगी, और सवारी, शृङ्गार तथा प्रसाधनसे हीन वे नगरका मुख्यद्वार और खाई लाँघकर सिद्धवरकूट जिन-भवनमें पहुँचे। वह मंदिर परकोटा और द्वारोंसे शोभित, और पोथियों तथा ग्रन्थोंसे भरा था। गंगाकी तरंगोंके समान उज्ज्वल, तथा हिमगिरि कुंद पुष्प चन्द्रमा और यशकी तरह निर्मल था। उसके चारों ओर लगे, बड़े-बड़े पेड़ ऐसे मालूम होते थे मानो संसारके भयसे वे जिनकी शरणमें आ गये हों ॥१-१२॥

[१०]

तं णिएँवि भुवणु भुवणेसरहों। पुणु किउ पणिवाउ जिणेसरहों ॥ १ ॥
जय गय-भय राय-रोस-विलय। जय मयण-महण तिहुवण-तिलय ॥ २ ॥
जय खम-दम-तव-वय-णियम-करण। जय कलि-मल-कोह-कसाय-हरण ॥३॥
जय काम-कोह-अरि-दप्प-दलण। जय जाइ-जरा-मरणत्ति-हरण ॥ ४ ॥
जय जय तव-सूर तिलोय-हिय। जय मण-विचित्त-अरुणें सहिय ॥ ५ ॥
जय धम्म-महारह-वीढें ठिय। जय सिद्धि-वरङ्गण-रण्ण-पिय ॥ ६ ॥
जय संजम-गिरि-सिहरुग्गमिय। जय इन्द-णरिन्द-चन्द-णमिय ॥ ७ ॥
जय सत्त-महाभय-हय-दमण। जय जिण-रवि णाणम्बर-गमण ॥ ८ ॥
जय दुक्किय-कम्म-कुसुय-डहण। जय चउ-गइ-रयणि-तिमिर-महण ॥९॥
जय इन्दिय-दुद्दम-दणु-दलण। जय जक्ख-महोरग-थुय-चलण ॥१०॥
जय केवल-किरणुज्जोय-कर। जय-भविय-रविन्दाणन्दयर ॥११॥
जय जय भुवणेक्क-चक्क-भमिय। जय-मोक्ख-महीहरें अत्थमिय ॥१२॥

घत्ता

भावें तिहि मि जणेहिँ वन्दण करेंवि जिणेसहों।
पयहिण देवि तिवार पुणु चलियइँ वण-वासहों ॥१३॥

[११]

रयणिहें मज्झें पयट्टइ राहवु। ताम णियच्छिउ परमु महाहवु ॥ १ ॥
कुद्धइँ विद्धइँ पुलय-विसट्टइँ। मिहुणइँ वलइँ जेम अब्भिट्टइँ ॥ २ ॥
'वलु वलु' एक्कमेक्क कोक्कन्तइँ। 'मरु मरु पहरु पहरु' जम्पन्तइँ ॥ ३ ॥

[१०] भुवनेश्वरके उस भवनको देखकर, उन्होंने जिनेश्वर की वंदना शुरू की–"गतभय तथा राग और रोषको विलीन करनेवाले आपकी जय हो, कामका मथन करनेवाले त्रिभुवनतिलक आपकी जय हो, क्षमा दम तप व्रत और नियमोंका पालन करनेवाले आपकी जय हो, कलियुगके पाप क्रोध और कषायोंका हरण करनेवाले आपकी जय हो। काम क्रोधादि शत्रुओंका दर्प दलन करनेवाले आपकी जय हो, जन्म जरा और मरणके कष्टोंका हरण करनेवाले आपकी जय हो। त्रिलोक हितकर्ता और तपसूर्य आपकी जय हो। मनःपर्यय रूपी विचित्र सूर्यसे सहित आपकी जय हो। धर्मरूपी महारथकी पीठपर स्थित आपकी जय हो। सिद्धिरूपी वधूके अत्यन्त प्रिय आपकी जय हो। संयमरूपी गिरिके शिखरसे उदित आपकी जय हो। इन्द्र नरेन्द्र और चन्द्र द्वारा वंदनीय आपकी जय हो। सात महाभयरूपी अश्वोंका दमन करनेवाले आपकी जय हो। ज्ञानरूपी गगनमें विचरनेवाले जिन रवि आपको जय हो। पापरूप कुमुदोंके लिए दहनशील, और चतुर्गतिरूपी रातके तमको उच्छिन्न करनेवाले आपकी जय हो, इन्द्रियरूपी दुर्दम दानवोंका दलन करनेवाले आपकी जय हो। यक्ष और नागेश द्वारा स्तुत चरण आपकी जय हो। केवलज्ञानकी किरणसे प्रकाश करनेवाले और भव्यजन रूपी कमलोंको आनन्द देनेवाले आपकी जय हो। विश्वमें अद्वितीय धर्मचक्रके प्रवर्तक आपकी जय हो। मोक्षरूपी अस्ताचलमें अस्त होने वाले आपकी जय हो। इस प्रकार भावसे जिणेशकी वन्दना और तीन प्रदक्षिणा देकर वे तीनों पुनः वनवासके लिए चल पड़े ॥१–६॥

[११] रातके मध्यमें राम जैसें ही आगे बढ़े वैसे ही उन्हें एक महायुद्ध दिखाई दिया। कुपित विद्ध और रोमांच सहित जोड़े, सेनाकी तरह आपसमें लड़ रहे थे। 'वल-चल' कहकर एक

सर हुङ्कार-सार मेल्लन्तइँ । गरुअ-पहारहु उरु ढुक्कन्तइँ ॥ ४ ॥
खणें ओवडियइँ अहर डसन्तइँ । खणे किलिकिण्डि हिण्डि दरिसन्तइँ ॥ ५ ॥
खणें बहु बालालुञ्चि करन्तइँ । खणें णिप्फन्दइँ सेउ फुसन्तइँ ॥ ६ ॥
तं पेक्खेप्पिणु सुरय-महाहउ । सीयहें वयणु पजोयइ राहउ ॥ ७ ॥
पुणु वि हसन्तइँ केलि करन्तइँ । चलियइँ हट्ट-मग्गु जोयन्तइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

जे वि रमन्ता आसि लक्खण-रामहुँ सहुँ वि ।
णावइ सुरयासत्त आवण थिय मुहु ढक्केवि ॥ ९ ॥

[१२]

उज्झहे दाहिण-दिसएँ विणिग्गय । णाइँ णिरङ्कुस मत्त महा-गय ॥ १ ॥
ण सहइ पुरि बल-लक्खण-मुक्की । मुक्क कुमारि व पेसण चुक्की ॥ २ ॥
पुणु थोवन्तरें वियय-णामहों । तरुवर णमिय सुमित्त व रामहों ॥ ३ ॥
उट्टिय विहय वमालु करन्ता । णं वन्दिण मङ्गलइँ पढन्ता ॥ ४ ॥
अद्ध-कोसु संपाइय जावेंहिं । विमल विहाणु चउद्दिसु तावेंहिं ॥ ५ ॥
णिसि-णिसियरिएँ आसि जं गिलियउ । णाइँ पडीवउ जउ उग्गिलियउ ॥ ६ ॥
रेहइ सूर-विम्बु उग्गन्तउ । णावइ सुकइ-कव्वु पह-वन्तउ ॥ ७ ॥
पच्छएँ साहणु ताम पधाइउ । लहु हलहेइहें पासु पराइउ ॥ ८ ॥

घत्ता

सीय-सलक्खणु रामु पणमिउ णरवर-विन्देंहिं ।
णं वन्दिउ अहिसेएँ जिणु वत्तीसहिं इन्देंहिं ॥ ९ ॥

[१३]

हेमन्त - तुरङ्गम - वाहणेण । परियरिउ रामु णिय-साहणेण ॥ १ ॥
णं दिस-गउ लीलएँ पयइँ देन्तु । तं देसु पराइउ पारियत्तु ॥ २ ॥
अण्णु वि थोवन्तरु जाइ जाम । गम्भीर महाणइ दिट्ठ ताम ॥ ३ ॥

दूसरोंको पुकार रहे थे। कभी 'मारो-मारो, प्रहार करो प्रहार करो' यह कह रहे थे। हुंकार करनेमें श्रेष्ठ वे कामोत्पादक शब्द कर रहे थे, गुरुप्रहारसे वे उसे उड़ा रहे थे, कभी क्षणमें गिर कर अधर काटने लगते, तो दूसरे ही क्षणमें किलकारी भरकर शरीरयुद्ध दिखाने लगते। क्षण भरमें बाल नोंचने लगते और क्षणभरमें ही निष्पन्द होकर प्रस्वेद पोंछने लगते, ऐसे उस काम-महायुद्धको देखकर रामने सीताके मुखकी ओर ताका और फिर हँसते क्रीड़ा करते बाजार-मार्ग देखते हुए वे चल पड़े। सुरतासक्त रमण करती हुई जितनी भी आपण स्त्रियाँ थीं, राम लक्ष्मणकी आशंकासे मानो वे मुँह ढक कर रह गईं ॥१-६॥

[१२] निरंकुश महागजकी तरह वे लोग अयोध्यासे दक्षिण दिशाकी ओर निकले। परन्तु राम और लक्ष्मणसे मुक्त अयोध्या नगरी, सेवासे भ्रष्ट कुनारीकी तरह नहीं सोह रही थी। थोड़ी दूर चलनेपर प्रसिद्धनाम रामको पेड़ोंने, अच्छे अनुचरकी तरह नमस्कार किया। कलकल करते हुए पक्षी उसमेंसे ऐसे उठने लगे मानो बन्दीजन मंगलगान पढ़ रहे हों, जब वे लोग आधा कोश और चले तो चारों ओर सुंदर सवेरा फैल गया। रात रूपी निशाचरीने जो सूरजको पहले निगल लिया था उसने अब उसे उगल दिया। बादमें रामकी सेना भी उनके पीछे दौड़ी और शीघ्र ही उनके पास जा पहुँची। नरवरोंके समूहने लक्ष्मण और सीता सहित रामको उसी प्रकार प्रणाम किया जिस प्रकार अभिषेकके समय बत्तीस तरहके इन्द्र जिनको नमन करते हैं॥ १-६ ॥

[१३] राम हँसते हुए घोड़ोंकी सवारीसे सहित अपनी सेनासे घिर गये। पर वह दिग्गजकी भाँति अल्हड़तासे पैर रखते हुए पारियात्र देशमें पहुँचे। उससे आगे थोड़ा और चलनेपर

परिहच्छ - मच्छ - पुच्छुच्छलन्ति । फेणावलि - तोय-तुसार देन्ति ॥ ४ ॥
कारण्ड - डिम्भ - डुम्भिय-सरोह । वर-कमल-करम्बिय-जलपओह ॥ ५ ॥
हंसावलि - पक्ख - समुल्हसन्ति । कल्लोल - रोल - आवत्त दिन्ति ॥ ६ ॥
सोहइ वहु-वणगय-जूह-सहिय । डिण्डीर-पिण्ड दरिसन्ति अहिय ॥ ७ ॥
उच्छलइ वलइ पडिखलइ धाइ । मल्हन्ति महागय-लीलणाइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

ओहर-मयर-रउद्द सा सरि णयण-कडक्खिय ।
दुत्तर-दुप्पइसार णं दुग्गइ दुप्पेक्खिय ॥ ९ ॥

[१४]

सरि गम्भीर णियच्छिय जावेँहिं । सयलु वि सेण्णु णियत्तिउ तावेँहिं ॥१॥
'तुम्हेँहिं एवहिँ आणवडिच्छा । भरहहों भिच्च होह हियइच्छा ॥ २ ॥
उज्झ मुएप्पिणु दाहिणएसहों । अम्हेँहिँ जाएवउ वण-वासहो' ॥ ३ ॥
एम भणेप्पिणु समर-समत्था । सायर - वज्जावत्त - विहत्था ॥ ४ ॥
पइसरन्ति तहिँ सलिलेँ भयङ्करेँ । रामहों चडिय सीय वामएँ करेँ ॥ ५ ॥
सिय अरविन्दहों उप्परि णावइ । णावइ णियय-कित्ति दरिसावइ ॥ ६ ॥
णं उज्जोउ करावइ गयणहों । णाइँ पदरिसइ घण दहवयणहों ॥ ७ ॥
लहु जलवाहिणि-पुलिणु पवण्णइँ । णं भवियइँ णरयहों उत्तिण्णइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

वलिय पडीवा जोह जे पहु-पच्छलेँ लग्गा ।
कु-मुणि कु-वुद्धि कु-सील णं पव्वज्जहें भग्गा ॥ ९ ॥

[१५]

वलु वोलावेवि राय णियत्ता । णावइ सिद्धि कु-सिद्ध ण पत्ता ॥ १ ॥
वलिय के वि णीसासु मुअन्ता । खणेँ खणेँ 'हा हा राम' भणन्ता ॥ २ ॥

उन्हें गम्भीर नामकी महानदी मिली। वेगशील मछलियोंकी पूँछें उसमें उछल रही थीं। फेनधारासे युक्त जलकण हिमकण उड़ा रहे थे, तरंगमाला गजशिशुओंसे आन्दोलित हो रही थी। जल-प्रवाह कमलोंके समूहसे भरा हुआ था। हंसमालाके पंख उसमें उल्लसित हो रहे थे। तरंगोंके प्रहारसे आवर्त पड़ रहे थे। वन-गजोंके बहुतसे झुण्डोंसे वह शोभित हो रही थी। फेनका समूह अधिक दिखाई पड़ रहा था, वह नदी, महागजकी तरह लीला करती हुई; गिरती-पड़ती उछलती-मुड़ती दौड़ती हुई बह रही थी। ओहर और मगरोंसे भयंकर, और दुष्प्रवेश्य उस नदीको रामने ऐसे देखा मानो वह दुर्गति हो ॥१-६॥

[१४] रामने गम्भीर नदीको देखकर अपनी सेनाको लौटा दिया। वह बोले, "आज्ञापालक तुम लोग आजसे भरतके सैनिक बनो। हमलोग भी अयोध्या छोड़कर, वनवासके लिए दक्षिण देशकी ओर जायेंगे।" यह कहकर, समरमें समर्थ रामने नदीके भयंकर जलमें प्रवेश किया। समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष उनके हाथमें थे। तब सीता उनके बायें हाथ पर चढ़ गई, वह ऐसी जान पड़ रही थीं मानो लक्ष्मी कमलपर बैठकर अपनी कीर्ति दिखा रही हों, या आकाशको आलोकित कर रही हों या राम ही अपनी धन्या सीता, रावणको दिखा रहे हों। शीघ्र ही वे नदीके दूसरे तटपर पहुँच गये मानो भव्यों ही को नरकसे किसीने तार दिया हो। रामके पीछे लगे योधा लोग भी अयोध्याके लिए उसी प्रकार लौट गये जिस प्रकार संन्यास ग्रहण करनेपर कुमति कुशील और कुबुद्धि भाग खड़ी होती हैं ॥१-६॥

[१५] रामको विदा देते हुए राजा लोग बहुत व्यथित हुए। ठीक उसी तरह जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त न होनेपर खोटे साधक दुखी होते हैं। कोई निश्वास छोड़ रहा था। कोई 'हा राम' कहता

के वि महन्तें दुक्खें लइया । लोउ करेवि के वि पव्वइया ॥ ३ ॥
के वि तिमुण्ड-धारि बम्भारिय । के वि तिकाल-जोइ वय-धारिय ॥ ४ ॥
के वि पवण-धुय-धवल-विसालएँ । गम्पिणु तहिँ हरिसेण-जिणालएँ ॥ ५ ॥
थिय पव्वज्ज लएप्पिणु णरवर । सढ - कढोर - वर - मेढु-मर्हाहर ॥ ६ ॥
विजय-वियड्ढ-विओय-विमद्दण । धीर - सुवीर - सच्चे-पियवद्धण ॥ ७ ॥
पुङ्गम - पुण्डरीय - पुरिसुत्तम । विउल - विसाल-रणुम्मिय उत्तम ॥ ८ ॥

घत्ता

इय एक्केक्क-पहाण जिणवर-चलण णमंसेँवि ।
संजम-णियम-गुणेहिँ अप्पउ थिय स इँ भू सँवि ॥ ९ ॥

०

[२४. चउवीसमो सन्धि]

गएँ वण-वासहोँ रामेँ उज्झ ण चित्तहोँ भावइ ।
थिय णीसास मुअन्ति महि उण्हालएँ णावइ ॥

[१]

सयलु वि जणु उम्माहिज्जन्तउ । खणु वि ण थक्कइ णामु लयन्तउ ॥ १ ॥
उब्भेलिज्जइ गिज्जइ लक्खणु । मुरव - वज्जेँ वाइज्जइ लक्खणु ॥ २ ॥
सुइ-सिद्धन्त-पुराणेँहिँ लक्खणु । ओङ्कारेण पढिज्जइ लक्खणु ॥ ३ ॥
अण्णु वि जं जं किं वि स-लक्खणु । लक्खण-णामेँ वुच्चइ लक्खणु ॥ ४ ॥
का वि णारि सारङ्गि व वुण्णी । वड्डी धाह मुएवि परुण्णी ॥ ५ ॥
का वि णारि जं लेइ पसाहणु । तं उल्हावइ जाणइ लक्खणु ॥ ६ ॥
का वि णारि जं परिहइ कङ्कणु । धरइ सु गाढउ जाणइ लक्खणु ॥ ७ ॥
का वि णारि जं जोयइ दप्पणु । अण्णु ण पेक्खइ मेल्लेँवि लक्खणु ॥ ८ ॥
तो एत्थन्तरेँ पाणिय-हारिउ । पुरेँ वोल्लन्ति परोप्परु णारिउ ॥ ९ ॥
'सो पल्लङ्कु तं जेँ उवहाणउ । सेज्ज वि स जेँ तं जेँ पच्छाणउ ॥ १० ॥

कहता हुआ लौट रहा था। कोई घोर दुःख पाकर प्रव्रजित हो गये। कोई त्रिपुण्ड लगाकर सन्यासी हो गये। कोई व्रत धारण करनेवाले त्रिकाल योगी बन गये। कोई जाकर हरिषेण राजाके विशाल धवल जिनालयमें ठहर गये। वहाँ पर मेरु महीधर विजय वियद्र्द वियोगविमर्दन धीर सुवीर सत्य प्रियवर्द्धन पुंगम पुण्डरीक पुरुषोत्तम विपुल विशाल और रणोन्मद और उत्तम प्रकृतिके राजाओंने दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार सभी राजाओंने जिन चरणोंकी वन्दनाकर अपने आपको संयम नियम और गुणोंकी साधनामें अर्पित कर दिया।

●

चौबीसवीं सन्धि

रामके वन जानेपर, अयोध्या नगरी किसीको भी अच्छी नहीं लग रही थी। ग्रीष्मकी संतप्त धरतीकी भाँति, वह उच्छ्वास छोड़ती हुई जान पड़ रही थी।

[१] उन्मादग्रस्त सभी लोग रामका नाम लेकर भी क्षण भरको नहीं रह पा रहे थे। नृत्य और गानमें लक्खण (लक्ष्मण-लक्षण) ही कहा जा रहा था। मृदंगमें भी लक्खण बजाया जा रहा था। श्रुति सिद्धान्त और पुराणमें भी लक्खणकी ही चर्चा थी। ओंकारके साथ भी लक्खण पढ़ा जारहा था। और जो भी लक्षण सहित था, वह लक्ष्मणके नामसे ही कहा जाता था। कोई नारी हरिनीकी तरह विपण्ण हो, डाढ़ मारकर रो रही थी। कोई नारी प्रसाधन करती हुई लक्ष्मण समझकर उल्लसित हो उठती। कोई स्त्री कंगन पहनते समय उसे ही लक्ष्मण समझकर उसे और मजबूतीसे पकड़ लेती। कोई नारी दर्पण देखती, पर उसमें लक्ष्मणके सिवा उसे और कुछ दीखता नहीं था। नगरमें पनहारिनें भी आपसमें यही चर्चा कर रही थीं कि वही पलंग वे ही उपधान वही सेज और वही प्रच्छादन (चादर), वही घर,

घत्ता

तं घरु रयणइँ ताइ तं चित्तयम्मु स-लक्खणु ।
णवर ण दीसइ माएँ रामु ससीय-सलक्खणु ॥ ११ ॥

[२]

ताम पडु पडह डडिपहय पडु-पङ्गणे । णाइँ सुर-दुन्दुही दिण्ण गयणङ्गणे ॥१॥
रसिय सय सङ्ख जायं महा-गोन्दलं । टिविल-टण्टन्त-घुम्मन्त-वरमन्दलं ॥२॥
ताल - कंसाल - कोलाहलं काहलं । गीय संगीय गिज्जन्त-वर-मङ्गलं ॥३॥
ढमरु-तिरिडिक्किया-झल्लरी-रउरवं । भम्म-भम्भीस गम्भीर-भेरी-रवं ॥४॥
घण्ट - जयघण्ट - संघट्ट - टङ्कारवं । घोल-उल्लोल-हलबोल-मुहलारवं ॥५॥
तेण सद्देण रोमञ्च-कञ्चुब्भा । गोन्दलुद्दाम-बहु-बहल-अच्छमुआ ॥६॥
सुहड-संघाय सव्वा य थिय पङ्गणे । मेरु-सिहरेसु णं अमर जिण-जम्मणे ॥७॥
पणइ-फम्फाव-णड-छत्त-कइ वन्दणं । 'णन्द जय भद्दजय ज़यहि'वर सद्दणं ।८।

घत्ता

लक्खण-रामहुँ वप्पु णिय-भिच्चेहिँ परियरियउ ।
जिण-अहिसेयहोँ कज्जेँ णं सुरवइ णीसरियउ ॥ ९ ॥

[३]

जं णीसरिउ राउ आणन्दे । वुत्तु णवेप्पिणु भरह-णरिन्दें ॥ १ ॥
'हउ मि देव पइँ सहुँ पव्वज्जमि । दुग्गइ-गामिउ रज्जु ण भुञ्जमि ॥ २ ॥
रज्जु असारु वारु संसारहोँ । रज्जु खणेण णेइ तम्वारहोँ ॥ ३ ॥
रज्जु भयङ्करु इह-पर-लोयहोँ । रज्जेँ गम्मइ णिच्च- णिगोयहोँ ॥ ४ ॥
रज्जेँ होउ होउ महु सरियउ । सुन्दरु तो किं पइँ परिहरियउ ॥ ५ ॥

वे ही रतन, लक्षण सहित वही चित्रकारी सब कुछ वही है। हे माँ, केवल लक्ष्मण और सीता सहित राम नहीं दीख पड़ते ॥१-११॥

[२] इतने ही में राजा दशरथके आँगनमें नगाड़े बज उठे मानो गगनांगनमें देवोंकी दुंदुभि ही बज उठी हो। सैकड़ों शंख गूँज उठे। उससे खूब कोलाहल हुआ। टिविलकी टंकारसे मंदराचल हिल उठा। ताल और कंसालका कोलाहल मच गया। उत्तम मंगलोंसे युक्त गीत और संगीत हो रहा था। डमरु तिरिडिक्कि और झल्लरीसे भयंकर, भम्भ भम्भीस और गंभीर भेरीका शब्द गूँज उठा। घंट और जयघंटोंके संघर्षकी टंकार तथा घोल उल्लोल हलबोल और मुहलकी ध्वनि फैल गई। इस ध्वनिको सुनकर युद्धमें उत्कट पुलकित कवच पहने और अत्यंत आश्चर्यसे भरे हुए सभी सुभट-समूह राजाके आँगनमें आकर ऐसे एकत्र हो गये मानो जिनजन्मके समय, सुमेरु पर्वतके शिखरपर देवसमूह ही आ गये हों। प्रणत चारण नट छत्र कवि और बंदीजन कह रहे थे—"बढ़ो, जय हो, कल्याण हो, जय हो"। अपने अनुचरोंसे घिरे हुए राम लक्ष्मणके बाप (दशरथ) ऐसे जान पड़ते थे मानो जिनेंद्रका अभिषेक करनेके लिए इन्द्र ही निकल पड़ा हो ॥१-६॥

[३] राजा जैसे ही आनन्दपूर्वक निकलने को हुआ वैसे ही भरतने प्रणाम करके कहा, "हे देव, मैं भी आपके साथ संन्यास ग्रहण करूँगा। दुर्गतिमें ले जानेवाले इस राज्यका मैं भोग नहीं करूँगा। राज्य असार और संसारका कारण है। राज्य क्षणभरमें विनाशकी ओर ले जाता है। दोनों लोकमें राज्य भयंकर होता है। राज्यसे नित्य निगोदमें जाना पड़ता है। राज्य रहे। यदि यह सुन्दर और मधुकी तरह मीठा होता तो आप क्यों

रज्जु अकज्जु कहिउ मुणि - छेयहिँ । दुट्ठ-कलत्तु व भुत्तु अणेयहिँ ॥ ६ ॥
दोसवन्तु मयलञ्छण - बिम्बु व । बहु-दुक्खाउरु दुग्ग-कुडुम्बु व ॥ ७ ॥
तो वि जीउ पुणु रज्जहों कङ्खइ । अणुदिणु आउ गलन्तु ण लक्खइ ॥८॥

घत्ता

जिह महुबिन्दुहें कज्जें करहु ण पेक्खइ कक्करु ।
तिह जिउ विसयासत्तु रज्जें गउ सय- सक्करु' ॥ ९ ॥

[४]

भरहु चवन्तु णिवारिउ राएं । 'अज्ज वि तुज्झु काइँ तव-वाएं ॥ १ ॥
अज्ज वि रज्जु करहि सुहु भुञ्जहि । अज्ज वि विसय-सुक्खु अणुहुञ्जहि ॥ २ ॥
अज्ज वि तुहुँ तम्बोलु समाणहि । अज्ज वि वर-उज्जाणइँ माणहि ॥ ३ ॥
अज्जु वि अङ्गु स-इच्छएँ मण्डहि । अज्ज वि वर-विलयउ अवरुण्डहि ॥ ४ ॥
अज्ज वि जोग्गउ सव्वाहरणहों । अज्ज वि कवणु कालु तव-चरणहों ॥ ५ ॥
जिण-पव्वज्ज होइ अइ-दुसहिय । कें बावीस परीसह विसहिय ॥ ६ ॥
कें जिय चउ-कसाय-रिउ दुज्जय । कें आयामिय पञ्च महव्वय ॥ ७ ॥
कें किउ पञ्चहुँ विसयहुँ णिग्गहु । कें परिसेसिउ सयलु परिग्गहु ॥ ८ ॥
को दुम- मूलें वसिउ वरिसालएँ । को एक्कङ्गें थिउ सीयालएँ ॥ ९ ॥
कें उण्हालएँ किउ अत्तावणु । एँउ तव-चरणु होइ भीसावणु ॥ १० ॥

घत्ता

भरह म वड्डिउ बोल्लि तुहुँ सो अज्ज वि बालु ।
भुञ्जहि विसय-सुहाइँ को पव्वज्जहें कालु, ॥११॥

[५]

तं णिसुणेवि भरहु आरुट्ठउ । मत्त - गइन्दु व चित्तें दुट्ठउ ॥ १ ॥
विरयउ ताव वयणु पइँ वुत्तउ । किं बालहों तव-चरणु ण जुत्तउ ॥ २ ॥

उसे छोड़ते, और फिर राज्य तो अन्तमें अनर्थकारी होता है। दुष्ट स्त्री की तरह अनेकोंने उसका भोग किया है। चन्द्रबिम्बकी तरह वह दोषयुक्त है और दरिद्र कुटुम्बकी तरह बहुतसे दुखोंसे भरा है। फिर भी मनुष्य राज्यकी ही कामना करता है, प्रति दिन गलती हुई अपनी आयुको नहीं देखता। जिस तरह मधुकी बूँदके लिए करभ कंकड़ नहीं देखता, उसी तरह जीव भी राज्यके कारण अपने सौ-सौ टुकड़े करवा डालता है ॥१-६॥

[४] तब दशरथ राजाने भरतको बोलतेमें ही टोककर कहा—"अभी तुझे तपकी बात करनेसे क्या! अभी तुम राज्य और विषय-सुखका भोग करो। अभी तुम ताम्बूलका सम्मान करो। अभी अच्छे उद्यानोंको मानो। अभी अपनी इच्छासे शरीरको सजाओ। अभी, उत्तम बालाका आलिंगन करो। अभी तुम सभी तरहके अलंकार पहनने योग्य हो। अभी तुम्हारे तपका यह कौन-सा समय है। फिर यह जिन-दीक्षा अत्यंत कठिन है। बाईस परीषह कौन सहन कर सकता है? चार कषाय रूपी अजेय शत्रुओंको कौन जीत सकता है? पाँच महाव्रतोंका पालन करनेमें कौन समर्थ है? पांच इन्द्रिय विषयोंका निग्रह कौन कर सका है? समस्त परिग्रहका त्याग करनेमें कौन समर्थ है? वर्षा-कालमें कौन वृक्षके मूलमें निवास कर सकता है? शीतकालमें कौन नग्न रह सकता है? ग्रीष्मकालमें तप कौन साध सकता है? यह तपश्चरण सचमुच भीषण है, भरत बढ़-चढ़कर मत बोलो, तुम अभी बच्चे हो! अभी विषयसुखका आनन्द लो, यह संन्यास लेने का कौन-सा समय है।" ॥१-११॥

[५] यह सुनकर, भरत रूठ गया, मत्तगजकी तरह उसका मन विकृत हो गया। वह बोला, "तात, आपने अत्यंत अशोभन

किं वालत्तणु सुहेंहिं ण मुच्चइ। किं वालहों दय-धम्मु ण रुच्चइ ॥ ३ ॥
किं वालहों पव्वज्ज म होओ। कि वालहों दूसिउ पर-लोओ ॥ ४ ॥
किं वालहों सम्मत्तु म होओ। किं वालहों णउ इट्ठ-विओओ ॥ ५ ॥
किं वालहों जर-मरणु ण ढुक्कइ। किं वालहों जमु दिवसु वि चुक्कइ ॥ ६ ॥
तं णिसुणेवि भरहु णिब्भच्छिउ। 'तो किं पहिलउ पट्टु पडिच्छिउ ॥ ७ ॥
एवहिँ सयलु वि रज्जु करेवउ। पच्छलँ पुणु तव-चरणु चरेवउ' ॥ ८ ॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु राउ सच्चु समप्पेंवि भज्जहें।
भरहहों वन्धेंवि पट्टु दसरहु गउ पव्वज्जहें ॥९॥

[६]

सुरवर - वन्दिएँ धवल - विसालएँ। गम्पिणु सिद्धकूडे चइतालएँ ॥ १ ॥
दसरहु थिउ पव्वज्ज लएप्पिणु। पञ्च मुट्ठि सिरें लोउ करेप्पिणु ॥२॥
तेण समाणु सणेहें लइयउ। चालीसोत्तरु सउ पव्वइयउ ॥ ३ ॥
कण्ठा - कडय - मउड अवयारेंवि। दुद्धर पञ्च महव्वय धारेंवि ॥ ४ ॥
थिय णीसङ्ग णाग णं विसहर। अहवइ समय-चाल णं विसहर ॥ ५॥
णं केसरि गय - मासाहारिय। णं परदार-गमण परदारिय ॥ ६ ॥
केण वि कहिउ ताम भरहेसहों। गय सोमित्ति-राम वण-वासहों ॥ ७ ॥
तं णिसुणेवि वयणु भुय - वाहउ। पडिउ महीहरो व्व वज्जाहउ ॥ ८ ॥

घत्ता

जं मुच्छाविउ राउ सयलु वि जणु मुह-कायरु।
पलयाणल-संतत्तु रसेंवि लग्गु णं सायरु ॥ ९ ॥

[७]

चन्देणेण पव्वालिज्जन्तउ। चमरक्खेवेंहिँ विज्जिज्जन्तउ ॥ १ ॥

कहा, क्या वालकको तपस्या युक्त नहीं। क्या वालकपन सुखोंसे वंचित नहीं होता? क्या वालकको दया धर्म नहीं रुचता? क्या वालकको संन्यास नहीं होता? वालकका परलोक आप क्यों दूषित करते हैं? क्या वालकको सम्यग् दर्शन नहीं होता? क्या वालकको इष्ट-वियोग नहीं होता, क्या वालकके पास बुढ़ापा और मृत्यु नहीं फटकती, क्या उसे यमका दिन छोड़ देता है?" तव भरतको डाँटते हुए दशरथने कहा, "तो फिर तुमने पहले राज्य पदकी कामना क्यों की? इस समय समस्त राज्यको सम्हालो, तप फिर वादमें साध लेना!" यह कह, कैकेयीको वरदान दे, और भरत को राज्यपट्ट बाँधकर दशरथ दीक्षा लेनेके लिए चल दिये ॥१–६॥

[६] वह, देववंदित, धवल विशाल सिद्धकूट चैत्यालयमें पहुँचे। और पञ्चमुष्टि केशलोंचकर उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके प्रेमके वशीभूत होकर एक सौ चालीस दूसरे राजाओंने भी दीक्षा ग्रहण की। कंठहार, मुकुट और कटक उतारकर, पंच महाव्रत धारणकर वे तप साधने लगे। अनासंग वे मुनि नागकी तरह, विषधर (धर्म या विष धारण करनेवाले) थे, अथवा वर्षा-कालके समान विषधर (जलचर धर्मवाले) थे। सिंहकी तरह मांसाहारी (एक माहमें भोजन करनेवाले मासाहारी) थे। परदार-गामीकी तरह परदारगामी (मुक्तिगामी) थे। इतनेमें किसीने आकर भरतको यह खबर दी कि लक्ष्मण और राम वनको चले गये हैं। यह सुनते ही कांतशरीर भरत मूर्छित होकर, वज्राहत पहाड़की तरह गिर पड़े। उनके मूर्छित होते ही, सब लोगोंके मुख कातर हो उठे। मानो प्रलयकी आगसे संतप्त होकर समुद्र ही गरज उठा हो।"

[७] चन्दनका लेप और चामरधारिणी स्त्रीके हवा करनेपर,

दुक्खु दुक्खु आसासिउ राणउ । जरढ-मियङ्कु व थिउ विद्दाणउ ॥ २ ॥
अविरल-अंसु-जलोल्लिय-णायणउ । एम पजम्पिउ गग्गर-वयणउ ॥ ३ ॥
णिवडिय अज्जु असणि आयासहों । अज्जु अमङ्गलु दसरह-वंसहो ॥ ४ ॥
अज्जु जाउ हउँ सूडिय-पक्खउ । दुह-भायणु पर-मुहहँ उवेक्खउ ॥ ५॥
अज्जु णयरु सिय-सम्पय-मेल्लिउ । अज्जु रज्जु पर-चक्कें पेल्लिउ ॥ ६ ॥
एम पलाउ करेवि सहग्गएँ । राहव-जणणिहें गउ ओलग्गएँ ॥ ७ ॥
केस-विसण्ठुल दिट्ठ रुअन्ति । अंसु-पवाह धाह मेल्लन्ती ॥ ८ ॥

घत्ता

धीरिय भरह-णरिन्दे होउ माएँ महु रज्जें ।
आणमि लक्खण-राम रोवहि काइँ अकज्जें ॥९॥

[८]

एम भणेवि भरहु संचल्लिउ । तुरिउ गवेसहों हत्थुत्थल्लिउ ॥ १ ॥
दिण्णु सङ्खु जय-पडहु पवज्जिउ । णं चन्दुग्गमें उवहि पगज्जिउ ॥ २ ॥
पहु-मग्गेण णराहिउ लग्गउ । जीवहों कम्मु जेम अणुलग्गउ ॥ ३ ॥
छट्ठएँ दिवसें पराइउ तेत्तहें । सीय स-लक्खणु राहउ जेत्तहें ॥ ४ ॥
छुडु छुडु सलिलु पिएवि णिविट्ठइँ । सरवर-तीरें लयाहरें दिट्ठइँ ॥ ५ ॥
चलणेंहिं पडिउ भरहु तग्गय-मणु । णाइँ जिणिन्दहों दससय-लोयणु ॥६॥
'थक्कु देव मं जाहि पवासहों । होहि तरण्डउ दसरह-वंसहों ॥ ७ ॥
हउँ सत्तुहणु भिच्च तउ वे वि । लक्खणु मन्ति सीय महएवि ॥ ८ ॥

घत्ता

जिह णक्खत्तेंहिं चन्दु इन्दु जेम सुर-लोएं ।
तिह तुहुँ भुञ्जहि रज्जु परिमिउ बन्धव-लोएं ॥९॥

राजा भरत बड़ी कठिनाईसे आश्वस्त हुए। परंतु वह राहु ग्रस्त चन्द्रमाकी तरह म्लान दीख पड़ रहे थे। नेत्रोंसे अविरल अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी। गद्गद स्वरमें उन्होंने कहा, "आज आकाशसे वज्र टूट पड़ा है। आज दशरथ-कुलका अमंगल आ गया है। आज, अपने पक्षका नाश होनेसे मैं परमुखापेक्षी और दीन हो गया हूँ। आज इस नगरकी श्री और सम्पदा जाती रही। आज हमारे राज्य पर शत्रु-चक्र घूम गया है।" ऐसा प्रलाप कर वह शीघ्र ही रामकी माताकी सेवामें पहुँचे। उन्होंने देखा कि कौशल्याके बाल बिखरे हैं, आँसुओंकी धारा बह रही है। वह, डाढ़ मारकर रो रही हैं। उन्होंने धीरज बँधाते हुए कहा—"मां लो, मैं राज्य करनेसे रहा, अभी जाकर राम लक्ष्मणको ले आता हूँ। रोती किसलिए हो।" ॥१–६॥

[८] यह कहकर, भरतने (अनुचरोंको) आदेश दिया "शीघ्र खोजो।" वह स्वयं भी चल पड़ा। उसने शंख और जय-पटह बजवा दिये, मानो चन्द्रोदयमें समुद्र ही गरज उठा हो। राजा भरत प्रभु रामके मार्ग पर उसी तरह लग गये जैसे जीवके पीछे पीछे कर्म लगे रहते हैं। छठे दिन वह वहां पहुँच सके, जहां सीता और लक्ष्मणके साथ राम थे। सरोवरके किनारे पर लतागृहमें, शीघ्र ही पानी पीकर निवृत्त हुए उन्हें भरतने देखा। तल्लीन भरत दौड़कर प्रभु रामके चरणोंमें उसी तरह गिर पड़े जिस तरह इन्द्र जिनेन्द्रके चरणोंमें गिर पड़ता है। वह बोले, "देव, ठहरिये, प्रवासको मत जाइये, नहीं तो दशरथकुलका नाश हो जायगा, शत्रुघ्न और मैं आपके सेवक हैं, लक्ष्मण मंत्री, और सीता महादेवी! आप अपने बन्धुजनोंसे घिरे हुए उसी तरह राज्यका भोग करें, जैसे नक्षत्रोंसे चंद्र और सुरलोकसे घिरकर इन्द्र शासन करता है ॥१–६॥

[९]

तं वयणु सुणेंवि दसरह - सुएण । अवगूढु भरहु हरिसिय-भुएण ॥ १ ॥
सच्चउ माया - पिय - परम - दासु । पइँ मेल्लेंवि अण्णहों विणउ कासु' ॥२॥
अवरोप्परु ए आलाव जाम । तहिँ जुवइ-सयहिँ परियरिय ताम ॥३॥
लक्खिज्जइ भरहहों तणिय माय । णं गय-वड भड भञ्जन्ति आय ॥ ४ ॥
णं तिलय - विहूसिय वच्छराइ । स- पओहर अम्बर-सोह णाइँ ॥ ५ ॥
णं भरहहों सम्पय - रिद्धि - विद्धि । णं रामहों गमणहों तणिय सिद्धि ॥६॥
णं भरहहों सुन्दर - सोक्ख-खाणि । णं रामहों इट्ठ-कलत्त - हाणि ॥ ७ ॥
जं भणइ भरहु 'तुहुँ आउ आउ । वण-वासहों राहउ जाउ जाउ' ॥ ८ ॥

घत्ता

सु-पय सु-सन्धि सु-णाम वयण-विहत्ति-विहूसिय ।
कह वायरणहों जेम केक्कय एन्ति पदीसिय ॥ ९ ॥

[१०]

सहुँ सीयएँ दसरह - णन्दणेहिँ । जोक्कारिय राम - जणद्दणेहिँ ॥ १ ॥
पुणु वुच्चइ सीर - प्पहरणेण । 'किं आणिउ भरहु अकारणेण ॥ २ ॥
सुणु माएँ महारउ परम - तच्चु । पालेवउ तायहों तणउ सच्चु ॥ ३ ॥
णउ तुरएँहिँ णउ रहवरेँहिँ कज्जु । णउ सोलह वरिसइँ करमि रज्जु ॥४॥
जं दिण्णु सच्चु ताएं ति - वार । तं मइ मि दिण्णु तुम्ह सय-वार' ॥५॥
एँउ वयणु भणेप्पिणु सुह - समिद्धु । सइँ हत्थें भरहहों पट्टु बद्धु ॥ ६ ॥
आउच्छेंवि पर - वल - मद्दय - वट्टु । वण-वासहों राहउ पुणु पयट्टु ॥ ७ ॥
गउ भरहु णियत्तु सु - पुज्जमाणु । जिण-भवण पत्तु मिच्चेँहिँ समाणु ॥८॥

[९] यह सुनकर दशरथ-पुत्र रामने अपनी प्रसन्न भुजाओंसे भरतको हृदयसे लगा लिया, और कहा, "भरत, तुम ही माता-पिताके सच्चे सेवक हो। भला इतनी विनय तुम्हें छोड़कर और किसमें हो सकती है ?" आपसमें उनकी इस तरह बातें हो ही रही थी कि इतनेमें उन्हें सैकड़ों स्त्रियोंने घेर लिया। उनके बीच आती हुई, भरतकी माँ ऐसी दीख पड़ी मानो भटसमूहको चीरती हुई गजघटा ही आ रही हो। या तिलक वृक्षसे विभूषित वृक्ष राजि हो। या सपयोधर (मेघ और स्तन) अम्बर, कपड़ा, आकाश, की शोभा हो। या मानो भरतकी रिद्धि और वृद्धि हो। या रामके वन-गमनकी सिद्धि हो। या भरतके सुन्दर सुखोंकी खान हो और रामके इष्ट तथा स्त्रीकी हानि हो। मानो वह कह रही थी—"भरत तुम आओ आओ और राम तुम वनवासको जाओ, जाओ।" रामने कैकेयीको व्याकरण-शास्त्रकी तरह जाते हुए देखा, वह, सुपद (पद और पैर) सुसंधि (अंगोंके जोड़ और शब्दोंकी संधिसे युक्त) तथा वचन विभक्ति (तीन वचन, सात विभक्तियाँ, और वचन विभागसे) विभूषित थी ॥१–९॥

[१०] तब दशरथ-पुत्र जनार्दन रामने सीतासहित उसका अभिनन्दन किया। वह बोले, "माँ, भरत तुम्हें अकारण क्यों लाया। माँ, मेरा परमतत्त्व (सिद्धांत) सुनो। मैं पिताके वचनका पालन करूँगा। न तो मुझे घोड़ोंसे काम है, और न श्रेष्ठ रथोंसे। तातने जो वचन तुम्हें तीन बार दिया है, उसे मैं सौ बार देता हूँ।" यह वचन कहकर, सुख और समृद्धिसे सपन्न उन्होंने राज पट्ट भरतके सिरपर बाँध दिया। तदनन्तर, शत्रु-बलनाशक राम, माँसे पूछकर वहाँसे आगे बढ़ गये। व्यथित मन भरत भी, अपने अनुचरोंके साथ पूज्य जिन-चैत्यमें पहुँचा। भरत तथा

घत्ता

विहुँ मुणि-धवलहुँ पासेँ भरहेँ लइउ अवग्गहु।
'दिट्ठएँ राहवचन्दें महु णिवित्ति इय-रज्जहों' ॥९॥

[११]

एम चवेवि उच्चलिउ महाइउ। राहव-जणणिहेँ भवणु पराइउ ॥१॥
विणउ करेप्पिणु पासु पढुक्किउ। 'रामु माएँ मइँ धरेवि ण सक्किउ ॥२॥
हउँ तुम्हेवहिँ 'आणवडिच्छउ। पेम्मणयारउ चलण-णियच्छउ' ॥३॥
धीरेवि एम जणणि दणु-दमणहों। भरहु णराहिउ गउ णिय-भवणहों ॥४॥
जाणइ हरि हलहरु विहरन्तइँ। णिग्गि मि तावस-वणु संपत्तइँ ॥५॥
तावस के वि दिट्ठ जड-धारिय। कु-जण कु-गाम जेम जड-धारिय ॥६॥
के वि तिदण्डि के वि थाडीसर। कुविय णरिन्द जेम थाडीसर ॥७॥
के वि रुद्द रुद्दक्ख-हत्था। भेट्ठ जेम रुद्दक्ख-हत्था ॥८॥

घत्ता

तहिँ पइसन्ती सीय लक्खण-राम-विहूसिय।
विहिँ पक्खेहिँ समाण पुण्णिम णाइँ पदोसिय ॥९॥

[१२]

अण्णु वि थोवन्तरु विहरन्तइँ। वणु धाणुक्कहँ पुणु संपत्तइँ ॥१॥
जहिँ जणवउ मय-मन्थ-णियन्थउ। वरहिण-पिच्छ-पसाहिय-हत्थउ ॥२॥
कन्द-मूल-बहु-वणफल-भुञ्जउ। सिरें-वड-माल बद्ध गलें गुञ्जउ ॥३॥
जहिँ जुवइउ छुड्डु जाय विवाहउ। मयकरि-रय वलयङ्किय-बाहउ ॥४॥
मयकरि-कुम्भु करेप्पिणु उक्खलु। लेवि विमाण-मुसलु धवलुज्जलु ॥५॥
मोत्तिय-चाउल-दलणोवट्ठियउ। चुम्बिय-वयणउ मयणुम्मइयउ ॥६॥

शत्रुघ्न, दोनोंने धवल मुनिके पास जाकर यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि रामके देखनेपर (वनसे वापस आते ही।) हय और राज्यसे निवृत्त हो जायेंगे।"

[११] (उक्त व्रत लेकर) भरतने वहाँसे प्रस्थान किया और वह सीधे रामकी माताके भवनमें पहुँचे। पास जाकर उन्होंने विनय की, "माँ, मैं रामको नहीं ला सका, मैं तुम्हारा आज्ञाकारी, सेवक और चरणोंका दास हूँ।" उन्हें इस तरह धीरज बँधाकर, भरत अपने भवनको चले गये। इधर राम जानकी और लक्ष्मण तीनों ही घूमते हुए तापस वनमें जा पहुँचे। उसमें तरह-तरहके तपस्वी थे। वहाँ पर कितने ही तपस्वी जटाधारी दिखाई दिये जो कुजन और खोटे गाँवकी तरह-जड़हारिय (मूर्ख और जटाधारी) थे। कोई त्रिदंडी और धाड़ीश्वर थे जो कुपित राजाकी तरह धाड़ीसर (तीर्थ जानेवाले, जोरसे चिल्लानेवाले !!!) कोई त्रिशूल हाथमें लिये रुद्र थे, जो महावतकी तरह रुद्राकुंश (अंकुश और त्रिशूल लिये थे। वहाँपर लक्ष्मण और रामसे विभूषित सीता इस प्रकार प्रतिष्ठित हो रही थी जिस प्रकार समान दोनों पक्षोंके मध्य पूर्णिमा प्रतिष्ठित हो ॥१-६॥

[१२] थोड़ी दूर और आगे जानेपर उन्हें धानुष्क वन मिला, वहाँके लोग मृगचर्म और कांवलीसे अपनेको ढके हुए थे, उनके हाथ मोर पंखोंसे सजे थे। कंदमूल और बहुतसे वनफल ही उनका भोजन था, उनके सिरपर वटकी माला, और गलेमें गुञ्जे पड़े थे। वहाँ युवतियोंकी शादी छुटपनमें शीघ्र हो जाती थी। उनके हाथोंमें हाथीदाँतकी चूड़ियाँ थीं। वे हाथियोंके कुंभ-स्थलोंकी ओखलियोंमें हाथीदांतके बने सफेद मूसलोंसे मोतीरूपी चावलोंको कूट रही थीं। कामसे उत्तेजित होकर वे शीघ्र मुँह

तं तेहउ वणु भिल्लहुँ केरउ। हरि-वलएवेंहिँ किउ विवरेरउ ॥७॥

घत्ता

तं मेल्लेंवि घरवारु लोयहिँ हरिसिय-देहेंहिँ।
छाइय लक्खण-राम चन्द्र-सूर जिम मेहेंहिँ ॥८॥

[१३]

स - हरि स-भज्जउ रामु धणुद्धरु। अण्णु वि जाम जाइ थोवन्तरु ॥१॥
दिट्ठ गोट्ठय णाइँ सु - वेसइँ। णं णरवइ-मन्दिरइँ सु-वेसइँ ॥२॥
जुज्झन्तइँ ढेक्कार मुअन्तइँ। णलिणि-मुणाल-सण्ड तोडन्तइँ ॥३॥
कत्थइ वच्छ - हणइँ णीसङ्कइँ। पव्वइयाइँ व णिरु णीसङ्कइँ ॥४॥
कत्थइ जणवउ सिसिरें चच्चिउ। पढम-सूइ सिरें धरेंवि पणच्चिउ ॥५॥
कत्थइ मन्था - मन्थिय - मन्थणि। कुणइ सद्दु सुरए व विलासिणि ॥६॥
कत्थइ णारि - णियम्वें सुहासिउ। णावइ कुडउ कुणइ मुहवासिउ ॥७॥
कत्थइ डिम्भउ परियन्दिज्जइ। अम्भाहीरउ गेउ झुणिज्जइ ॥८॥

घत्ता

तं पेक्खेप्पिणु गोट्ठु णारीयण-परियरियउ।
णावइ तिहि मि जणेहिँ वालत्तणु संभरियउ ॥९॥

[१४]

तं मेल्लेप्पिणु गोट्ठु रवण्णउ। पुणु वणु पइसरन्ति आरण्णउ ॥ १ ॥
जं फल - पत्त - रिद्धि-संपण्णउ। तरल-तमाल- ताल - संछण्णउ ॥ २ ॥
वणं जिणालयं जहा स-चन्दणं। जिणिन्द-सासणं जहा स-सावयं ॥ ३ ॥
महा - रणङ्गणं जहा सवासणं। मइन्द-कन्धरं जहा स-केसरं ॥ ४ ॥
णरिन्द - मन्दिरं जहा स-माउयं। सुसङ्घ-णच्चियं जहा स-तालयं ॥ ५ ॥

चूम लेती थीं। भीलोंकी ऐसी उस वस्तीमें राम और लक्ष्मणने निवास किया। उन्हें देखकर भील वहुत प्रसन्न हुए, और पुलकित होकर उन्होंने उनकी कुटियाको ऐसे घेर लिया, मानो सूर्य और चन्द्रको मेघोंने घेर लिया हो ॥१-८॥

[१३] भाई लक्ष्मण और पत्नी सीताके साथ थोड़ी दूर और जानेपर रामको सुवेश गोठ ऐसे दीख पड़े मानो शोभन द्वार और झंपन सहित राजभवन ही हों। कहीं पशु ढेक्कार ध्वनि करके लड़ रहे थे। कही पर सींग रहित वछड़े ऐसे जान पड़ते थे मानो निसंग (परिग्रह रहित) नये दीक्षित साधु ही हों। कहीं लोग दधिसे अर्चित थे, कहीं नई धानोंके अंकुरको सिरपर रखकर नाच रहे थे। कहीं मट्ठा विलोनेवाली मथानी, विलासिनी स्त्रीकी सुरतिकी तरह मधुर ध्वनि कर रही थी, कहींपर नारी-नितम्ब ऐसे शोभित थे मानो मुख सुवासित नागवृक्ष ही हों। कहीं पालने में वच्चे झुलाये जा रहे थे। और उनकी सुंदर लोरियाँ सुनाई पड़ रही थीं। स्त्रियोंसे घिरे हुए उस गोठको देखकर, उन तीनोंको जैसे अपने वचपनकी याद आ गई ॥१-६॥

[१४] उस गोठ स्थानको छोड़कर, भयानक वनके भीतर उन्होंने प्रवेश किया। वह वन फल और पत्तोंसे संपन्न था। तरला तमाल और तालके पेड़ोंसे आच्छन्न था। वह वन जिनालयके समान चंदन (चंदन और पीपल) से सहित था, जिनशासनकी तरह सावय (श्रावक और श्वापद—कुत्ता) से युक्त था। महायुद्धके आँगनकी तरह, वासन (मांस और वृक्षविशेष) से सहित था। सिंहके कंधेकी तरह, केशर (अयाल और एक वृक्ष लता) से युक्त था, राजभवनकी तरह माउय (मंजरी और वृक्ष विशेष) से सहित था, सुनिवद्ध नाटयकी तरह, ताल (ताल और इस नामका

जिणेस - ण्हाणयं जहा महासरं । कु-तावसे तवं जहा मयासवं ॥ ६ ॥
मुणिन्द-जीवियं जहा स-मोक्खयं । महा-णहङ्गणं जहा स-सोमयं ॥ ७ ॥
मियङ्क - बिम्बयं जहा मयालयं । विलासिणी-मुहं जहा महारसं ॥८॥

घत्ता

तं वणु मेल्लेवि ताइँ इन्द-दिसए आसण्णइँ ।
मासेँहिँ चउरद्धेहिँ चित्तकूडु वोलीणइँ ॥ ६ ॥

[१५]

तं चित्तउडु मुएवि तुरन्तइँ । दसउरपुर - सीमन्तरु पत्तइँ ॥ १ ॥
दिट्ठ महासव कमल - करम्बिय । सारस-हंसावलि-बग-चुम्बिय ॥ २ ॥
उज्जाणइँ सोहन्ति सु - पत्तइँ । मुणिवर इव सु-हलाइँ सु-पत्तइँ ॥३॥
सालिवणइँ पणमन्ति सु - भत्तइँ । णं सावयइँ जिणेसर - भत्तइँ ॥ ४ ॥
उच्छुवणइँ दल - दीहर - गत्तइँ । पिय-वइ-लइणइँ व दुकलत्तइँ ॥५॥
पङ्कय - णव - णीलुप्पल - सामेँहिँ । तहिँ पइसन्तेँहिँ लक्खण-रामेँहिँ ॥६॥
सीरकुडुम्बिउ मणुसु पदीसिउ । वुण्णु कुरङ्गु व वाहुत्तासिउ ॥ ७ ॥
हडहड-फुट्ट - सासु चल - णयणउ । पाणकन्तु समुब्भड - वयणउ ॥ ८ ॥

घत्ता

सो णासन्तु कुमारेँ सुरवर-कीर-चण्डेँहिँ ।
आणिउ रामहोँ पासु धरेंवि स इं भु व - दण्डेँहिँ ॥ ६ ॥

पेड़) से युक्त था। जिनेन्द्रके अभिषेककी तरह महासर (स्वर, और सरोवर) से सहित था। कुतापसके तपकी तरह, मदासव (मद्य और मृग) से युक्त था। मुनीन्द्रके वचनकी तरह, मोक्ष (मुक्ति और इस नामके वृक्ष) से सहित था। आकाशके आँगनकी तरह सोम (चंद्र और वृक्षविशेष) से सहित था। चंद्रबिम्बकी तरह मयासय (मद और मृग) से आश्रित था, विलासिनीके मुखकी तरह महारस (लावण्य और जल) से युक्त था। उस वनको इसी तरह छोड़ते हुए वे लोग इन्द्रकी दिशामें अग्रसर हुए और दो माहमें ही चित्रकूटमें पहुँच गये ॥१–६॥

[१५] चित्रकूटको भी तुरत छोड़कर उन लोगोंने दसपुर नगरकी सीमाके भीतर प्रवेश किया। वहाँ उन्हें कमलोंसे भरा सरोवर मिला। वह सरोवर सारस हंसमाला और बगुलोंसे चुम्बित हो रहा था। उद्यान बढ़िया पत्तोंसे शोभित थे, मुनिवरोंकी तरह जो अच्छे फलों और पत्तोंवाले थे, सुविभाजित शालि उपवन सुभक्तकी तरह ऐसे प्रणाम कर रहे थे मानो जिन-भक्तिसे भरे हुए श्रावक हों। लम्बे आकारवाले ईखके वन खोटी स्त्रीकी तरह, णियवइ (पति और वाटिका) का उल्लंघन कर रहे थे। कमल और नव नीलोत्पलके समान राम और लक्ष्मणने उसमें प्रवेश करते हुए एक सीरकुटुम्बिक नामके आदमीको देखा। वह शिकारीसे भयभीत हिरनकी तरह विपन्न था। उसके बाल बिखरे हुए थे और आखें चंचल। उसके प्राण सहमे-से थे और चेहरा विद्रूप था। कुमार लक्ष्मण, सूँडके समान प्रचंड अपने हाथों पर, मरते हुए उसे उठाकर रामके पास ले आये ॥१६॥

२५. पञ्चवीसमो संधि

धणुहर-हत्थेंण दुव्वार-वइरि-आयामें ।
सीरकुडुम्बिउ मम्भीसेंवि पुच्छिउ रामें ॥ १ ॥

[१]

दुद्दम-दाणविन्द-मद्दण-महाहवेणं ।
भो भो किं पिसन्धुलो वुत्तु राहवेणं ॥ १ ॥

तं णिसुणेवि पजम्पिउ गहवइ । वज्जयण्णु णामेण सु-णरवइ ॥ २ ॥
सीहोयरहों भिच्चु हियइच्छिउ । भरहु व रिसहहों आणवडिच्छिउ ॥३॥
दसउर - णाहु जिणेसर - भत्तउ । पियवद्धणह पासेँ उवसन्तउ ॥४॥
जिणवर - पडिमङ्गुट्ठएँ लेप्पिणु । अण्णहों णवइ ण णाहु मुएप्पिणु ॥५॥
ताम कु-मन्तिहिँ कहिउ णरिन्दहों । "पइँ अवगण्णेंवि णवइ जिणिन्दहों" ॥६॥
तं णिसुणेवि वयणु पहु कुद्धउ । णं खय-कालें कियन्तु विरुद्धउ ॥७॥
कोवाणल - पलित्तु सीहोयरु । णं गिरि-सिहरें मइन्द-किसोयरु ॥८॥
'जो महँ मुएँवि अण्णु जयकारइ । सो किं हय गय रज्जु ण हारइ ॥९॥

घत्ता

अह किं वहुएँण कल्लएँ दिणयरें अत्थन्तएँ ।
जइ ण वि मारमि तो पइसमि जलणें जलन्तएँ ॥१०॥

[२]

पइज करेवि जाम पहु आहवे अभङ्गो ।
ताम पइट्ठु चोरु णामेण विज्जुलङ्गो ॥ १ ॥

पइसन्तें रयणिहेँ मज्झयालें । अलिउल-कज्जल-सण्णिह-तमालें ॥२॥
तें दिट्ठु णराहिउ विप्फुरन्तु । पलयाणलो व्व धगधगधगन्तु ॥ ३ ॥

२५. पचीसवीं सन्धि

दुर्वार वैरीके लिए समर्थ, हाथमें धनुष लिये हुए रामने, अभय देकर सीरकुटुम्बिकसे पूछा।

[१] दुर्दम दानवेंद्रका मर्दन करनेवाले महायोधा रामने उससे पूछा, "तुम विपन्न क्यों हो ?" यह सुनकर वह गृहपति बोला—"वज्रकर्ण नामका एक अच्छा राजा है, वह सिंहोदरका उसी तरह अधीन अनुचर है जिस तरह भरत ऋषभ जिनका आज्ञाकारी था। "दशपुरका वह शासक जिनेन्द्र-भक्त है। एक बार उसने प्रियवर्धन मुनिके पास, जिन-प्रतिमाका अंगूठा छूकर यह प्रतिज्ञा की कि मैं जिनवरको छोड़कर किसी दूसरेको प्रणाम नहीं करूँगा। यह बात किसी (चुगलखोर) कुमंत्रीने जाकर राजा सिंहोदरसे जड़ दी कि वज्रकर्ण आपकी अवहेलना करके केवल जिनको ही नमस्कार करता है।" यह सुनकर राजा सिंहोदर क्रोधकी आगसे ऐसे उबल पड़ा मानो किसी पर्वतकी चोटीपर कोई सिंह-शावक ही गरजा हो। उसने कहा, "जो मुझे छोड़कर किसी दूसरेकी जय करता है, उसे अपने हय गय राज्यसे क्यों न वंचित किया जाय। अधिक कहनेसे कोई लाभ नहीं। यदि कल सूर्यास्त होनेके पहले मैं उसे न मार पाया तो (निश्चय) ही आगमें प्रवेश-कर लूँगा।" ॥१–१०॥

[२] युद्धमें अक्षत सिंहोदर जब यह प्रतिज्ञा कर ही रहा था कि विद्युदंग नामका चोर (उसके महलमें) घुस आया। भ्रमर-समूह या काजलकी तरह अत्यंत काली उस मध्य निशामें प्रवेश करते हुए विद्युदंगने राजा सिंहोदरको प्रलयाग्निकी तरह धधकते

रोमञ्च - कञ्चु - कञ्चुइय - देहु । जल-गब्भिणु णं गज्जन्तु मेहु ॥ ४ ॥
सण्णद्ध - वद्ध - परियर - णिवन्धु । रण-भर-धुर-धोरिउ दिण्ण-खन्धु ॥५॥
वलिवण्ड-मण्ड - णिड्डरिय - णयणु । दट्टोट्ठु सुट्ठु-विप्फुरिय - वयणु ॥ ६ ॥
"मारेवउ रिउ" जम्पन्तु एम । खय-कालें सणिच्छरु कुविउ जेम ॥७॥
"तं पेक्खेंवि चिन्तइ भुअ - विसालु । "किं मारमि णं णं सामिसालु ॥८॥
साहम्मिय - वच्छलु किं करेमि । सव्वायरेण गम्पिणु कहेमि" ॥ ९ ॥
गउ एम भणेवि कण्टइय - गत्तु । णिविसद्धें दसउर-णयरु पत्तु ॥ १० ॥

घत्ता

दुट्ठु अरुणुग्गमें सो विज्जुलङ्गु धावन्तउ ।
दिट्ठु णरिन्देण जस-पुञ्जु णाइँ आवन्तउ ॥११॥

[२]

पुच्छिउ वज्जयण्णेण हसेवि विज्जुलङ्गो ।
"भो भो कहिँ पयट्टु वहु-वहल-पुलइयङ्गो" ॥१॥

तं णिसुणेप्पिणु वयण - विसालें । वुच्चइ वज्जयण्णु कुसुमालें ॥ २ ॥
"कामलेह - णामेण विलासिणि । तुङ्ग-पओहर जण-मण-भाविणि ॥३॥
तहेँ आसत्तउ अत्थ - विवज्जउ । कारणें मणि-कुण्डलहँ विसज्जिउ ॥४॥
पुणु विज्जाहर - करणु करेप्पिणु । गउ सत्त वि पायार कमेप्पिणु ॥५॥
किर वर - भवणु पईसमि जावेंहिँ । पइज करन्तु राउ सुउ तावेंहिँ ॥६॥
हउँ वयणेण तेण आदण्णउ । वट्टइ वज्जयण्णु उच्छण्णउ ॥ ७ ॥
साहम्मिउ जिण - सासण - दीवउ । एम भणेप्पिणु वलिउ पडीवउ ॥८॥
पुणु वि वियड - पय-छोहेंहिँ धाइउ । णिविसें तुम्हहुँ पासु पराइउ ॥ ९ ॥

घत्ता

किं ओलग्गएँ जाणन्तु वि राय म मुज्झहि ।
पाण लएप्पिणु जेंम णासहि रणें जुज्झहि ॥ १० ॥

हुए उद्दीप्त देखा। उसका शरीर रोमांचसे कटीला हो रहा था। वह इस प्रकार गरज रहा था मानो सजल मेघ ही गरज रहा हो। अत्यंत समर्थ उसने समूचा परिकर बाँध रखा था। युद्धकी सामग्रीसे सजी हुई सेना तैयार खड़ी थी। उसके नेत्र (सचमुच) बलशाली जबर्दस्त और डरावने थे। वह अपने होंठ चबा रहा था। उसका चेहरा तमतमा रहा था। क्षय कालके शनि देवता की तरह अत्यन्त क्रुद्ध वह कह रहा था कि शत्रु को मारो। तब विद्युदंगने सोचा कि मैं इसे मार दूँ। नहीं नहीं, यह श्रेष्ठ स्वामी है, पर वज्रकर्ण भी मेरा साधर्मी भाई है। तब क्या करना चाहिए। क्या फौरन जाकर उसे बता दूँ। यह विचार कर पुलकित शरीर वह चल पड़ा। आधे ही पलमें दशपुर पहुँच गया। सूर्योदय वेलामें राजा वज्रकर्णने देखा कि विद्युदंग इस तरह दौड़ता हुआ आ रहा है, मानो उसका यशपुंज ही हो ॥१–११॥

[२] वज्रकर्णने हँसकर उससे पूछा "इतने अधिक प्रसन्न और पुलकित कहाँसे आ रहे हो"। यह सुनकर, विशालमुख विद्युदंग चोर ने कहा, "तुंग पयोधरा और जनमनको लुभानेवाली, कामलेखा नाम की एक वेश्या है। मैं उस पर आसक्त हूँ। पर धनके अभाव मे जब मैं उसके लिए मणिकुंडल नहीं बनवा सका तो उसने मुझे ठुकरा दिया। तब मै मन्त्रका प्रयोग कर, सातों ही परकोटोंको लांघता (राजा सिंहोदर) के महलमें घुस गया। घुसते ही राजा सिंहोदरकी प्रतिज्ञा सुनकर मैं विकल हो उठा। (मैं समझ गया) कि अब वज्रकर्णका अन्त होने वाला है। यह सोचकर कि तुम साधर्मी और जिनधर्मके दीपक हो, मैं (यह कहनेके लिए) लौट पड़ा। और परलोभसे दौड़कर पलमात्रमें तुम्हारे पास आया हूँ। उसकी सेवामें क्या रक्खा है। यह समझ लो और उससे ऐसा युद्ध करो कि वह समाप्त ही हो जाय ॥१–१०॥

[४]

अहवइ काइँ बहु जम्पिएण राया ।
पर-वलेँ पेक्खु पेक्खु उट्ठन्ति धूलि-छाया ॥१॥

पेक्खु पेक्खु आवन्तउ साहणु । गलगज्जन्तु महागय - वाहणु ॥ २ ॥
पेक्खु पेक्खु हिसन्ति तुरङ्गम । णहयलेँ विउलेँ भमन्ति विहङ्गम ॥३॥
पेक्खु पेक्खु चिन्धइँ धुव्वन्तइँ । रह-चक्कइँ महियलेँ खुप्पन्तइँ ॥ ४ ॥
पेक्खु पेक्खु वज्जन्तइँ तूरइँ । णाणाविह-णिणाय - गम्भीरइँ ॥ ५ ॥
पेक्खु पेक्खु सय सङ्ख रसन्ता । णाइँ सदुक्खउ सयण रूअन्ता ॥६॥
पेक्खु पेक्खु पचलन्तउ णरवइ । गह-णक्खत्त-मज्झे ससि णावइ" ॥७॥
दसउर - णाहु णिहालइ जावेँहिँ । पर-वलु सयलु विहावइ तावेँहिँ ॥८॥
"साहु साहु" तो एम भणेप्पिणु । विज्जुलङ्गु णिउ आलिङ्गेप्पिणु ॥ ९ ॥
थिउ रण-भूमि पसाहेँवि जावेँहिँ । सयलु वि सेण्णु पराइउ तावेँहिँ ॥१०॥

घत्ता

अमरिस-कुद्धेँहिँ चउपासेँहिँ णरवर-विन्देँहिँ ।
वेढिउ पट्टणु जिम महियलु चउहिँ समुद्देँहिँ ॥ ११ ॥

[५]

किय जय सारि-सज्ज पक्खरिय वर-तुरङ्गा ।
कवय-णिवद्ध जोह अब्भिट्ट पुलइयङ्गा ॥ १ ॥

अब्भिट्टु जुज्झु विण्ह वि वलाहँ । अवरोप्परु वड्ढिय-कलयलाहँ ॥ २ ॥
वज्जन्त - तूर - कोलाहलाहँ । उवसोह-चडाविय-मयगलाहँ ॥ ३ ॥
मुक्केक्कमेक्क - सर - सव्वलाहँ । भुअ-छिण्ण-भिण्ण-वच्छत्थलाहँ ॥४॥
लोट्टाविय - धय - मालाउलाहँ । पडिपहर - विहुर-विहलङ्घलाहँ ॥५॥
णिङ्डुरिय - णयण - डसियाहराहँ । असि-झस-सर-सत्ति-पहरण-धराहँ ॥६॥
सुपमाण - चाव - कड्डिय - कराहँ । गुण-दिट्ठि-मुट्ठि-सन्धिय-सराहँ ॥७॥
दुग्घोट्ट - थट्ट - लोट्टावणाहँ । कायर - णर-मण-संतावणाहँ ॥ ८ ॥

[४] अथवा इस तरह बहुत कहनेसे क्या लाभ ? देखो देखो, राजन्, शत्रु-सेनाकी धूलि-छाया उठ रही है। देखो देखो, सेना आ रही है। महागजोंके वाहन गरज रहे हैं। देखो, देखो, घोड़े हींस रहे हैं और पक्षी आकाशमें उड़ रहे हैं। देखो देखो, पताकाएँ उड़ रही हैं और रथ-चक्र धरतीमें गड़े जा रहे हैं। देखो देखो, नाना स्वरोंसे गंभीर तूर बाजे बज रहे हैं और सैकड़ों शंखोंकी ध्वनि हो रही है मानो दुखी स्वजन ही रो रहे हों। देखो देखो, नरपति ऐसे चला आ रहा है, मानो ग्रह और नक्षत्रोंके बीचमें शनि ही हो।" दशपुर-स्वामी वज्रकर्णने ज्यों ही मुड़ा, तो उसे शत्रु सेना आती हुई दिखाई दी। "साधु-साधु" कहकर उसने विद्युदंग को अपने हृदयसे लगा लिया। सज्जित होकर जैसे ही वह रणक्षेत्रमें पहुँचा वैसे ही समस्त सेना आ पहुँची। अमर्ष और क्रोधसे भर राजाओंने नगरको चारों ओरसे वैसे ही घेर लिया जैसे समुद्र धरती को घेरे हुए हैं॥ १-११॥

[५] अम्बारीसे सजे हाथी और कवच पहने घोड़े तैयार थे। सनद्ध योधा पुलकित होकर भिड़ गये। दोनों दलोंमें लड़ाई ठन गई। बजते हुए नगाड़ोंका कोलाहल होने लगा। हाथी फूलोंसे सजे हुए थे। वे एक दूसरे पर सब्बल और बाण फेंक रहे थे; हाथोंसे वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो रहे थे। पताकाओंकी पंक्तियाँ लोट-पोट हो रही थीं। प्रहार और प्रति प्रहारोंसे सैनिक खिन्न और विकलांग हो रहे थे। दोनोंके नेत्र भयंकर थे। उनके ओंठ काँप रहे थे। तलवार झप सर और शक्ति आदि आयुधोंसे दोनों ही लैस थे। वे डोरी खींचे हुए और तलवार निकाले हुए थे। उनकी दृष्टि डोरी मुट्ठी और तीरोंके संधान पर थी। गजघटाओंको लोट-पोट कर देनेवाले वे कायरोंके मनको अधिक सताने वाले थे।

जयकारहों कारणें दुद्धराहँ । रणु वज्जयण्ण - सीहोयराहँ ॥ ९ ॥

घत्ता

बिहि मि भिडन्तहिँ समरङ्गणेँ दुन्दुहि वज्जइ ।
बिहि मि णरिन्दहँ रणेँ एक्कु वि जिणइ ण जिज्जइ ॥ १० ॥

[६]

"हणु हणु [हणु]" भणन्ति हम्मन्ति आहणन्ति ।
पउ वि ण ओसरन्ति मारन्ति रणेँ मरन्ति ॥ १ ॥

उहय-बलेँहिँ पडियग्गिम - खन्धइँ । उहय-बलेँहिँ णच्चन्ति कबन्धइँ ॥२॥
उहय-बलेँहिँ मुसुमूरिय धयवड । उहय-बलेँहिँ लोट्टाविय भड-थड ॥३॥
उहय-बलेँहिँ हय गय विणिवाइय । उहय-बलेँहिँ रुहिरोह पधाइय ॥४॥
उहय-बलेँहिँ णित्तंसिय खग्गइँ । उहय बलेँहिँ ढेवन्ति विहङ्गइँ ॥ ५ ॥
उहय-बलेँहिँ णीसद्दइँ तूरइँ । उहय-बलइँ पहरण-खर-विहुरइँ ॥६॥
उहय-बलइँ गय-दन्तेँहिँ भिण्णइँ । उहय-बलइँ रण-भूमि-णिसण्णइँ ॥७॥
उहय-बलइँ रुहिरोल्लिय - गत्तइँ । हक्क-ढक्क-रुलक्क मुअन्तइँ ॥ ८ ॥
एम पवत्तु वट्टइ संङ्गामहोँ । अक्खइ सीरकुडुम्बिउ रामहोँ ॥९॥

घत्ता

तं णिसुणेप्पिणु मणि-मरगय-किरण-फुरन्तउ ।
दिण्णु ज-हत्थेंण कण्ठउ कडउ कडिसुत्तउ ॥ १० ॥

[७]

पुणु संचल्ल वे वि बलएव-वासुएवा ।
जाणइ-करिणि-सहिय गय गिल्ल-गण्ड जेवा ॥ १ ॥

चाव-विहत्थ महत्थ महाइय । सहसक्कूडु जिणभवणु पराइय ॥२॥
जं इट्टाल - धवल - छुह - पङ्किउ । सज्जण-हियउ जेम अकलङ्किउ ॥३॥
जं उत्तुङ्ग - सिहरु सुर - किच्चिउ । वण्ण-विचित्त-चित्त-चिर-चित्तिउ॥४॥

वज्रकर्ण और सिंहोदर दोनोंका विजयके लिए अत्यन्त कठोर युद्ध हो रहा था। युद्ध छिड़ने पर दोनोंकी दुंदुभि बज रही थी। उन दोनों राजाओंमें से एक भी न तो जीत रहा था और न जीता जा रहा था ॥ १-१० ॥

[६] योधा 'मारो मारो' कहकर, मरते और मारते, परन्तु वे एक भी कदम पीछे नहीं हटाते थे, भले ही युद्धमें मारते-मारते मरते जा रहे थे। दोनों ही दल आगे बढ़ते हुए धड़ोंको नचा रहे थे। दोनों दलोंने एक दूसरेके ध्वजपटोंको मसल दिया। भट-समूह को गिरा दिया, और अश्व-गजोंको भूमिसात् कर दिया। रक्तकी धारा प्रवाहित हो उठी। दोनों दलोंने अपनी अपनी तीखी तलवारें निकाल लीं, दोनोंने पत्तियोंको कँपा दिया। दोनों दलोंने अपने तीखे प्रहारोंसे दुंदुभियोंको छिन्न-भिन्न कर, निःशब्द कर दिया। हाथियोंके दंतप्रहारसे दोनों छिन्न-भिन्न हो गये। दोनों दल युद्ध-भूमिमें सो-से गये। दोनों दल रक्तरंजित शरीर थे। दोनों दल, एक दूसरे पर हुंकारते ललकारते और चुनौती देते हुए मरने लगे।" सीरकुटुम्बिकने रामसे कहा, "इस प्रकार युद्ध होते-होते एक पखवाड़ा हो गया है।" कि यह सुनकर रामने उसे अपने हाथ से मणि और हीरोंकी किरणोंसे जगमगाता हुआ कंठहार तथा कटक और कटिसूत्र दिया ॥१-१०॥

[७] फिर वे दोनो (वासुदेव और बलभद्र) सीताको साथ लेकर उसी प्रकार चले जिस प्रकार मत्तगज हथिनीको साथ लेकर चलता है। हाथमें धनुष लिये, परम आदरणीय राम सहस्रकूट जिन-भवनमें पहुँचे, वह जिन-भवन ईंटों और सफेद चूनासे निर्मित, सज्जनके हृदयके समान निष्कलंक था। उसकी शिखरें देवोंकी कीर्तिकी तरह ऊँची थीं। विविध और चित्र-विचित्र

तं जिणभवणु णियवि परितुट्ठइँ । पयहिण देवि ति-वार वइट्ठइँ ॥५॥
तहिँ चन्दप्पह-बिम्बु णिहालिउ । जं सुरवरतरु-कुसुमोमालिउ ॥ ६ ॥
जं णागेन्द - सुरेन्द - णरिन्दहिँ । वन्दिउ मुणि-विज्जाहर-विन्दहिँ ॥७॥
दिट्ठु सु-सोहिउ भोम्मु सु-दंसणु । अण्णु मि सेय-चमरु सिंहासणु ॥८॥
छत्त-त्तउ असोउ भा-मण्डलु । लच्छि-विहूसिउ वियड-उरत्थलु ॥९॥

घत्ता

किं वहु (एं)-चविएँण जगेँ को पडिबिम्बु ठविज्जइ ।
पुणु वि पडीवउ जइ णाहेँ णाहुवमिज्जइ ॥ १० ॥

[८]

जं जग-णाहु दिट्ठु वल-सीय-लक्खणेहिं ।
तिहि मि जणेहिँ वन्दिओ विविह-वन्दणेहि ॥ १ ॥

'जय रिसह दुसह - परिसह-सहण । जय अजिय अजिय-वम्मह-महण ॥२॥
जय संभव संभव - णिद्दलण । जय अहिणन्दण णन्दिय - चलण॥३॥
जय सुमइ - भडारा सुमइ - कर । पउमप्पह पउमप्पह - पवर ॥ ४ ॥
जय सामि सुपास सु - पास - हण । चन्दप्पह पुण्ण-चन्द - वयण ॥ ५ ॥
जय जय पुप्फयन्त पुप्फच्चिय । जय सीयल सीयल-सुह-संचिय ॥६॥
जय सेयङ्कर सेयंस - जिण । जय वासुपुज्ज पुज्जिय-चलण ॥ ७ ॥
जय विमल - भडारा विमल - मुह । जय सामि अणन्त अणन्त-सुह ॥८॥
जय धम्म - जिणेसर धम्म - धर । जय सन्ति-भडारा सन्ति-कर ॥ ९ ॥
जय कुन्थु महत्थुइ - थुअ - चलण । जय अर-अरहन्त महन्त-गुण ॥१०॥
जय मल्लि महल्ल - मल्ल - मलण । मुणि सुव्वय सु-व्वय सुद्ध-मण' ॥११॥

रंगोसे चित्रित उस जिन-भवनको देखकर, राम बहुत संतुष्ट हुए। वह तीन प्रदक्षिणा देकर बैठ गये। वहाँ उन्होंने चन्द्रप्रभुकी अत्यंत शोभित दर्शनीय और सौम्य प्रतिमाके दर्शन किये। वह प्रतिमा कल्पवृक्षके फूलोंसे अर्चित और नागेन्द्र सुरेन्द्र नरेन्द्र मुनि तथा विद्याधरों-द्वारा वंदित थी। और भी उन्होंने वहाँ, सफेद चमर, सिंहासन, छत्र, अशोकवृक्ष तथा विस्तीर्ण शोभासे अंकित भामंडल देखा। बहुत कहनेसे क्या, जगमें कैसी भी प्रतिमा स्थापित हो जाय, फिर भी भगवानसे उसकी उपमा नहीं दी जा सकती॥ १–१०॥

[८] राम लक्ष्मण और सीताने जगन्नाथ-जिनके दर्शन कर विविध वंदनाओंसे उनकी भक्ति प्रारम्भ की, "दुःसह परिषहोंको सहन करने वाले ऋषभ, आपकी जय हो। अजेय कामका दलन करने वाले अजितनाथकी जय हो। जन्मनाशक संभवनाथकी जय हो। नंदितचरण अभिनंदनकी जय हो। सुमतिदाता भट्टारक सुमतिकी जय हो। पद्मकी तरह कीर्तिवाले पद्मनाथकी जय हो। बंधन काटने वाले सुपार्श्वनाथकी जय हो। पूर्णचन्द्रकी तरह मुख वाले चंद्रप्रभुकी जय हो। फूलोंसे अर्चित, पुष्पदन्तकी जय हो, शीतलसुखसे अंचित शीतलनाथकी जय हो। कल्याणकर्ता श्रेयांस-नाथकी जय हो। पूज्यचरण वासुपूज्यकी जय हो। पवित्रमुख भट्टारक विमलकी जय हो। अनंतसुखनिकेतन अनंतनाथकी जय हो। धर्मधारी धर्मनाथकी जय हो। शांतिदाता भट्टारक शांतिनाथ की जय हो। महास्तुतियोंसे वंदित-चरण कुंथुनाथकी जय हो। महागुणोंसे संपन्न अरहनाथकी जय हो। बड़े-बड़े योधाओंको पछाड़ने वाले मल्लिनाथकी जय हो। सुव्रती और शुद्धमन मुनि-सुव्रतकी जय हो। इस प्रकार बीस जिनवरोंकी वंदना करके

घत्ता

वीस वि जिणवर वन्देप्पिणु रामु वईसइ ।
जहिँ सीहोयरु तं णिलउ कुमारु पईसइ ॥ १२ ॥

[९]

ताम णरिन्द - वारे थिर थोर - वाहु - जुअलो ।
सो पडिहारु दिट्ठु सहत्थ - देसि - कुसलो ॥ १ ॥

पइसन्तु सुहडु तें धरिउ केम । णिय-समएं लवणसमुद्दु जेम ॥२॥
तं कुविउ वीरु विप्फुरिय - वयणु । विहुणन्तु हत्थ णिट्ठुरिय-णयणु ॥३॥
मणेँ चिन्तइ वइरि - समुद्द - महणु । 'किं मारमि णं णं कवणु गहणु' ॥४॥
गउ एम भणेँवि सुहृ - दण्ड-चण्डु । णं मत्त-महागउ गिल्ल-गण्डु ॥ ५ ॥
तं दसउर - णयरु पइट्ठु केम । जण-मण-मोहन्तु अणङ्गु जेम ॥ ६ ॥
दुव्वार - वइरि - सय - पाण-चोरु । णीसरिउ णाइँ केसरि-किसोरु ॥७॥
जं लक्खणु लक्खिउ राय - वारेँ । पडिहारु वुत्तु 'मं मं णिवारेँ' ॥८॥
तं वयणु सुणेवि पइट्ठु वीरु । चक्कवइ-लच्छि-लञ्छिय - सरीरु ॥९॥

घत्ता

दसउर - णाहेण लक्खिज्जइ एन्तउ लक्खणु ।
रिसह - जिणिन्देँण णं धम्मु अहिंसा - लक्खणु ॥१०॥

[१०]

हरिसिउ वज्जयण्णु दिट्ठेँण लक्खणेणं ।
पुणु पुणु णेह - णिब्भरो चविउ तक्खणेणं ॥ १ ॥

'किं देमि हत्थि रह तुरय - थट्ट । विच्छुरिय-फुरिय-मणि-मउड-पट्ट ॥२॥
किं वत्थेँहिँ किं रयणेँहिँ कज्जु । किं णरवर-परिमिउ देमि रज्जु ॥३॥
किं देमि स - विब्भमु पिण्डवासु । कि स-सुउ स-कन्तउ होमि दासु' ॥४॥
तं वयणु सुणेँवि हरिसिय - मणेण । पडिवुत्तु णराहिउ लक्खणेण ॥ ५ ॥

राम वहीं बैठ गये। परन्तु लक्ष्मण उस भवनमें घुसे जहाँ सिंहोदर था॥ १–१२॥

[६] इतनेमें राजाके द्वारपर एक प्रतिहार दिखाई दिया। स्थिर और स्थूल बाहुओं वाला वह शब्द अर्थ और देशी बोलीमें बड़ा कुशल था। आते हुए इस सुभटको उसने उसी तरह पकड़ लिया जिस तरह लवण-समुद्रको उसकी वेला ग्रहण करती है। इससे वह कुपित होकर तमतमा उठा। वह हाथ हिलाने लगा। उसके नेत्र भयानक हो उठे। शत्रु-समुद्रका मथन करनेवाला वह (लक्ष्मण) मनमें सोचने लगा, "क्या मार दूँ, नहीं, नहीं इससे क्या मिलेगा ?" यही विचारकर बाहुओंसे प्रचंड, वह भीतर ऐसे चला गया मानो झरते गंडस्थल वाला मत्त महागज हो।" इसके बाद लक्ष्मणने दशपुर-नगरमें वैसे ही प्रवेश किया जैसे, कामदेव आते ही जन-मन मुग्ध कर देते हैं। दुर्वार सैकड़ों शत्रुओं के प्राणोंको चुराने वाला वह सिंहके बच्चेकी तरह निकल पड़ा। जैसे ही लक्ष्मणको राजद्वारपर देखा, प्रतिहारने कहा, "मत रोको, आने दो।" यह वचन सुनकर, चक्रवर्तीकी लक्ष्मीसे लांछित शरीर लक्ष्मण प्रविष्ट हुआ। दशपुर-नरेश वज्रकर्णने लक्ष्मणको आते हुए उसी तरह देखा जैसे ऋषभ जिनने अहिंसा धर्म-को देखा था॥ १–१०॥

[१०] लक्ष्मणको देखकर वज्रकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ। बार-बार स्नेहसे वह उसी क्षण बोला—"क्या दूँ, हाथी, रथ और घोड़ोंका समूह या चमकते हुए मणियोंका मुकुटपट्ट ? क्या आपको वस्त्रों और रत्नोंसे काम है ? क्या आपको श्रेष्ठ मनुष्योंसे युक्त राज्य दूँ ? क्या सम्भ्रात सेवक दूँ ? या पुत्र तथा पत्नी सहित मैं ही तुम्हारा सेवक बन जाऊँ।" ये

'कहिँ मुणिवरु कहिँ संसार-मोक्खु । कहिँ पाव-पिण्डु कहिँ परम-मोक्खु ॥६॥
कहिँ पायउ केत्थु कुडुक - वयणु । कहिँ कमल-सण्डु कहिँ विउलु गयणु॥७॥
कहिँ मयगलेँ हलु कहिँ उट्टेँ घण्ट । कहिँ पन्थिउ कहिँ रह-तुरय-थट्ट ॥८॥
तं वोल्लहि जं ण घडइ कलाएँ । अम्हइँ वाहिय भुक्खएँ खलाएँ ॥९॥

घत्ता

तुहुँ साहम्मिउ दय - धम्मु करन्तु ण थक्कहि ।
भोयणु मग्गिउ तिहुँ जणहुँ देहि जइ सक्कहि' ॥ ११ ॥

[११]

वुच्चइ वज्जयण्णेणं सजल - लोयणेणं ।
'मग्गिउ देमि रज्जु किं गहणु भोयणेणं' ॥१॥

एम भणेप्पिणु अण्णुच्चाइउ । णिविसें रामहों पासु पराइउ ॥ २ ॥
खणेँ कच्चोल थाल ओयारिय । परियल-सिप्पि-सङ्ख वित्थारिय ॥३॥
वहुविह - खण्ड - पयारेँहिँ वड्डिउ । उच्छु-वणं पिव मुह-रसियड्डिउ ॥४॥
उज्जाणं पिव सुट्ठु सुअन्धउ । सिद्धहों सिद्धि-सुहं पिव सिद्धउ ॥५॥
रेहइ असण-वेल वलहद्दहोँ । णाइँ विणिग्गय अमय-समुद्दहोँ ॥६॥
धवल - प्पउर-कूर - फेणुज्जल । पेज्जावत्त दिन्ति चल चञ्चल ॥७॥
घिय-कल्लोल-वोल पवहन्ती । तिम्मण - तोय - तुसार मुअन्ती ॥८॥
सालण-सय-सेवाल-करम्बिय । हरि-हलहर - जलयर-परिचुम्बिय ॥९॥

घत्ता

किं वहु-चविएँण सच्छाउ सलोणु स-विञ्जणु ।
इट्ठ-कलत्तु व तं भुत्तु जाहिच्छएँ भोयणु ॥१०॥

वचन सुनकर प्रसन्नचित लक्ष्मणने राजासे कहा, "कहाँ मुनिवर कहाँ संसारसुख, कहाँ पापपिंड और कहाँ परम मोक्षसुख ! कहाँ प्राकृत और कहाँ कुडुक-कौतुक वचन ! कहाँ कमलोंका समूह और कहाँ व्यापक आकाश ! कहाँ मदमाते हाथीकी घंटी और कहाँ ऊँटका घंटा ! कहाँ पथिक और कहाँ रथ-घोड़ोंका समूह ! वह बात कहिए जो एक भी कलासे कम न हो, हमलोग दुष्ट क्षुधासे बाधित हो रहे हैं। तुम-सा धर्मीजन ही दयाधर्म करने से नहीं चूकते। भोजन माँगता हूँ यदि हो सके तो तीन आदमियों-का भोजन दो ॥१–१० ॥

[११] तब वज्रकर्णने सजल नेत्रोंसे कहा, "भोजन ग्रहण करनेकी क्या बात ? माँगो तो राज्य भी दे सकता हूँ।" यह कह कर अन्न (भोजन) लेकर वह पल भर में रामके निकट जा पहुँचा। एक क्षणमें उसने कटोरे और थाल रख दिये। अन्न-भांड और तृणके बने आसन बिछा दिये। सब प्रकारके व्यंजनों से वह भोजन उत्तम था। वह ईख वनकी तरह मधुर रससे भरा था, उद्यानकी तरह अत्यन्त सुगन्धित था, और सिद्धोंके सिद्धिसुख की तरह सिद्ध था। बलभद्र रामकी भोजन-वेला ऐसी सोह रही थी मानो वह अमृतसमुद्रसे ही निकली हो। वह, धवलपूर और कूरके फेनसे उज्ज्वल थी। उसमें पेयोंके चंचल आवर्त उठ रहे थे। घीकी लहरोंका समूह वह रहा था। कढ़ीका जल और तुपार प्रकट हो रहा था। सालनरूपी सैकड़ों शैवालोंसे वह अंचित थी। और वह हरि तथा हलधर (राम और लक्ष्मण) रूपी जलचरोंसे चुम्बित हो रही थी। अधिक कहनेसे क्या, उन्होंने, इष्टकलत्रके समान, सच्छाय (सुन्दर कान्तिवाला), सलोण (सुन्दरता और नमक) सव्यंजन (पकवान और अलंकार) सुन्दर भोजन यथेच्छ-खाया ॥१–१०॥

[११]

भुञ्जेँवि रामचन्देण पभणिओ कुमारो ।
'भोयणु ण होइ एँउ उवयार-गरुअ-भारो ॥१॥

पढिउवयारु किं पि विण्णासहि । उभय-चलेँहि अप्पाणु पगासहि ॥२॥
तं सीहोयरु गम्पि णिवारहि । अद्धेँ रज्जहोँ सन्धि समारहि ॥३॥
वुच्चइ भरहेँ दूउ विसज्जिउ । दुज्जउ वज्जयण्णु अपरज्जिउ ॥४॥
तेण समाणु कवणु किर विग्गहु । जेँ आयामिउ समरेँ परिग्गहु' ॥५॥
तं णिसुणेवि वयणु रिउ-मद्दणु । रामहोँ चलणेँहिं पडिउ जणद्दणु ॥६॥
'अज्जु कियत्थु अज्जु हउँ धण्णउ । जं आएसु देव पइँ दिण्णउ' ॥७॥
एम भणेवि पयट्टु महाइउ । गउ सीहोयर-भवणु पराइउ ॥८॥
मत्त-गइन्दु जेम गलगज्जेँवि । तं पडिहारु करग्गेँ तज्जेँवि ॥९॥

घत्ता

तिण-समु मण्णेवि अत्थाणु सयलु अवगण्णेँवि ।
पइट्टु भयाणणु गय-जूहेँ जेम पञ्चाणणु ॥१०॥

[१२]

अमरिस-कुद्धएण वहु-मरिय-मच्छरेणं ।
सीहोयरु पलोइओ जिह सणिच्छरेणं ॥१॥

कोवाणल - सय - जाल - जलन्तें । पुणु पुणु जोइउ णाइँ कयन्तें ॥२॥
जउ जउ लक्खणु लक्खइ संमुहु । तउ तउ सिमिरु थाइ हेट्ठा-मुहु ॥३॥
चिन्तिउ 'को वि महा-वलु दीसइ । णउ पणिवाउ करइ णउ वइसइ' ॥४॥
तं जि णिमित्तु लएवि कुमारें । वुत्तु राउ 'किं वहु-वित्थारें ॥५॥
एम विसज्जिउ भरह-णरिन्दें । करइ केलि को समउ मइन्दें ॥६॥
को सुर-करि-विसाण उप्पाडइ । मन्दरसेल-सिङ्ग को पाडइ ॥७॥
कोऽभयवाहु करग्गेँ ढक्कइ । वज्जयण्णु को मारेँवि सक्कइ ॥८॥
सन्धि करहोँ परिभुञ्जहोँ मेइणि । हियय-सुहङ्करि जिह वर-कामिणि ॥९॥

[१२] भोजन करनेके उपरान्त रामने लक्ष्मणसे कहा—"यह भोजन नहीं किन्तु तुम्हारे ऊपर उपकारका बहुत भारी भार है, इनका कोई प्रत्युपकार करो। (न हो तो) दोनों सेनाओं-में अपने आपको प्रकट करो। जाकर सिंहोदरको रोको और आधे राज्यकी शर्तपर उससे संधि कर लो, फौरन दूत भेजकर उससे कहो कि वज्रकर्ण दुर्जेय और अपराजित है। उसके साथ युद्ध कैसा? जो तुमने युद्धके इतने साधन जुटाये हैं।" यह सुनकर शत्रुका दमन करनेवाला जनार्दन लक्ष्मण रामके पैरोंपर गिरकर बोला—"आपका आदेश पाकर आज मैं धन्य और कृतार्थ हूं।" यह कहकर आदरणीय वह सीधा सिंहोदरके भवनमें गया। हाथीकी तरह गरजकर तथा प्रतिहारको तर्जनीसे डॉटकर भयंकर मुख वह समूचे दरबारको तिनकेके समान समझता हुआ उसी तरह भीतर प्रविष्ट हुआ जैसे गजघटाके बीचमें सिंह प्रवेश करता है ॥ १–१० ॥

[१३] तब अमर्षसे भरे और क्रुद्ध लक्ष्मणने सिंहोदरको ऐसे देखा—जैसे शनिने ही देखा हो। वह जिस ओर देखता वहीं सैनिक नीचा मुख करके रह जाता। सिंहोदर मन ही मन सोच रहा था कि यह कोई महाबली होना चाहिए। न तो यह प्रणाम करता है और न बैठता ही है, इतनेमें मौका पाकर कुमार लक्ष्मणने सिंहोदरसे कहा—"बहुत विस्तारकर कहनेसे क्या, मुझे राजा भरतने यह कहनेके लिए भेजा है कि सिंहके साथ क्रीड़ा कौन करता है, कौन ऐरावतका दांत उखाड़ सकता है, कौन मंदराचलकी शिखर गिरा सकता है, और कौन चन्द्रको हाथसे रोक सकता है। कौन वज्रकर्णको मार सकता है? अतः उसके साथ संधि कर, सुन्दर स्त्रीकी तरह हृदयसे तुम इस धरतीको

घत्ता

अहवइ णरवइ जइ रज्जहों अद्धु ण इच्छहि ।
तो समरङ्गणें सर-धोरणि एन्ति पडिच्छहि ॥१०॥

[१४]

लक्खण-वयण-दूसिओ अहर-विप्फुरन्तो ।
'मरु मरु मारि मारि हणु हणु' भणन्तो ॥१॥

उट्ठिउ पहु करवाल-विहत्थउ । 'अच्छउ ताम भरहु वीसत्थउ ॥२॥
दूवहों दूवत्तणु दरिसावहों । छिन्दहों णासु सीसु मुण्डावहों ॥३॥
लुणहों हत्थ विन्धारेंवि धाडहों । गद्दहें चडियउ णयरें भमाडहों' ॥४॥
तं णिसुणेवि समुट्ठिय णरवर । गलगज्जन्त णाइँ णव जलहर ॥५॥
'हणु हणु हणु' भणन्त बहु-मच्छर । णं कलि-काल-कियन्त-सणिच्छर ॥६॥
णं णिय-समय-चुक्क रयणायर । णं उम्मेट्ठ पधाइय कुञ्जर ॥७॥
करें करवालु को वि उग्गामइ । भीसण को वि गयासणि भामइ ॥८॥
को वि भयङ्करु चाउ चडावइ । सामिहें भिच्चत्तणु दरिसावइ ॥९॥

एव णरिन्देंहिं फुरियाहर-भिउडि-करालेंहिं ।
वेढिउ लक्खणु पञ्चाणणु जेम सियालेंहिं ॥१०॥

[१५]

सूरु व जलहरेहिं जं वेढिओ कुमारो ।
उट्ठिउ घर दलन्तु दुव्वार-वइरि-वारो ॥ १ ॥

रोक्कइ वलइ धाइ रिउ रुम्भइ । णं केसरि-किसोरु पवियम्भइ ॥ २ ॥
णं सुरवर-गइन्दु मय-विम्भलु । सिर-कमलइँ तोडन्तु महा-वलु ॥३॥
दरमलन्तु मणि-मउड णरिन्दहुँ । सीहु पडुक्किउ जेम गइन्दहुँ ॥४॥
को वि मुसुमूरिउ चूरिउ पाएँहिं । को वि णिसुम्भिउ टक्कर-घाएँहिं ॥५॥

भोगो। और यदि राजन्, आधे राज्यको नहीं चाहते तो कल समरांगणमें आती हुई बाणोंकी बौछारको झेलनेके लिए तैयार रहो।" ॥ १–१० ॥

[१४] लक्ष्मणके इन शब्दोंसे सिंहोदर कुपित हो उठा, उसके अधर फरकने लगे, वह बोला, "मरो मरो, मारो मारो हनो हनो।" तलवार हाथमें लेकर उठते हुए वह बोला, "अच्छा जरा ठहरो, भरतने भेजा है न।" उसने फिर आदेश दिया, "इस दूतको दूतपन दिखला दो, नाक काट लो, सिर मूँड़ लो। हाथ काट लो और फिर गधेपर चढ़ाकर खूब चिल्लाकर नगर में घुमाओ। यह सुनते ही नरवर उठे, मानो नये जलधर गरज उठे हों, वे मत्सरसे भरकर, 'मारो मारो' कहने लगे, मानो वे कलिकाल यम और शनि हों या फिर समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी हो, या उन्मत्त कुंजर ही दौड़ पड़े हों। कोई हाथमें तलवार उठा रहा था, तो कोई भीषण चक्र और गदा घुमा रहा था। कोई भयंकर धनुष चढ़ा रहा था। इस प्रकार वे स्वामीके प्रति अपनी वफादारी (दासता) दिखा रहे थे। कंपित-अधर और विकराल भौंहों वाले उन्होंने लक्ष्मणको वैसे ही घेर लिया जैसे गीदड़ सिंहको घेर लेते हैं॥ १–१० ॥

[१५] कुमार लक्ष्मणको वैसे ही घेर लिया जैसे मेघ सूर्यको घेर लेता है, तब वह वीर शत्रुओंका दलन करता हुआ उठा। कभी वह रुकता, कभी मुड़ता, कभी दौड़ता और शत्रुपर धौंस जमाता। वह ऐसा जान पड़ता मानो सिंहशावक ही उछल रहा हो। महाबली वह, मदविह्वल ऐरावत हाथीकी तरह, (शत्रुओं) के सिर-कमलोंको तोड़ने लगा। और मणिमुकुटोंको चूर-चूर करता हुआ वह राजाओंके निकट जा पहुँचा। वैसे ही जैसे सिंह हाथीके

को वि करग्गेंहिँ गयणें भमाडिउ । को वि रसन्तु महीयलें पाडिउ ॥६॥
को वि जुज्झाविउ मेस-भडक्कएँ । को वि कडुवाविउ इक्क-दडक्कएँ ॥७॥
गयवर - लग्गण - खम्भुप्पाडेंवि । गयण-मग्गॆं पुणु भुअहिँ भमाडेंवि ॥८॥
णाइँ जमेण दण्डु पम्मुक्कउ । वइरिहिँ णं खय-कालु पढुक्कउ ॥९॥

घत्ता

आलण-खम्भेंण भामन्तें पुहइ भमाडिय ।
तेण पडन्तेण दस सहस णरिन्दहुँ पाडिय ॥ १० ॥

[१६]

जं पडिवक्खु सयलु णिद्दलिउ लक्खणेणं ।
गयवरें पट्टवन्धणे चडिउ तक्खणेणं ॥ १ ॥

अहिमुहु सीहोयरु संचल्लिउ । पलय-समुद्दु णाइँ उत्थल्लिउ ॥२॥
सेण्णावत्त निन्तु गज्जन्तउ । पहरण - तोय - तुसार-मुअन्तउ ॥३॥
तुङ्ग - तुरङ्ग - तरङ्ग - समाउलु । मत्त - महागय - घड-वेलाउलु ॥४॥
उब्भिय - धवल - छत्त - फेणुज्जलु । धय - कल्लोल - चलन्त-महाबलु ॥५॥
रिउ-समुद्दु जं दिट्ठु भयङ्करु । लक्खणु ढुक्कु णाइँ गिरि मन्दरु ॥६॥
चलइ वलइ परिभमइ सु-पच्चलु । णाइँ विलासिणि-गणु चलु चञ्चलु ॥७॥
गेण्हेंवि पहउ णरिन्दु णरिन्दें । तुरएं तुरउ गइन्दु गइन्दें ॥८॥
रहिएं रहिउ रहङ्गु रहङ्गें । छत्तें छत्तु धयग्गु धयग्गें ॥९॥

घत्ता

चउ जउ लक्खणु परिसक्कइ भिडडि-भयङ्करु ।
तउ तउ दीसइ महि-मण्डलु रुण्ड-णिरन्तरु ॥ १० ॥

[१७]

जं रिउ-उअहि महिउ सोमित्ति-मन्दरेणं ।
सीहोयरु पधाइओ समउ कुञ्जरेणं ॥ १ ॥

निकट पहुँच जाता है। उसने किसीको मसलकर पैरसे कुचल दिया, किसीको टक्करकी मारसे ध्वस्त कर दिया, किसीको अंगुली से आकाशमें नचा दिया। कोई चिल्लाता हुआ आकाशसे धरती पर गिर पड़ा। कोई मेप की तरह झडक्कसे जूझ गया। कोई हुंकारकी चपेटमें ही कराह उठा। हाथी बाँधनेके—आलान स्तंभों को उखाड़, और आकाशमें घुमाकर वह ऐसे छोड़ देता था, मानो यमने ही अपना दंड फेंका हो, या वैरियोंका क्षयकाल ही आ गया हो। आलान-स्तंभके घुमानेसे धरती ही हिल उठी, और उसके गिरते ही दस हज़ार राजा धराशायी हो गये ॥ १–१० ॥

[१६] जब लक्ष्मणने समस्त शत्रुपक्षका दलन कर दिया तो वह पट्टवंधन नामके उत्तम गजपर चढ़ गया। तब सिंहोदर भी सम्मुख युद्धके लिए चला। लक्ष्मणने सामने शत्रुसेना रूपी भयंकर समुद्रको उछलते हुए देखा। सेनाका आवर्त ही उसका गरजना था, हथियाररूपी जल और तुषार-कण छोड़ता हुआ, ऊँचे ऊँचे अश्वोंकी लहरोंसे आकुल, मदमाते हाथियोंके झुंडरूपी तटोंसे व्याप्त, ऊपर उठे हुए सफेद छत्रोंके फेनसे उज्ज्वल और ध्वजारूपी तरंगोंसे चंचल और जलचरोंसे सहित था। उसे देखते ही लक्ष्मण सुमेरु पर्वतकी तरह उसके पास जा पहुँचा। कभी वह चलता मुड़ता, और सहसा ऐसा घूम जाता, मानो वेश्यागण—ही चंचल हो उठा हो, द्वंद्व युद्ध शुरू हो गया। राजासे राजा, घोड़ेसे घोड़ा, हाथीसे हाथी, रथसे रथ, चक्रसे चक्र, छत्रसे छत्र, और ध्वजाग्रसे ध्वजाग्र पराजित हो गये। लक्ष्मण जिस ओर अपनी भयंकर भौंहोंको फैलाता उसी ओर उसे धरती-मंडल रुंडों से पटा हुआ दिखाई देता ॥ १–१० ॥

[१७] मंदराचलकी भाँति लक्ष्मणने नष्ट शत्रुसेनारूपी समुद्र को मथ डाला। तब महागजकी भाँति सिंहोदर उसपर दौड़ा।

अब्भिट्टु जुज्झु विण्णि वि जणाहँ । उज्जेणि - णराहिव - लक्खणाहँ ॥२॥
दुव्वार - वइरि - गेण्हण - मणाहँ । उग्गामिय - भामिय - पहरणाहँ ॥३॥
मयमत्त - गइन्दु द्दारणाहँ । पडिवक्ख - पक्ख - संघारणाहँ ॥४॥
सुरवहुअ - सत्थ - तोसावणाहँ । सीहोयर - लक्खण - णरवराहँ ॥५॥
। भुअ-दण्ड-चण्ड-हरिसिय- मणाहँ ॥६॥
एत्थन्तरेँ सीहोयर - धरेण । उरेँ पेल्लिउ लक्खणु गयवरेण ॥७॥
रहसुब्भडु पुलय - विसट्ट - देहु । णं सुक्कें खीलिउ स-जलु मेहु ॥८॥
तें लेवि भुअग्गें थरहरन्त । उप्पाडिय दन्तिहेँ वे वि दन्त ॥९॥
कड्ढाविउ मयगलु मणेँण तट्टु । विवरम्मुहु पाण लएवि णट्ठु ॥१०॥

घत्ता

ताम कुमारेँण विज्जाहर-करणु करेप्पिणु ।
धरिउ णराहिउ गय-मत्थएँ पाउ थवेप्पिणु ॥ ११ ॥

[१८]

णरवइ जीव-गाहि जं धरिउ लक्खणेणं ।
केण वि वज्जयण्णहो कहिउ तक्खणेणं ॥ १ ॥

हे णरणाह - णाह अच्छरियउ । पर-बलु पेक्खु केम जज्जरियउ ॥२॥
रुण्ड णिरन्तरु सोणिय-चच्चिउ । णाणाविह - विहङ्ग - परियञ्चिउ ॥३॥
को वि पयण्ड-वीरु वलवन्तउ । भमइ कियन्तु व रिउ-जगडन्तउ ॥४॥
गय-घड भड-थड सुहड वहन्तउ । करि-सिर-कमल-सण्ड तोडन्तउ ॥५॥
रोक्कइ कोक्कइ ढुक्कइ थक्कइ । णं खय-कालु समरेँ परिसक्कइ ॥६॥
भिउडि-भयङ्करु कुरुडु समच्छरु । थिउ अवलोयणेँ णाइँ सणिच्छरु ॥७॥
णउ जाणहुँ किं गणु किं गन्धवु । कि पच्छण्णु को वि तउ वन्धवु ॥८॥
किण्णरु किं मारुवु विज्जाहरु । किं दम्भाणु भाणु हरि हलहरु ॥९॥
तेण महाहवेँ माण-मइन्दहँ । विणिवाइय दस सहस णरिन्दहँ ॥१०॥
अण्णु वि दुज्जउ मच्छर-भरियउ । जीव-गाहि सीहोयरु धरियउ ॥११॥

उज्जैननरेश सिंहोदर और कुमार लक्ष्मणमें द्वंद्व शुरू हुआ। दोनों दुर्वार वैरीको पकड़ना चाह रहे थे, दोनों हथियार उठाकर घुमा रहे थे। दोनों मत्तगजकी तरह दारुण और प्रतिपक्षका संहार करने वाले और देवबालाओंको सुख देनेवाले थे। दोनोंकी भुजाएँ प्रचंड और मन प्रसन्न था। इतनेमें सिंहोदरने लक्ष्मणकी छाती पर हाथी दौड़ाया, वह ऐसा लगता था मानो हर्षसे उद्भिन्न रोमांचित शरीर सजल मेघ शुक्र तारासे क्रीड़ा कर रहे हों॥ १–८॥

तब लक्ष्मणने अपने हाथसे थर्राते हुए उस हाथीके दोनों दाँत उखाड़ लिये। पीड़ित होकर, रुष्टानन खोखले मुखका वह हाथी जब तक अपने प्राण छोड़, इसके पहले ही, लक्ष्मणने उसके मस्तक पर पैर रख, और हाथ खींचकर सिंहोदरको पकड़ लिया॥१–११॥

[१८] जब लक्ष्मणने उसे जीवित ही पकड़ लिया तो किसीने तत्काल वज्रकर्णसे जाकर कहा, "हे राजराज, देखिए शत्रुपक्ष किस तरह जर्जर हो गया है। धड़ निरंतर खूनसे लथपथ हो रहे हैं। तरह-तरहके पक्षी उनपर बैठे हुए हैं। कोई प्रचंड वीर कृतान्तकी तरह झगड़ता हुआ घूम रहा है। गजघटा, भटोंके समूह और सुभटोंको खदेड़ता, हाथियोंके सिरकमलोंके समूहको तोड़ता, रोकता बोलता, पहुँचता और ठहरता हुआ वह ऐसा लगता है मानो युद्ध-भूमिमें क्षयकाल ही घूम रहा हो। भयंकर भौंहोंवाला मत्सरभरा कठोर वह, देखनेमें ऐसा लगता है मानो शनि हो, मैं नहीं जानता, वह कौन है? कोई गंधर्व या प्रच्छन्न कोई आपका भाई। किन्नर है मारुत, विद्याधर है! ब्रह्मा है या भानु? हरि है या हलधर। दस हजार राजाओंको युद्धमें मार गिराया है। और भी मत्सरसे भरे दुर्जेय उससे सिंहोदरको जीवित ही पकड़ लिया है।

घत्ता

एक्कें होन्तेंण वलु सयलु वि आहिन्दोलिउ ।
मन्दर-वीढेंण णं सायर-सलिलु विरोलिउ ॥ १२ ॥

[१९]

तं णिसुणेवि को वि परितोसिओ मणेणं ।
को वि णिएहुँ लग्गु उद्देण जम्पणेणं ॥ १ ॥

को वि पजम्पिउ मच्छर-भरियउ । 'चङ्गउ जं सीहोयरु धरियउ ॥२॥
जो मारेवउ वइरि स-हत्थें । सो परिवड्ढु पाउ पर-हत्थें ॥३॥
वन्धव-सयणहिँ परिमिउ अज्जु । वज्जयण्णु भुञ्जेसउ रज्जु' ॥४॥
को वि विरुद्धु पुणु पुणु णिन्दइ । 'धम्मु मुएवि पाउ किं णन्दइ' ॥५॥
को वि भणइ 'जें मग्गिउ भोयणु । दीसइ सो उज्जेणाहिउ एहु वम्मणु' ॥६॥
ताम कुमारें रिउ उक्खन्धेंवि । चोरु व राउलेण णिउ वन्धेंवि ॥७॥
सालङ्कारु स-दोरु स - णेउरु । दुम्मणु दीण-वयणु अन्तेउरु ॥८॥
धाइउ अंसु-जलोल्लिय - णयणउ । हिम-हय-कमलवणु व कोमाणउ ॥९॥

घत्ता

केस-विसन्थुलु मुह-कायरु करुणु रुअन्तउ ।
थिउ चउपासेंहिँ भत्तार-भिक्ख मग्गन्तउ ॥ १० ॥

[२०]

ताम मणेण सङ्किया राहवस्स घरिणी ।
णं भय-भीय काणणे वुण्णुयण्ण हरिणी ॥ १ ॥

'पेक्खु पेक्खु वलु वलु आवन्तउ । सायर-सलिलु जेम गज्जन्तउ ॥२॥
लइ धणुहरु म अच्छि णिच्चिन्तउ । मच्छुडु लक्खणु रणें अत्थन्तउ' ॥३॥
तं णिसुणेंवि णिव्वूढ - महाहवु । जाम चाउ किर गिण्हइ राहवु ॥४॥
ताम कुमारु दिट्ठु सहुँ णारिहिँ । परिमिउ हत्थि जेम गणियारिहिँ ॥५॥

अकेले होते हुए भी उसने सेनामें हलचल मचा दी है। ठीक वैसे ही जैसे मंदराचलकी पीठ समुद्रके जलको मथ देती है ॥१–१२॥

[१९] यह सुनकर किसीका मन सन्तुष्ट हो उठा तो कोई ऊपर मुख उठाकर कहने वालेका मुख देखने लगा। कोई ईर्ष्यासे भर-कर कह उठा, "अच्छा हुआ कि सिंहोदर पकड़ा गया, जैसे वह अपने हाथसे शत्रुको मारता था, वैसे ही वह भी दूसरेके हाथसे पकड़ा गया, अतः वज्रकर्ण तुम सैकड़ों परिजनोंके साथ अपने राज्यका भोग करो। तब कोई विरुद्ध होकर, बार-बार ऐसा कहने वालेकी निन्दा करते हुए बोला, "अरे धर्म छोड़कर पापसे आनं-दित क्यों हो रहे हो।" तब किसी एकने कहा, "अरे भोजन माँगने वाले ये ब्राह्मण नहीं हैं।" इतनेमें कुमार लक्ष्मण शत्रुको अपने कंधेपर टाँगकर ले आया वैसे ही जैसे राजकुल चोरको बाँधकर ले आता है। सिंहोदरका अन्तःपुर,अलंकार डोर और नूपुरों सहित भी दीन मुख और अनमना हो उठा। हिमसे आहत, और मुरझाये हुए कमलवनकी तरह डबडबाये नेत्रोंसे यह उसके पीछे दौड़ा। उस (अन्तःपुर) के बाल बिखरे हुए थे और मुँह कातर था। चारों ओरसे घेरकर उसने लक्ष्मणसे अपने पतिकी भीख माँगी ॥१–१०॥

[२०] परन्तु इधर सहसा, रामकी पत्नी सीता आशंकित हो उठीं, मानो वनकी भोली हिरनी ही भयभीत हो उठी हो, वह बोलीं,—"देखिए देखिए, समुद्रजलकी तरह गरजती हुई सेना आ रही है, निश्चल मत बैठे रहो, धनुष हाथमें ले लो, शायद युद्धमें लक्ष्मणका अंत हो गया है।" यह सुनकर, महायुद्धमें समर्थ राम जबतक हाथमें धनुष लेनेको हुए कि तबतक स्त्रियोंके साथ लक्ष्मण, आता हुआ ऐसा दिखाई दिया मानो हथिनियोंसे घिरा

तं पेक्खेप्पिणु सुहड-णिसामें । भीय सीय सम्भीसिय रामें ॥६॥
'पेक्खु केम सीहोयरु वद्धउ । सीहेण व सियालु उद्धुद्धउ' ॥७॥
एव वोल्ल किर वट्टइ जावेंहिं । लक्खणु पासु पराइउ तावेंहिं ॥८॥
चलणेंहिं पडिउ दियावउ-मत्थउ । भविउ व जिणहों कियञ्जलि-हत्थउ ॥९॥

घत्ता

'साहु' भणन्तेंण सुरभवण-विणिग्गय-णामें ।
सइँ भु अ-फलिहेंहिँ अवरुण्डिउ लक्खणु रामें ॥ १० ॥

२६. छव्वीसमो संधि

लक्खण-रामहुँ धवलुज्जल-कसण-सरीरइँ ।
एक्कहिँ मिलियइँ णं गङ्गा-जउणहेँ णीरइँ ॥

[१]

अवरोप्परु गाञोल्लिय - गत्तेंहिँ । सरहसु साइउ देवि तुरन्तेंहिँ ॥१॥
सीहोयरु णमन्तु वइसारिउ । तक्खणें वज्जयण्णु हक्कारिउ ॥२॥
सहुँ णरवर-जणेण णीसरियउ । णाइँ पुरन्दरु सुर-परियरियउ ॥३॥
रेहइ विज्जुलङ्गु अणुपच्छऍ । पडिवा-इन्दु व सूरहों पच्छऍ ॥४॥
तं इट्टाल - धूलि - धुअ-धवलउ । सहसकूडु गय पत्त जिणालउ ॥५॥
चउदिसु पयहिण देवि तिवारऍ । पुणु अहिवन्दण करइ भडारऍ ॥६॥
तं पियवद्धण-मुणि पणवेप्पिणु । वलहों पासें थिउ कुसलु भणेप्पिणु ॥७॥
दसउर - पुर - परमेसरु रामें । साहुक्कारिउ सुहड-णिसामें ॥८॥

हाथी ही आ रहा हो। उसे देखकर, सुभटश्रेष्ठ रामने डरी हुई सीताको अभय वचन देते हुए कहा, "देखो सिंहोदर कैसा बँधा हुआ है, सिंहने शृगालको मानो ऊपर उठा लिया है।" वह ऐसा कह ही रहे थे कि कुमार लक्ष्मण एकदम निकट आ पहुँचा, उन्होंने अपना विकट माथा रामके चरणोंमें ऐसे ही रख दिया मानो जिनके सम्मुख हाथ जोड़कर भव्य हीं खड़ा हो ॥१-९॥

तब देवभवनोंमें विख्यात नाम रामने 'साधु' कहकर अपनी विशाल भुजाओंमें लक्ष्मणको भर लिया ॥१०॥

●

छब्वीसवाँ सन्धि

लक्ष्मण और रामके गोरे काले शरीर एकत्र मिले हुए ऐसे मालूम होते थे मानो गंगा और यमुनाके जलका संगम हो।

[१] पुलकितशरीर उन दोनोंने तुरत एक दूसरेका आलिंगन किया। तदनन्तर, रामने, प्रणाम करते हुए सिंहोदरको बैठाया। और तत्काल उन्होंने वज्रकर्णको भी बुलवा लिया। वह अपने उत्तम मनुष्योंके साथ इस प्रकार निकला मानो देवताओंको लेकर इन्द्र ही निकला हो। प्रतिपदाके चन्द्रके पीछे जैसे सूरज रहता है वैसे ही विद्युदंग चोर भी उस (वज्रकर्ण) के पीछे-पीछे आ रहा था। तब वे लोग चूना और ईंटसे निर्मित सहस्रकूट जिनालयमें पहुँचे। उन्होंने उसकी तीन बार प्रदक्षिणा की। भट्टारक रामने उनका अभिवादन किया। वज्रकर्ण भी प्रियवर्धन मुनिको नमस्कार कर रामको कुशल पूछ उनके पास बैठ गया ॥१-७॥

तब सुभट श्रेष्ठ रामने दशपुर-नरेश वज्रकर्णको साधुवाद

घत्ता

'सच्चउ णरवइ मिच्छत्त–सरेंहिँ णउ भिज्जहि ।
दिढ-सम्मत्तेंण पर तुज्झु जेँ तुहुँ उवमिज्जहि ॥ १ ॥

[२]

तं णिसुणेवि पयम्पिउ राएं । 'एउ सव्वु मड्डु तुम्ह पसाएं' ॥१॥
पुणु वि तिलोय-विणिग्गय-णामें । विज्जुलङ्गु पोमाइउ रामें ॥२॥
'भो दिढ-कढिण-वियड- वच्छत्थल । साहु साहु साहम्मिय-वच्छल ॥३॥
सुन्दरु किउ जं णरवइ रक्खिउ । रणेँ अच्छन्तु ण पइँ उव्वेक्खिउ' ॥४॥
तो एत्थन्तरेँ वुत्तु कुमारें । 'जम्पिएण किं वहु - वित्थारें ॥५॥
हे दसउर-णरिन्द विसगइ-सुअ । जिणवर-चलण - कमल-फुल्लन्धुअ ॥६॥
जो खलु खुद्दु पिसुणु मच्छरियउ । अच्छइ एँहु सीहोयरु धरियउ ॥७॥
किं मारमि किं अप्पुणु मारहि । णं तो दय करि सन्धि समारहि ॥८॥

घत्ता

आण-वडिच्छउ एँहु एवहिँ भिच्चु तुहारउ ।
रिसह-जिणिन्दहों सेयंसु व पेसणयारउ' ॥ १ ॥

[३]

पभणइ वज्जयण्णु वहु-जाणउ । 'हउँ पाइक्कु पुणु वि एँहु राणउ ॥१॥
णवर एक्कु वउ मइँ पालेवउ । जिणु मेल्लेवि अण्णु ण णमेवउ' ॥२॥
तं णिसुणेविणु लक्खण-रामेंहिँ । सुरवर-भवण - विणिग्गय-णामेहिँ ॥३॥
दसउरपुर - उज्जेणि - पहाणा । वज्जयण्ण - सीहोयर - राणा ॥४॥
वेण्णि वि हत्थें हत्थु धराविय । सरहसु कण्ठग्गहणु कराविय ॥५॥
अद्धोअद्धिएँ महि भुञ्जाविय । अण्णु वि जिणवर-धम्मु सुणाविय ॥६॥
कामिणि कामलेह कोक्काविय । विज्जुलङ्गहों करयलेँ लाविय ॥७॥
दिण्णइँ मणि-कुण्डलइँ फुरन्तइँ । चन्दाइच्चहुँ तेउ हरन्तइँ ॥८॥
ताम कुमारु वुत्तु विक्खाएँहिँ । वज्जयण्ण- सीहोयर - राएँहिँ ॥९॥

दिया और कहा—"जैसे मिथ्यात्वके बाणोंसे सत्यका भेदन नहीं किया जा सकता, वैसे ही दृढ़ सम्यक्त्वमें तुम्हारी उपमा केवल तुम्हींसे दी जा सकती है।" ॥८-९॥

[२] यह सुनकर वज्रकर्णने निवेदन किया,—"यह सब आपके प्रसादका फल है।" तदनन्तर रामने त्रिलोक विख्यात, विद्युदंग चोरकी प्रशंसा की—"तुम्हारा वक्षस्थल कठोर विशाल और विकट है। तुम्हारा साधर्मी-प्रेम स्तुत्य है, तुमने राजाकी रक्षा कर बहुत बढ़िया काम किया। युद्धमें होते हुए भी तुमने इसकी उपेक्षा नहीं की"। तब इसी बीचमें कुमार लक्ष्मण बोल उठे, "बहुत कहना व्यर्थ है, हे विश्वमति-नृपसुत जिनवर-चरण-कमल-भ्रमर! यह क्षुद्र ईर्ष्यालु राजा पकड़ लिया गया है, क्या इसे मार डालूँ? या चाहे आप ही मारें अथवा दयाकर इससे संधि कर लें।" इस पर रामने कहा,—"आजसे यह तुम्हारा आज्ञापालक अनुचर होगा, ठीक उसी तरह जिस तरह राजा श्रेयांस; ऋषभ जिनका अनुचर था ॥१-९॥

[३] तब बहुविज्ञ वज्रकर्णने कहा, "यह राजा है और मैं साधारण आदमी। मैं तो केवल इसी व्रतका पालन करना चाहता हूँ कि जिनको छोड़कर मैं किसी औरको नमन नहीं करूँगा" यह सुनकर देवलोकमें प्रसिद्ध नाम राम और लक्ष्मणने उन दोनोंका (सिंहोदर और वज्रकर्ण) का हाथ पर हाथ रखवा कर एक दूसरेका हर्षपूर्वक मिलाप करवा दिया। धरती आधी-आधी बाँट दी। तथा उन दोनोंको जिनधर्मका भी उपदेश दिया। कामिनी कामलेखाको बुलाकर, रामने उसे विद्युदंगके लिए सौंप दिया। और उसे, सूर्य तथा चन्द्रमाका भी तेज हरण करनेवाले, मणिकुंडल दे दिये। तब प्रसिद्ध राजा वज्रकर्ण और सिंहोदरने कुमार लक्ष्मणसे

'णव-कुवलय-दल - दीहर-णयणहुँ । मयगल-गइ-गमणहुँ ससि-वयणहुँ ।१०।
उच्च - णिलाडालङ्किय - तिलयहुँ । बहु-सोहग्ग-भोग्ग-गुण-णिलयहुँ ॥११॥
विब्भम - भाउब्भिण्ण - सरीरहुँ । तणु-मज्झहुँ थण-हर-गम्भीरहुँ ॥१२॥

घत्ता

अहिणव-रूवहुं लायण्ण-वण्ण-संपुण्णहुं ।
लइ भो लक्खण वर तिण्णि सयइँ तुहुं कण्णहुं' ॥ १३ ॥

[४]

तं णिसुणेप्पिणु दसरह - णन्दणु । एम पजम्पिउ हसेंवि जणद्दणु ॥१॥
'अच्छउ ति-यणु ताम विलवन्तउ । मिसिणि-णिहाउ व रवियर-छित्तउ ॥२॥
मइँ जाएवउ दाहिण - देसहों । कोङ्कण - मलय - पण्डि- उद्देसहों ॥३॥
तहिँ बलहद्दहों णिलउ गवेसमि । पच्छऍ पाणिग्गहण करेसमि' ॥४॥
एम कुमारु पजम्पिउ जं जे । मणें विसण्णु कण्णायणु तं जे ॥५॥
दड्ढु हिमेण वणलिणि-समुच्चउ । मुहें-मुहें णाइँ दिण्णुमसि-कुच्चउ ॥६॥
जाम ताम तूरेंहिँ वज्जन्तेंहिँ । विविहेंहिँ मङ्गलेंहिँ गिज्जन्तेंहिँ ॥७॥
वन्दिणेहिँ 'जय जय' पभणन्तेंहिँ । खुज्जय - वामणेहिँ णच्चन्तेंहिँ ॥८॥
सीय स-लक्खणु बलु पइसारिउ । धीया - इन्दु व जयजयकारिउ ॥९॥
तहिँ णिवसेप्पिणु णयरें रवण्णऍ । अद्धरत्ति-अवसरें पडिवण्णऍ ॥१०॥

घत्ता

बल-णारायण गय दसउरु मुऍवि महाइय ।
चेत्तहों मासहों तं कुब्बर-णयरु पराइय ॥ ११ ॥

[५]

कुब्बर-णयरु पराइय जावेंहिँ । फग्गुण-मासु पवोलिउ तावेंहिँ ॥१॥
पइठु वसन्तु - राउ आणन्दें । कोइल - कलयल - मङ्गल-सद्दें ॥२॥
अलि-मिहुणेंहिँ वन्दिणेंहिँ पढन्तेंहिँ । वरहिण - वावणेहिँ णच्चन्तेंहिँ ॥३॥

विनय करते हुए कहा,—"रंग और सुंदरतामें पूर्ण, अभिनव रूपवती इन तीन सौ कन्याओंको ग्रहण करें। इनके नेत्र नवकमल दलकी तरह विशाल हैं। मुख चन्द्रमाके समान है, चाल मत्त गजकी भाँति है और इनके ऊँचे ऊँचे भाल पर तिलककी शोभा है। ये प्रचुर भाग्य और भोगके गुणोंकी निकेतन हैं, विलास और भावोंसे पूर्ण शरीर उनका मध्यभाग क्षीण और स्तन गंभीर हैं।" ॥१-१३॥

[४] यह सुनकर लक्ष्मणने हँसते हुए कहा "अच्छा. ये तब तक उसी प्रकार विलाप करें जिस प्रकार कमलिनियाँ रविके किरणजालके लिए विलाप करती हैं। अभी मुझे दक्षिण देश जाना है, जहाँ कोंकणमलय और पुंड्र आदि देश हैं वहाँ बलभद्र रामके लिए आवासकी व्यवस्था करनी है। बादमें मैं इनका पाणिग्रहण कर सकता हूँ। कुमारके इस कथनसे उन कुमारियोंका मन खिन्न हो उठा। मानो कमलिनी-समूहको पाला मार गया हो, या मानो किसीने सबके मुँहपर स्याहीकी कूँची फेर दी हो। इसके अनंतर लक्ष्मण और सीताके साथ, रामने विविध मंगलगीतोंके बीच, नगरमें प्रवेश किया। बंदीजन जय-जयकार कर रहे थे। कुब्ज वामन नाच रहे थे। दूसरे इन्द्रकी तरह उनका सबने जय जयकार किया। उस सुन्दर नगरमें निवास कर, आधी रात होनेपर आदरणीय वे तीनों (बलभद्र राम, नारायण लक्ष्मण और सीतादेवी) दशपुर नगर छोड़कर चले गये। चलकर वे चैतके माहमें नलकूबर नगरमें पहुँचे ॥ १-११ ॥

[५] उस नगरमें उनके पहुँचते-पहुँचते फाल्गुनका महीना बीत चुका था और वसंत राजा कोयलके कलकल मंगलके साथ आनन्दपूर्वक प्रवेश कर रहे थे। भ्रमररूपी बंदीजन मंगलपाठ पढ़ रहे थे, और मोर रूपी कुब्जवामन नाच रहे थे। इस तरह अनेक

अन्दोला - सय - तोरण - वारेंहिँ । ढुक्कु वसन्तु अणेय-पयारेंहिँ ॥ ४ ॥
कत्थइ चूअ - वणइँ पल्लवियइँ । णव-किसलय-फल-फुल्लब्भहियइँ ॥५॥
कत्थइ गिरि - सिरहइँ विच्छायइँ । खल-मुहइँ व मसि-वण्णइँ णायइँ ॥६॥
कत्थइ माहव - मासहों मेइणि । पिय-विरहेण व सूसइ कामिणि ॥७॥
कत्थइ गिज्जइ वज्जइ मन्दलु । णर-मिहुणेहि पणच्चिउ गोन्दलु ॥८॥
तं तहों णयरहों उत्तर - पासेंहिँ । जण-मणहरु जोयण-उद्देसेंहिँ ॥ ९ ॥
दिट्ठु वसन्ततिलउ उज्जाणउ । सज्जण-हियउ जेम अ-पमाणउ ॥१०॥

घत्ता

सुहलु सुयन्धउ डोल्लन्तु वियावड - मत्थउ ।
अग्गएँ रामहों णं थिउ कुसुमञ्जलि - हत्थउ ॥११॥

[६]

तहिँ उववणेँ पइसेंवि विणु खेवें । पभणिउ वासुएउ वलएवें ॥ १ ॥
'भो असुरारि - वइरि - मुसुमूरण । दसरह-वंस - मणोरह - पूरण ॥ २ ॥
लक्खण कहि मि गवेसहि तं जलु । सज्जण-हियउ जेम जं णिम्मलु ॥३॥
दूरागमणें सीय तिसाइय । हिम-हय-णव-णलिणि व विच्छाइय ॥४॥
तं णिसुणेंवि वड-दुम - सोवाणेंहिँ । चडिउ महारिसि व्व गुणथाणेंहिँ ॥५॥
ताव महासरु दिट्ठु रवण्णउ । णाणाविह-तरुवर - संछण्णउ ॥ ६ ॥
सारस - हंस-कुञ्च - वग - चुम्बिउ । णव-कुवलय-दल-कमल-करम्बिउ ॥७॥
तं पेक्खेवि कुमारु पधाइउ । णिविसें तं सर-तीर पराइउ ॥ ८ ॥

घत्ता

पइठु महावलु जलें कमल - सण्डु तोडन्तउ ।
माणस - सरवरें णं - गइन्दु कीलन्तउ ॥ ९ ॥

[७]

लक्खणु जलु आडोहइ जावेंहिँ । कुव्वर-णयर-णराहिउ तावेंहिँ ॥ १ ॥

प्रकारके हिलते-डुलते तोरण-द्वारोंके साथ वसंत राजा आ पहुँचा। कहीं आमके पेड़ोंमें नये किसलय फल-फूलोंसे लद रहे थे। कहीं कांतिरहित पहाड़ोंके शिखर काले रंगवाले दुष्ट मुखोंकी तरह दिखाई दे रहे थे। कहीं-कहीं वैशाख माहकी गर्मीसे सूखी हुई धरती ऐसी जान पड़ती थी मानो प्रिय-वियोगसे पीड़ित कामिनी हो। कहीं गीत हो रहा था, और कहीं मृदंग वज रहा था। कहीं मनुष्योंके जोड़े रति कर रहे थे। उन लोगोंने नगरके उत्तरकी ओर, वसंततिलक नामका, जन मन-हर, एक योजन विस्तृत उद्यान देखा। वह उद्यान सज्जनके हृदयकी तरह अप्रमेय था। सुफल सुगंधित और नतमस्तक वह मानो हाथमें कुसुमांजलि लेकर रामके आगे स्वागतके लिए स्थित हो गया था॥ १–११॥

[६] विना किसी देरीके उस वनमें प्रवेश करके रामने लक्ष्मणसे कहा, "अरे असुर और शत्रुओंको मसलनेवाले और दशरथकुलके इच्छापूरक लक्ष्मण, कहीं पानी खोजो, जो सज्जनके हृदयकी तरह निर्मल हो। वहुत दूरसे चलकर आनेके कारण सीताको प्यास लग आई है। वह हिमाहत कमलिनीकी तरह कांतिहीन हो रही है।" यह सुनते ही लक्ष्मण वटवृक्ष रूपी सोपान पर चढ़ गये, उसी तरह जैसे महामुनि गुणस्थानों पर चढ़ते हैं। वहाँसे उसे सुंदर और तरह तरहके पेड़ोंसे आछन्न एक सरोवर दीख पड़ा। सारस हंस क्रौञ्च और वगुला पक्षियोंसे चुम्बित, उसे देखकर, कुमार (उतरकर) दौड़ा और पलभरमें उसके किनारे पहुँच गया। कमल-समूहको तोड़ते हुए, महावली कुमार उसके जलमें ऐसे ही घुसा मानो ऐरावत हाथी क्रीड़ा करता हुआ मानसरोवरमें घुसा हो॥ १–६॥

[७] जिस समय लक्ष्मण सरोवरके पानीको विलोडित कर

छुड्डु छुड्डु वण - कीलए णीसरियउ । मयण-दिवसें णरवर-परियरियउ ॥२॥
तरुवरें तरुवरें मञ्चु णिवद्धउ । मञ्चें मञ्चें थिउ जणु समलद्धउ ॥३॥
मञ्चें मञ्चें आरूढ णरेसर । मेरु-णियम्बें णाइँ विज्जाहर ॥ ४ ॥
मञ्चें मञ्चें आलावणि वज्जइ । महु पिज्जइ हिन्दोलउ गिज्जइ ॥५॥
मञ्चें मञ्चें जणु रसय - विहत्थउ । घुम्मइ घुलइ वियावड-मत्थउ ॥६॥
मञ्चें मञ्चें कीलन्ति सु - मिहुणइँ । णव-मिहुणइँ कहिँ णेह-विहूणइँ ॥७॥
मञ्चें मञ्चें अन्दोलइ जणवउ । कोइल वासइ भञ्जइ दमणउ ॥ ८ ॥

घत्ता

कुव्वर - णाहेंण किउ मञ्चारोहणु जावेंहिँ ।
सूरु व चन्देंण लक्खिज्जइ लक्खणु तावेंहिँ ॥ ९ ॥

[८]

लक्खिउ लक्खणु लक्खण - भरियउ । णं पच्चक्खु मयणु अवयरियउ ॥ १ ॥
रूउ णिएँवि सुर - भवणाणन्दहों । मणु उल्लोलेंहिँ जाइ णरिन्दहों ॥२॥
मयण - सरासणि धरेंवि ण सक्किउ । वम्महु दस-थाणेंहिँ पढुक्किउ ॥ ३ ॥
पहिलएँ कहों वि समाणु ण वोल्लइ । वीयएँ गुरु णीसासु पमेल्लइ ॥ ४ ॥
तइयएँ सयलु अङ्गु परितप्पइ । चउथएँ णं करवत्तेंहिँ कप्पइ ॥ ५ ॥
पञ्चमेँ पुणु पुणु पासेइज्जइ । छट्ठएँ वारवार मुच्छिज्जइ ॥ ६ ॥
सत्तमेँ जलु वि जलद् ण भावइ । अट्ठमें मरण-लील दरिसावइ ॥ ७ ॥
णवमएँ पाण पडन्त ण वेयइ । दसमएँ सिरु छिज्जन्तु ण चेयइ ॥८॥

रहे थे उसी समय, अनेक श्रेष्ठ मनुष्योंसे घिरा हुआ, नलकूबर नगरका राजा कामदेवके दिन (वसंतपंचमीको) वनक्रीड़ाके लिए वहाँ आया। प्रत्येक पेड़पर ऊँचे ऊँचे मच (मचान) बनवा दिये गये। और प्रत्येक मंचपर एक-एक आदमी नियुक्त कर दिया गया। एक एक मंच पर एक एक राजा ऐसे बैठ गया, मानो मेरुपर्वतके शिखर पर विद्याधर बैठे हों। मंच-मंचपर आलापिनी (वीणा) बज रही थी, लोग मधु पी रहे थे। और हिन्ताल गीत गा रहे थे। मंच-मंचपर लोगोंके हाथमें मधु-प्याला था, मस्तक हिलाकर, वे उसे हिला-डुला रहे थे, मंच-मंचपर मिथुन क्रीड़ा कर रहे थे। नये जोड़े (दम्पति) स्नेह हीन भला कहाँ होते हैं ? मंच-मंचपर लोग झूम रहे थे, और कोयल शीघ्र अपने आवासको भागा जा रहा था ॥ १–८ ॥

नलकूबर नरेशने मंच पर चढ़ते ही लक्ष्मणको ऐसे देखा मानो चंद्रने सूरको देखा हो ॥ ६ ॥

[८] अनेक लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको देखकर उसे लगा मानो कामदेव ही अवतरित हुआ हो। स्वर्गलोकके लिए भी आनंद-दायक लक्ष्मणके रूपको देखकर, राजाके मनमें हलचल होने लगी। कामके बाणोंसे वह अपनेको बचा नहीं सका, शीघ्र ही वह कामकी दस अवस्थाओं (वेगों) में पहुँच गया। पहले वेगमें वह किसीसे बात नहीं करता था, दूसरेमें लम्बे-लम्बे निश्वास छोड़ने लगा, तीसरेमें उसके शरीरमें तपन होने लगी। चौथेमें करपत्रसे मानो काटा जाने लगा। पाचवेंमें, बारबार पसीना आता, छठेमें रह-रहकर मूर्छा आने लगी। सातवेंमें जल और गीली वस्तुसे अरुचि होने लगी। आठवेंमें मौनकी चेष्टाएँ दिखने लगीं। नवेंमें जाते हुए प्राणोंका ज्ञान नहीं हो रहा था। दसवेंमें सिर फटने लगा और

घत्ता

एम वियम्भिउ कुसुमाउहु दसहि मि थाणेंहिँ ।
तं अच्छरियउ जं मुक्कु कुमारु ण पाणेंहिँ ॥ ८ ॥

[९]

जं कण्ठ-ट्ठिउ जीउ कुमारहों । सुणएँ वुत्तु 'पहिउ हक्कारहों' ॥१॥
पहु आणएँ पाइक्क पधाइय । णिविसद्धें तहों पासु पराइय ॥२॥
पणवेंवि वुत्तु ति-खण्ड-पहाणउ । 'तुम्हहँ काइँ मि कोक्कइ राणउ' ॥३॥
तं णिसुणेंवि उच्चलिउ जणद्दणु । तिहुअण-जण-मण-णयणाणन्दणु ॥४॥
वियण पओहर देन्तु णं केसरि । कन्दइ भारक्कन्त वसुन्धरि ॥५॥
दिट्ठु कुमारु कुमारें एन्तउ । मयणु जेम जण-मण-मोहन्तउ ॥६॥
खणें कल्लाणमालु रोमञ्चिउ । णहु जिह हरिस-विसाएँहिँ णच्चिउ ॥७॥
पुणु वइसारिउ हरि अद्धासणें । भविउ जेम थिउ दिढु जिण-सासणें ॥८॥

घत्ता

वइट्ठु जणद्दणु आलीढएँ मच्चें रवण्णएँ ।
णव-वरइत्तु व पच्छण्णु मिलिउ सहुँ कण्णाएँ ॥९॥

[१०]

वे वि वइट्ठ वीर एक्कासणें । चन्दाइच्च जेम गयणङ्गणें ॥१॥
एक्कु पचण्डु तिखण्ड-पहाणउ । अण्णेक्कु वि कुब्बर-पुर-राणउ ॥२॥
एक्कहों चलण-जुअलु कुम्मुण्णउ । अण्णेक्कहों रत्तुप्पल-वण्णउ ॥३॥
एक्कहों ऊरू (?)-जुअलु सु-वित्थरु । अण्णेक्कहों सुकुमारु सु-मच्छरु ॥४॥
पञ्चाणण-कडि-मण्डलु एक्कहों । णारि-णियम्ब-बिम्बु अण्णेक्कहों ॥५॥
एक्कहों सुललिउ सुन्दरु अङ्गउ । अण्णेक्कहों तणु-तिवलि-तरङ्गउ ॥६॥

चेतना गायब हो चली। इसी तरह दसों दौरमें कामदेव अत्यधिक फैल गया। केवल अचरज इस बातका हो रहा था कि किसी तरह कुमारके प्राण नहीं निकले॥ १–६॥

[६] कुमारका जीव कंठमें अटका था, होश आनेपर उसने इतना ही कहा, "पथिकको बुलाओ"। प्रभुकी आज्ञासे अनुचर दौड़े गये, और पलभरमें लक्ष्मणके पास जा पहुँचे। उन्होंने प्रणाम करके तीनों खंडके प्रधानसे कहा,—"किसी कामसे राजाने आपको बुलाया है" यह सुनकर त्रिभुवन जनके मन और नेत्रोंको आनंद देनेवाले जनार्दन लक्ष्मण चल पड़े, मानो सिंह ही अपने विकट पैर रखता हुआ जा रहा हो, धरती उसके भारसे काँप-सी उठी। 'कामदेवकी तरह जन-मनको मोहते हुए कुमारको आते देखकर कल्याणमाला (राजा) वैसे ही पुलकित हो गई, जैसे हर्ष और विषादमें मग्न नाचता हुआ नट मग्न हो जाता है। फिर उसने लक्ष्मणको अपने आधे आसनपर बैठाया। वह भी जिन-शासनमें दृढ़ भव्यकी तरह स्थित हो गया। सटे हुए सुन्दर मंच-पर कुमार लक्ष्मण ऐसे बैठ गये मानो कन्याके साथ मिलकर प्रच्छन्न नया वर ही बैठा हो॥ १–६॥

[१०] आकाशके आँगनमें सूर्य और चन्द्रकी तरह वे दोनों वीर एक ही आसनपर बैठ गये। उनमें एक अत्यन्त प्रचण्ड और तीनों लोकोंका प्रधान था। जब कि दूसरा केवल नलकूबर नगरका राजा था। एकके चरण-कमल कूर्मकी तरह उन्नत थे जब कि दूसरेके पैर रक्तकमलके रंगके थे। एकका वक्षःस्थल विस्तृत था जब कि दूसरेका सुकुमार और नवनीतकी तरह था। एकका मध्य-भाग सिंहकी तरह कृश था। जबकि दूसरेका नारी-नितम्बोंकी तरह था। एकके अंग सुललित और सुन्दर थे जब कि दूसरेका

एक्कहोँ सोहइ वियडु उरत्थलु । अण्णेक्कहोँ जोव्वणु थण-चक्कलु ॥७॥
एक्कहोँ वाहउ दीह-विसालउ । अण्णेक्कहोँ णं मालइ-मालउ ॥८॥
वयण-कमलु पप्फुल्लिउ एक्कहोँ । पुण्णिम-चन्द-रुन्दु अण्णेक्कहोँ ॥९॥
एक्कहोँ गो-कमलइँ वित्थरियइँ । अण्णेक्कहोँ वहु-विब्भम-भरियइँ ॥१०॥
एक्कहोँ सिरु वर-कुसुमेँहिँ वासिउ । अण्णेक्कहोँ वर-मउड-विहूसिउ ॥११॥

घत्ता

एक्कु स-लक्खणु लक्खिज्जइ जणेँण असेसेँ ।
अण्णेक्कु वि पुणु पच्छण्ण णारि णर-वेसेँ ॥१२॥

[११]

दणु – दुग्गाह – गाह – अवगाहेँ । पुणु पुणरुत्तेँहिँ कुव्वर-णाहेँ ॥१॥
णयण-कडक्खिउ लक्खण-सरवरु । जो सुर-सुन्दरि-णलिणि-सुहङ्करु ॥२॥
जो कत्थूरिय - पङ्कुप्पङ्किउ । जो अरि-करिहिँ ण डोहँवि सक्किउ ॥३॥
जो सुर-सउण-सहासेँहिँ मण्डिउ । जो कामिणि-थण-चक्केँहिँ चड्डिउ ॥४॥
तहिँ तेहएँ सरेँ सेय-जलोल्लिउ । लक्खण-वयण-कमलु पप्फुल्लिउ ॥५॥
कण्ठ - मणोहर – दीहर – णालउ । वर - रोमञ्च-कन्चु - कण्टालउ ॥६॥
दसण-सकेसरु अहर-महादलु । वय - मयरन्दउ कण्णावत्तलु ॥७॥
लोयण – फुल्लन्धुय – परिचुम्बिउ । कुडिल-वाल-सेवाल - करम्बिउ ॥८॥

घत्ता

लक्खण-सरवरु हउ भुक्ख-महाहिम-वाएं ।
तं मुह-पङ्कउ लक्खिज्जइ कुव्वर-राएं ॥९॥

[१२]

जं मुह-कमलु दिट्ठु ओहुल्लिउ । वालिखिल्ल - तणएण पवोल्लिउ ॥१॥
'हे णरणाह - णाह भुवणाहिव । भोयणु भुञ्जहु सु-कलत्तं पिव ॥२॥

शरीर त्रिवलिसे तरंगित था। एकका वक्षःस्थल विकट था और दूसरेका यौवन और स्तनचक्रसे सहित था। एककी भुजाएँ विशाल थीं तो दूसरेकी मालतीमालाकी तरह सुकोमल। एकका मुखकमल खिला हुआ था जबकि दूसरेका पूर्ण चंद्रके समान सुन्दर था। एकके नेत्रकमल बिखरे हुए थे जबकि दूसरेके नेत्र विभ्रम और विलाससे भरे हुए थे। एकका सिर उत्तम फूलोंसे सुवासित था तो दूसरेका सिर सुन्दर मुकुटसे अलंकृत। सभी लोगोंने समझ लिया कि एक लक्षणयुक्त लक्ष्मण हैं और दूसरी नरवेशमें छिपी हुई नारी॥ १–६॥

[११] दानवरूपी दुष्ट ग्रहोंके भी ग्रह लक्ष्मणको पानेकी आशासे नलकूवर नरेश कल्याणमालाने देवबाला रूपी नलिनियों के लिए शुभंकर लक्ष्मणरूपी सरोवरको बार-बार तीखे कटाक्षोंसे देखा। वह लक्ष्मणरूपी सरोवर कस्तूरीके पंकसे भरा था, शत्रु-रूपी हाथी उसे विलोडित करनेमें असमर्थ थे। हजारों देवतुल्य स्वगुणरूपी पक्षियोंसे मंडित और जो स्त्रियोंके स्तनरूपी चक्रपर चढ़ चुका था उस वैसे लक्ष्मणरूपी सरोवरमें प्रस्वेदरूपी जलसे उल्लसित लक्ष्मणका मुख-कमल खिला हुआ था। सुन्दर कंठ ही उसकी लम्बी मृणाल थी। सुन्दर रोमांच-समूह, काँटे, दांत, पराग। अधर पंखुड़ियाँ, और कान पत्ते थे। वह नेत्ररूपी भ्रमरोंसे चुंबित टेढ़े-मेढ़े बालोंके शैवालसे चिह्नित हो रहा था। नलकूबर नरेशने लक्ष्मणरूपी सरोवरके उस मुखकमलको देखकर समझ लिया कि वह भूखकी महाहिम वातसे आहत है॥ १–६॥

[१२] उसका मुखकमल नीचा देखकर, वालिखिल्यकी लड़की कल्याणमालाने कहा—"हे भुवनाधिप नरनाथ! भोजन कर लीजिए। यह भोजन सुस्त्रीकी तरह, सगुल (मधुर ?) और

स-गुलु स-लोणउ सरसु स-इच्छउ । महुरु सुअन्धु स-णेहु सु-पच्छउ ॥३॥
तं भुञ्जेप्पिणु पउम-पियासणु । पच्छलें किं पि करहु संभासणु' ॥४॥
तं णिसुणेवि पजम्पिउ लक्खणु । अमर - वरङ्गण-णयण-कडक्खणु ॥५॥
'उहु जो दीसइ रुक्खु रवण्णउ । पत्तल - वहल-डाल - संछण्णउ ॥६॥
आयहों विउलें मूलें दणु-दारउ । अच्छइ सामिसालु अम्हारउ' ॥७॥

घत्ता

लक्खण-वयणेंहिं वलु कोक्किउ चलिउ स-कन्तउ ।
करिणि-विहूसिउ णं वण-गइन्दु मल्हन्तउ ॥८॥

[१३]

गुलुगुलन्तु हलहेइ महग्गउ । तरुवर-गिरि-कन्दरहों विणिग्गउ ॥१॥
सेय - पवाह - गलिय - गण्डत्थलु । तोणा-जुयल-विउल- कुम्भत्थलु ॥२॥
पिच्छावलि-अलिउल - परिमालिउ । किङ्किणि - गेज्जा - मालोमालिउ ॥३॥
विरिथय - वाण - विसाण - भयङ्करु । थोर-पलम्ब-बाहु-लम्बिय - करु ॥४॥
धणुवर - लग्गणखम्भुम्मूलणु । दुट्ठारुट्ठ - मेट्ठ - पडिकूलणु ॥५॥
सर-सिक्कार करन्तु महावलु । तिस-भुक्खएँ खलन्तु विहलङ्घलु ॥६॥
छाहिहें वेज्झइँ देन्तु विरुद्धउ । जिणवर-वयणङ्कुसेंण णिरुद्धउ ॥७॥
जाणइ - वर - गणियारि-विहूसिउ । तं पेक्खेवि जणवउ उद्धूसिउ ॥८॥

घत्ता

मच्चारुहणहों उत्तिण्णु असेसु वि राय-गणु (?) ।
मेरु-णियम्बहों णं णिवडिउ गह-तारायणु ॥९॥

[१४]

हरि - कल्लाणमाल दणु-दलणेंहिं । पडिय वे वि वलएवहों चलणेंहिं ॥१॥
'अच्छहुँ ताव देव जल-कीलएँ । पच्छएँ भोयणु भुञ्जहुँ लीलएँ' ॥२॥

गुड़), सलवण (सुन्दरता और नमक) सरस (रस, जल), सइच्छ (ईच्छा और ईख) से सहित है तथा मधुर, सुगंधित, घृतमय और सुपथ्य है। पहले आप यह प्रिय भोजन ग्रहण कर लें, फिर बादमें संभापण करना।" यह सुनकर, देवबालाओंके कटाक्षोंसे देखे गये लक्ष्मणने कहा, "वह जो सामने आप बड़े-बड़े पत्तों और डालोंसे आच्छन्न बड़ा पेड़ देख रही हैं उसके विशाल तलमें हमारे श्रेष्ठ स्वामी हैं।" लक्ष्मणके वचन सुनकर उसने अपनी सेनाको पुकार लिया और कांतके साथ ऐसे चल पड़ी मानो हथिनीसे विभूपित वन गजेन्द्रही मल्हता हुआ जा रहा हो॥ १–६॥

[१३] इतनेमें गरजता हुआ रामरूपी महागज, उस विशाल वृक्षकी गिरि-कंदरासे निकल आया। दो तूणीर ही उसका विपुल कुंभस्थल था। पुंखावली रूपी भ्रमरमालासे वह व्याप्त हो रहा था। करधनीकी घंटियोंसे झंकृत हो रहा था। विशाल बाणों रूपी दाँतोंसे वह भयंकर था। स्थूल और लम्बे बाहु ही उसकी विशाल सूँड थी। वह धनुपरूपी आलानखंभके उन्मूलनमें समर्थ, और रुष्ट दुष्ट शत्रु रूपी महावतके लिए प्रतिकूल था। ऐसा वह महाबली राम-महागज शब्दरूपी सीकर छोड़ रहा था, विह्वलांग वह भूख-प्याससे स्खलित हो रहा था। अपनी ही छायाके विरुद्ध आघात करने वाला वह केवल जिन-वचनरूपी अंकुशसे रोका जा सकता था। जानकी रूपी हथिनीसे वह विभूपित था। उसे देखकर लोग हर्पित हो उठे॥ १–८॥

तब शेप राज-समूह भी मचानसे उतर पड़ा। मानो मेरुके नितम्बसे ग्रहतारा समूह ही टूट पड़ा हो॥ ६॥

[१४] राक्षस-संहारक लक्ष्मण और कल्याणमाला दोनों ही रामके चरणोंमें गिर पड़े। "पहले देव, जलक्रीड़ा हो ले तब बादमें

एम भणेप्पिणु दिण्णइँ तूरइँ । झल्लरि तुणव-पणव-दड्डि-पहरइँ ॥३॥
पइठ स - साहण सरवर-णहयलेँ । फुल्लन्धुअ - भमन्त-गहमण्डलेँ ॥४॥
धवल - कवल - णक्खत्त-विहूसिएँ । मीण-मयर-कक्कडएँ पईसिएँ ॥५॥
उत्थल्लन्त - सफरि - चल - विज्जुलेँ । णाणाविह - विहङ्ग - घण-सङ्कुलेँ ॥६॥
कुवलय - दल - तमोह- दरिसावणेँ । सीयर-णियर-वरिस-वरिसावणेँ ॥७॥
जल - तरङ्ग - सुरचावारम्भिएँ । वल-जोइसिय-चक्क-पवियम्भिएँ ॥८॥

घत्ता

तहिँ सर णहयलेँ स-कलत्त वे वि हरि-हलहर ।
रोहिणि-रण्णाहिँ णं परिमिय चन्द-दिवायर ॥९॥

[१५]

तहिँ तेहएँ सरेँ सलिलेँ तरन्तइँ । संचरन्ति चामीयर - जन्तइँ ॥१॥
णाइँ विमाणइँ सग्गहोँ पडियइँ । वण्ण-विचित्त - रयण-वेयडियइँ ॥२॥
णत्थि रयणु जहिँ जन्तु ण घडियउ । णत्थि जन्तु जहिँ मिहुणु ण चडियउ ॥३॥
णत्थि मिहुणु जहिँ णेहु ण वड्डिउ । णत्थि णेहु जो णउ सुरयड्डिउ ॥४॥
तहिँ णर-णारि - जुवइ जल-कीलएँ । कीलन्ताइँ एहन्ति सुर-लीलएँ ॥५॥
सलिलु करग्गेँहिँ अप्फालन्तइँ । मुरव-वज्ज-घायइँ दरिसन्तइँ ॥६॥
खलिएँहिँ वलिएँहिँ अहिणव-गेएँहिँ । वन्धहिँ सुरयक्खित्तिय - भेएँहिँ ॥७॥
छन्देँहिँ तालेँहिँ वहु - लय - भङ्गेँहिँ । करणुच्छित्तेँहिँ णाणा - भङ्गेँहिँ ॥८॥

घत्ता

चोक्खु स-रागउ सिङ्गार-हार-दरिसावणु ।
पुक्खर-जुज्झु व तं जल-कीलणउ स-लक्खणु ॥९॥

लीलापूर्वक भोजन करें।" यह कहकर उन्होंने तूर्य बजा दिया, झल्लरि तुणव, प्रणव और दडि भी आहत हो उठे। सेनासहित वे सरोवर रूपी महाआकाशमें घुस गये। भ्रमर ही मानो उसमें घूमते हुए ग्रहमंडल थे। वह धवल कमलके नक्षत्रोंसे विभूषित, मीन-मकर आदिकी राशियोंसे युक्त उछलती हुई मछलियोंकी चंचल बिजली से शोभित, और नानाविध विहंगरूपी मेघोंसे व्याप्त था। कुवलय-दल जिसमें अंधकारके समूहकी भाँति था। जलकणोंके समूह ही वर्षाकी बौछारें थीं, जलतरंगें इन्द्रधनुषकी भाँति मालूम हो रही थीं और सेना तारामंडलके समान फैली हुई थी। उस सरोवर-रूपी नभस्तलमें स्त्रियोंसहित, राम और लक्ष्मण दोनों ऐसे मालूम होते थे मानो रोहिणी और रत्नाके साथ चंद्र और सूर्य हों ॥१-९॥

[१५] उस सरोवरके जलमें वे तैरने लगे, उसमें सोनेके यंत्र चल रहे थे, जो ऐसे लगते थे मानो रंगबिरंगे रत्नोंसे निर्मित देवविमान ही स्वर्गतलसे गिर पड़े हैं, उनमें एक भी रत्न ऐसा नहीं था जिसमें यंत्र न लगा हो, और यंत्र भी ऐसा नहीं था जिसमें एक मिथुन (युगल) न चढ़ा हो। मिथुन भी ऐसा नहीं था जिसमें स्नेह न बढ़ रहा हो, और स्नेह भी ऐसा नहीं था जिसमें सुरति न हो। उस सरोवरमें युवक-युवतियोंका समूह देवलीला-पूर्वक जलक्रीड़ामें रत होकर स्नान कर रहा था। कोई अंगुलीसे पानी उछालता, कोई मृदंगपर अपना हाथ दिखा रहा था। स्खलित होकर, मुड़कर, अभिनव गीतों, सुरति-भेदों, बंधों, विविध ताल, लय और भंगों करणुच्छित्तियों ??? नाना भंगिमाओंसे आश्चर्यपूर्ण रागपूर्ण, अहंकारको दिखानेवाली लक्षण-सहित पुष्कर युद्धकी तरह जलक्रीड़ाका (आनन्द ले रहे थे ?)। उसमें सराग नेत्र और अंगहार दिखाई दे रहे थे। सलक्षण (लक्ष्मण और लक्षण सहित) मानो वह जल-क्रीड़ा पुष्कर युद्धकी तरह थी ॥ १-९ ॥

[१६]

जलें जय-जय-सद्दें ण्हाय णर । पुणु णिग्गय हल-णारायण-धर ॥१॥
एत्थन्तरें समरें समत्थएँ ण । सिर-णमिय-कयञ्जलि-हत्थएँ ण ॥२॥
तणु-लुहणइँ देवि पहाणएँ ण । पुणु तिण्णि वि कुब्बर-राणएँ ण ॥३॥
पच्छण्णें भवणें पइसारियइँ । चामियर-वीढें वइसारियइँ ॥४॥
वित्थारिउ वित्थरु भोयणउ । सुकलत्तु व इच्छ ण सम्पण्णउ ॥५॥
रज्जं पिव पट्ट-विहूसियउ । सूरं पिव थालालङ्कियउ ॥६॥
सुरयं पिव सव्वु स-तिम्मणउ । वायरणु व सहइ स-विञ्जणउ ॥७॥
तं भुत्तु सइच्छएँ भोयणउ । णं किउ जग-णाहँ पारणउ ॥८॥

घत्ता

दिण्णु विलेवणु दिण्णइँ देवङ्गइँ वत्थइँ ।
मालइयइँ णं सुकइ-कियइँ सुह-सत्थइँ ॥९॥

[१७]

तेहि मि परिहियाइँ देवङ्गइँ । उवहि-जलाइँ व बहल-तरङ्गइँ ॥१॥
दुल्लह-लम्भइँ जिण-वयणाइँ व । पसरिय-सद्दइँ उच्छु-वणाइँ व ॥२॥
दीहर-छेयइँ अत्थाणाइँ व । फुल्लिय-डालइँ उज्जाणाइँ व ॥३॥
णिच्छिद्दइँ कइ-कव्व-पयाइँ व । हलुवइँ चारण-जण-वयणाइँ व ॥४॥
सण्हइँ कामिणि-मुह-कमलाइँ व । बहुइँ जिणवर-धम्म-फलाइँ व ॥५॥
समसुत्तइँ किण्णर-मिहुणाइँ व । सह-मंसलइँ वायरणाइँ व ॥६॥
तो एत्थन्तरें कुब्बर-सारें । ओयारिउ सण्णाहु कुमारें ॥७॥
सुरवर-कुलिस-सङ्क-तणु-अङ्गें । णावइ कञ्चुउ मुक्कु भुअङ्गें ॥८॥

घत्ता

तिहुअण-णाहेंण सुरजण-मण-णयणाणन्दें ।
मोक्खहों कारणें संसारु व मुक्कु जिणिन्दें ॥९॥

[१६] 'जय जय' शब्द पूर्वक लोगोंने जलमें स्नान किया, फिर राम और लक्ष्मण बाहर निकले। उसी बीचमें युद्धमें समर्थ, नलकूवर नगरका राजा कल्याणमालाने हाथोंकी अंजली बाँधकर नमस्कार किया और उनका शरीर पोंछा। बादमें अपने भवनमें ले जाकर सोनेके आसन-पीठपर उन्हें बैठाया और खूब भोजन परसा। वह, सुकलत्रकी तरह इच्छित और भोग्य था। राज्यकी तरह पट्टविभूपित था। तूरको समान थालसे अलंकृत सुरतिके समान सरस और सतिम्मण (आर्द्र और कढ़ी सहित) था, व्याकरणकी तरह वह व्यञ्जनों (व्यञ्जनवर्ण और पकवान) से शोभित था। उन्होंने इच्छाभर भोजन किया, मानो जगन्नाथ ऋषभने ही पारणा की हो। फिर उसने विलेप करके दिव्यदेवांग वस्त्र दिये। वे वस्त्र, मानो सुकवि कृत शास्त्रके समान सालंकार थे ॥१-६॥

[१७] जैसे समुद्रजल अपनी ही बहुल लहरोंको धारण करता है, वैसे ही उन्होंने वे दिव्य देवांग वस्त्र पहन लिये। जिन-वचनोंकी तरह अत्यंत दुर्लभ, ईखवनकी तरह विशालय (जलसारिणी और कपड़ा) वाले सभाभवनकी तरह दीर्घछेद (सीमा और छेद) वाले, उद्यानकी तरह फूल शाखा (और पत्तियों) से सहित, कवि-वरके काव्यपदोंकी तरह दोपरहित, चारणोंके वचनोंकी तरह हलके, कामिनीके मुख-कमलकी तरह सुंदर, जिनधर्मके श्रेष्ठ फलकी तरह भारी, किन्नरोंके जोड़ेकी तरह अच्छी तरह ग्रथित, व्याकरण की तरह अत्यंत परिपूर्ण थे। इतनेमें, इन्द्रके वज्रकी तरह क्षीण मध्यभाग वाले, नलकूवर नगरके श्रेष्ठ उस कुमारने अपना कवच उतार दिया। मानो साँपने अपनी केंचुली ही उतार दी हो, या मानो सुरजनोंके मन और नेत्रोंको आनंद देनेवाले, त्रिभुवननाथ जिनेन्द्रने मोक्षके लिए संसारका त्याग कर दिया हो ॥१-६॥

[१८]

तहिँ एकन्त - भवणें पच्छण्णएँ । जं अप्पाणु पगासिउ कण्णएँ ॥१॥
पुच्छिय राहवेण परिओसें । 'अक्खु काइँ तुहुँ थिय णर-वेसें' ॥२॥
तं णिसुणेप्पिणु पगलिय - णयणी । एम पजम्पिय गग्गिर-वयणी ॥३॥
'रुद्दभुत्ति - णामेण पहाणउ । दुज्जउ विञ्झ-महीहर-राणउ ॥४॥
तेण धरेप्पिणु कुब्बर - मारउ । वालिखिल्लु णिउ जणणु महारउ ॥५॥
तें कज्जें थिय हउँ णर - वेसें । जिह ण मुणिज्जमि जणेंण असेसें' ॥६॥
तं णिसुणेवि वयणु हरि कुद्धउ । णं पञ्चाणणु आमिस-लुद्धउ ॥७॥
अच्चन्तन्त - णेत्तु फुरियाहरु । एम पजम्पिउ कुरुडु समच्छरु ॥८॥

घत्ता

'जइ समरङ्गणें तं रुद्दभुत्ति णउ मारमि ।
तो सहुँ सीयएँ सीराउहु णउ जयकारमि' ॥९॥

[१९]

जं कल्लाणमाल सम्भासिय । लहु णर-वेसु लएवि आसासिय ॥१॥
ताव दिवायरु गउ अत्थवणहों । लोउ पढुक्कउ णिय-णिय-भवणहों ।२।
णिसि-णिसियरि दस-दिसहिँ पधाइय । महि-गयणोट्ठ दसेवि संपाइय ॥३॥
गह - णक्खत्त - दन्त - उदन्तुर । उवहि-जीह - गिरि-दाढा-भासुर ॥४॥
घण-लोयण - ससि - तिलय-विहूसिय । सञ्झा-लोहिय - दित्त-पदीसिय ॥५॥
तिहुयण - वयण - कमलु दरिसेप्पिणु । सुत्त णाइँ रवि-मडउ गिलेप्पिणु ॥६॥
ताव महावल - वलु विण्णासेवि । तालवत्तें णिय-णामु पगासेवि ॥७॥
सीयएँ सहुँ वल-कण्ह विणिग्गय । णिन्तुरङ्ग णीसन्दण णिग्गय ॥८॥

घत्ता

ताव विहाणउ रवि उट्ठिउ रयणि-विणासउ ।
गउ अच्छन्ति व णं दिणयरु आउ गवेसउ ॥९॥

[२०]

उट्ठेवि कुब्बरपुर - परमेसरु । जाव स-हत्थें वायइ अक्खरु ॥१॥

[१८] एकान्त भवनमें उस कन्याने जब अपने आपको प्रकट किया, तब रामने परितोषके साथ पूछा, "बताइये, आप नरवेशमें क्यों रहती थीं"। यह सुनकर गलितनेत्र वह, गद्गद्‌वाणीमें बोली, "विंध्याचलका रुद्रभूति नामक दुर्जेय राजा है। उसने मेरे पिता नलकूवर नगरके राजा वालिखिल्यको बंदी बना लिया है। इसी कारण मैं नरवेशमें रह रही हूँ, कि कोई मुझे पहचान न ले। यह सुनते ही लक्ष्मण आमिष-लोभी सिंहकी भाँति क्रुद्ध हो उठा। मत्सरसे भरकर, आरक्तनेत्र, कंपिताधर, क्रूर वह बोला, "यदि मैं उस रुद्रभूतिको समर-आंगणमें नहीं मार सका तो सीता सहित रामकी जय नहीं बोलूँगा ॥ १-६ ॥

[१९] अभयदान और आश्वासन पाकर कल्याणमालाने नरवेश हमेशाके लिए त्याग दिया। सूरज डूब चुका था। लोग अपने-अपने घर चले गये। निशारूपी निशाचरी चारों ओर दौड़ पड़ी। धरती आकाश सब कुछ उसने लील लिया। ग्रह नक्षत्र उसके लंबे और नुकीले दाँत थे, समुद्र जीभ, पर्वत भयंकर दाढ़, मेघ नेत्र और चन्द्रमा उस निशा-निशाचरीका तिलक था। साँझकी अरुणिमासे वह ऐसी उद्दीप्त हो रही थी मानो वह सूर्य शव !!! को त्रिभुवनके मुख कमलके लिए दिखाकर लीलकर सो गई हो। इसी बीच महाबली वे अपनी तैयारीकर और तालपत्रपर अपना नाम अंकितकर, सीता देवीके साथ, बिना किसी रथ अश्व के चल दिये। सवेरे निशाका अन्त करनेवाले सूर्यका उदय हुआ। वह मानो यही खोजता हुआ आ रहा था कि क्या वे लोग चले गये ॥ १-६ ॥

[२०] नलकूवरका राजा—कल्याणमालाने सवेरे उठकर उस तालपत्र-लेखको पढ़ा और जब उसने त्रिलोकमें अतुल प्रतापी, देव-

ताव तिलोयहों अतुल-पयावइँ । सुरवर-भवण-विणिग्गय-णायइँ ॥२॥
दुद्दम-दाणवेन्द-आयामइँ । दिट्ठइँ लक्खण-रामहुँ णावइँ ॥३॥
खणें कल्लाणमाल मुच्छंगय । णिवडिय केलि व खर-पवणाहय ॥४॥
दुक्खु दुक्खु आसासिय जावेंहिं । हाहाकारु पमेल्लिउ तावेंहिं ॥५॥
'हा हा राम राम जग-सुन्दर । लक्खण लक्खणलक्ख-सुहङ्कर ॥६॥
हा हा सीएँ सीएँ उप्पेक्खमि । विहि मि जणहुँ एक्कं पि ण पेक्खमि' ॥७॥
एम पलाउ करन्ति ण थक्कइ । खणें णीससइ ससइ खणें कोक्कइ ॥८॥

घत्ता

खणें खणें जोयइ चउद्दिसु लोयणेंहिं विसालेंहिं ।
खणें खणें पहणइ सिर-कमलु स इं भु व-डालेंहिं ॥९॥

●

२७. सत्तवीसमो संधि

तो सायर-वज्जावत्त-धर सुर-डामर असुर-विणासयर ।
णारायण-राहव रणें अजय णं मत्त महागय विञ्झु गय ॥

[१]

ताणन्तरें णम्मय दिट्ठ सरि । सरि जण-मण-णयणाणन्द-करि ॥१॥
करि-मयर-कराहय-उहय-तड । तडयड पडन्ति णं वज्ज-झड ॥२॥
झड-भीम-णिणाएं गीड-भय । भय-भीय-समुट्ठिय-चक्कहय ॥३॥
हय-हिंसिय-गज्जिय-मत्त-गय । गयवर-अणवरय-विसट्ट-मय ॥४॥
मय-मुक्क-करम्बिय वहइ महु । महुयर रुण्टन्ति मिलन्ति बहु ॥५॥
तहों धाइय गन्धव-पवह-गण । गण-भरिय-करञ्जलि तुट्ठ-मण ॥६॥

लोकमें विख्यात, दुष्ट दानव-राजोंको वशमें करनेवाले राम-लक्ष्मण को नहीं देखा तो उसी क्षण वह पवनाहत कदली वृक्षकी भाँति मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। बड़ी कठिनतासे जैसे-तैसे उसे जब चेतना आई तो उसने हाहाकार मचाना शुरू कर दिया, "हे राम! हे जगसुंदर राम, लाखों लक्षणोंसे अलंकृत हे लक्ष्मण! हे सीता! मैं ऊपर देखती हूँ, पर तीनोंमेंसे एकको भी नहीं देख पाती।" इस प्रकार प्रलाप करती हुई वह, एक पल भी विश्राम नहीं ले पा रही थी। एक क्षणमें उच्छ्वास लेती और फिर उन्हें पुकारने लगती। क्षण-क्षणमें वह चारों ओर देखती अपनी बड़ी बड़ी आँखोंसे। (और उन्हें न पाकर) अपने ही हाथों अपना शिर-कमल धुनने लगती ॥१-६॥



सत्ताईसवीं संधि

समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष धारण करनेवाले, असुर संहारक, रणमें अजेय, राम और लक्ष्मण, महागजकी भाँति विन्ध्याचलकी ओर गये।

[१] मार्गमें उन्हें जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाली नर्मदा नदी मिली। हाथी और मगरोंसे आहत उसके दोनों तट ऐसे लगते थे मानो तड़तड़ करके घातक चोट ही पड़ रही हो। उस आघातकी ध्वनिसे अत्यधिक भय उत्पन्न हो रहा था। चकोर उड़कर वहाँसे भाग रहे थे। अश्व हींस रहे थे और गज चिग्घाड़ भर रहे थे। उत्तम गजोंसे बढ़िया मदजल झर रहा था। कस्तूरी मिश्रित मधुजल बह रहा था। भ्रमर उसका पान करनेके लिए गुञ्जन करते हुए उड़ रहे थे। गन्धर्व देवता दौड़ रहे थे। संतुष्टमन उनकी अञ्जलियाँ भरी हुई थीं। बैल सुन्दर

मणहर ढेंकार मुअन्ति वल । वल-कमल - करम्बिय सङ्ग-दल ॥७॥
दलेँ भमर परिट्ठिय केसरहोँ । केसरु णिउ णवर जिणेसरहोँ ॥८॥

घत्ता

तो सीराउह-सारङ्गधर सहुँ सीयएँ सलिलेँ पइट्ठ णर ।
उवयारु करेप्पिणु रेवयएँ णं तारिय सासण-देवयएँ ॥९॥

[२]

थोवन्तरेँ महिहर भुअण - सिरि । सिरिवच्छें दीसइ विन्झइरि ॥१॥
इरिणप्पहु ससिपहु कण्णपहु । पिहुलप्पहु णिप्पहु झीणपहु ॥२॥
मुरवो व्व स-तालु स - वंसहरु । विसहो व्व स-सिङ्गु महन्त-डरु ॥३॥
मयणो व्व महाणल - दड्ढ - तणु । जलउ व्व स-वारि भडु व्व स-वणु ॥४॥
तहिँ तेहएँ सेलेँ अहिट्ठियइँ । दुण्णिमित्तइँ ताव समुट्ठियइँ ॥५॥
फेक्कारइ सिव वायसु रसइ । भीसावणु भण्डणु अहिलसइ ॥६॥
सरु सुणेवि पकम्पिय जणय-सुअ । थिय विहि मि धरेप्पिणु भुएँहिँ भुअ ॥७॥
'किं ण सुउ चवन्तु वि को वि णरु । जिह सउणउ माणिउ देइ वरु' ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेंवि असुर-विमद्दणेंण मब्भीसिय सीय जणद्दणेंण ।
'सिय लक्खणु वलु पच्चक्खु जहिँ कउ सउण-विसउणेंहिँ गण्णु तहिँ ॥९॥

[३]

एत्थन्तरेँ रहस - समुच्छलिउ । आहेडएँ रुद्दभुत्ति चलिउ ॥१॥
ति - सहासेँहिँ रहवर - गयवरेँहिँ । तहूण - तुरङ्गेँहिँ णरवरेँहिँ ॥२॥

रॅंभा रहे थे। भ्रमर कमलदलोंके परागमें घुस रहे थे। केशर जिनेश्वरकी तरह शोभित हो रही थी ॥१-८॥

तब राम लक्ष्मण और सीतादेवीको लेकर उसके जलमें घुसे। रेवाने भी, मानो शासन देवीकी भाँति उपकार करनेके लिए उन्हें उस पार कर दिया (तार दिया) ॥९॥

[२] (गौतम गणधरने कहा) हे राजन् (श्रेणिक) थोड़ी देर के अनन्तर रामको पृथ्वीका सौन्दर्य विंध्याचल पर्वत दीख पड़ा। उस पर्वतराजके निकट ही ईरणप्रभ, शशिप्रभ, कृष्णप्रभ, निष्प्रभ, क्षीणप्रभ पहाड़ थे। वह विन्ध्याचल मृदङ्गकी तरह, ताल (ताल वृक्ष और सङ्गीतका ताल) से सहित सुवंशधर (उत्तम वाँस धारण करनेवाला), बैलकी तरह सशृङ्ग (सींग और शिखरवाला) तथा भयानक था। कामदेवके समान महानल (दावानल व शिवके तीसरे नेत्रकी आग) से उसका शरीर जल रहा था। मेघकी तरह सजल, और योधाकी तरह व्रणसहित (घाव और जङ्गल) था। परन्तु उस ऐसे पर्वतमें अधिष्ठित होते ही रामको कुछ अपशकुन हुए। सियार फेक्कार कर रहे थे। कौवा (काँव २) बोल रहा था और भीषण मांस चाह रहा था। उसके स्वरको सुनकर जनकसुता सीता काँप उठीं। अपने दोनों हाथसे रामको पकड़कर बोलीं—"क्या आपने नहीं सुना, जैसे कोई सोता हुआ आदमी बड़बड़ाता है, वैसे ही इसे समझिए।" यह सुनकर असुर-संहारक जनार्दन राम सीताको अभय देते हुए बोले—"जहाँ लक्ष्मणके समान शक्तिशाली व्यक्ति स्पष्टरूपसे हमारे साथ है, तब यहाँ तुम्हें शकुन और अपशकुनकी चिन्ता कैसी ?" ॥१-९॥

[३] ठीक इस अवसरपर, हर्षसे झूलता हुआ रुद्रभूति शिकारके लिए निकला। वह तीन हजार हाथी, श्रेष्ठ रथों और

संचल्लें विञ्झ - पहाणएँण । लक्खिज्जइ जाणइ राणएँण ॥३॥
पप्फुल्लिय - धवल - कमल-वयण । इन्दीवर - दल - दीहर - णयण ॥४॥
तणु मज्झें णियम्बें वच्छें गरुअ । जं णयण-कडक्खिय जणय-सुअ ॥५॥
उम्मायण - मयणें हिं मोहणें हिं । वाणें हिं संदीवण - सोसणें हिं ॥६॥
आयल्लिउ सल्लिउ मुच्छियउ । पुणु दुक्खु दुक्खु ओमुच्छियउ ॥७॥
कर मोडइ अङ्गु वलइ हसइ । ऊससइ ससइ पुणु णीससइ ॥८॥

घत्ता

मयरद्धय-सर-जज्जरिय-तणु पहु एम पजम्पिउ कुइय-मणु ।
'वलिमण्डएँ वणवसि वणवसहुँ उद्दालेँ वि आणहों पासु महु' ॥९॥

[४]

तं वयणु सुणेप्पिणु णर-णियरु । उत्थरिउ णाइँ णव-अम्बुहरु ॥१॥
गज्जन्त - महागय - घण - पवलु । तिक्खग्ग - खग्ग - विज्जुल-चवलु ॥२॥
हय-पडह - पगज्जिय - गयणयलु । सर-धारा - धोरणि - जल-वहलु ॥३॥
धुअ - धवल - छत्त -डिण्डीर-वरु । मण्डलिय - चाव - सुरचाव - करु ॥४॥
सय - सन्दण - वीढ - भयावहुलु । सिय-चमर-वलाय - पन्ति-विउलु ॥५॥
ओरसिय - सङ्ख - दद्दुर - पउरु । तोणीर - मोर - णच्चण - गहिरु ॥६॥
तं पेक्खेंवि गुञ्ज-पुञ्ज-णयणु । दट्ठोट्ठ - रुट्ठ - रोसिय - वयणु ॥७॥
आवद्ध-तोणु धणुहरु अभउ । धाइउ लक्खणु लहु लद्ध-जउ ॥८॥

घत्ता

तं रिउ-कङ्काल-विणासयरु हलहेइहेँ भायरु सीय-वरु ।
जण-मण-कम्पावणु स-पवणु हेमन्तु पढुक्किउ महुमहणु ॥९॥

इनसे दूने अश्वोंसे सहित था। उसने सीताको देखा। उसका मुख खिले हुए सफेद कमलके समान था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी, मध्यभाग दुबला-पतला तथा नितम्ब और स्तन विशाल थे। सीताको देखते ही वह उन्मादक कामके मोहक, सन्दीपक और शोषक तीरोंसे पीड़ित हो उठा। वेदनासे मूर्छित उसे बड़ी कठिनाईसे चेतना आई। कभी वह हाथ मोड़ता, कभी अङ्ग हिलाता, उच्छ्वास भरता और निःश्वास छोड़ता। तब कामसे जर्जर शरीर उस राजा ने कहा—"उस वनवासिनी (सीताको) उन वन-वासियोंसे छीन-कर ले आओ" ॥१–६॥

[४] यह शब्द सुनते ही मनुष्योंका दल उछल पड़ा। मानो नये जलधर ही उमड़ आये हों। गरजते हुए महागज रूपी मेघोंसे प्रबल, तीखी तलवारोंकी बिजलीसे चपल, आहत नगाड़ोंकी गर्जनासे आकाशको गुंजाता हुआ, तीरकी पंक्तियोंकी जलधारासे व्याप्त, कंपित श्वेत छत्र रूपी इन्द्रधनुषको, हाथमें लिये हुए, सैकड़ों रथपीठोंसे भयावह, सफेद चमररूपी बगुलोंकी कतारसे विपुल, बजते हुए शङ्खोंके मेंढ़कोंसे प्रचुर, तूणीर रूपी मोरके नृत्यसे गंभीर, मनुष्योंके उस दलको देखकर जयशील, निडर, लक्ष्मण धनुष लेकर दौड़ा। ओठोंको चबाते हुए उसका चेहरा क्रोधसे तमतमा रहा था। उनके नेत्र मृगसमूहकी तरह आरक्त थे। उनकी पीठपर तरकस बँधा हुआ था। इस प्रकार हेमंत बनकर लक्ष्मण उसके (भिल्लराजके) पास जा पहुँचे। शत्रु रूपी वर्षाके संहारक वह; हलहेति (कृषक और रामके भाई) सीतावर (ठंडीहवासे युक्त और सीताके लिए उत्तम) जनमनको कम्पित कर देनेवाले, बाणरूपी पवनसे युक्त थे ॥१–६॥

[५]

अप्फालिउ महुमहणेण धणु । धणु-सद्दें समुट्ठिउ खर-पवणु ॥१॥
खर-पवण-पहय जलयर रडिय । रडियागमे वज्जासणि पडिय ॥२॥
पडिया गिरि सिहर समुच्छलिय । उच्छलिय चलिय महि णिद्दलिय ॥३॥
णिद्दलिय भुअङ्ग विसग्गि मुक्क । मुक्कन्त णवर सायरहुँ ढुक्क ॥४॥
ढुक्कन्तेंहिँ वहल फुलिङ्ग घित्त । घण सिप्पि-सङ्ख-संपुड पलित्त ॥५॥
धगधगधगन्ति मुत्ताहलाइँ । कढकढकढन्ति सायर-जलाइँ ॥६॥
हसहसहसन्ति पुलिणन्तराइँ । जलजलजलन्ति भुअणन्तराइँ ॥७॥
तें धणुहर-सद्दें णिट्ठुरेण । रिउ मुक्क पयाव-मडप्फरेण ॥८॥

घत्ता

भय-भीय विसण्ठुल णर पवर लोट्टाविय हय गय धय चमर ।
धणुहर टङ्कार- पवण-पहय रिउ-तरुवर णं सय-खण्ड गय ॥९॥

[६]

एत्थन्तरें तो विञ्झाहिवइ । सहुँ मन्तिहिँ रुद्दभुत्ति चवइ ॥१॥
'इमु काइँ होज्ज तइलोक्क-भउ । किं मेरु-सिहरु सय-खण्ड गउ ॥२॥
कि दुन्दुहि हय सुरवर-जणेंण । किं गज्जउ पलय-महाघणेंण ॥३॥
किं गयण-मग्गें तडि तडयडिय । किं महिहरें वज्जासणि पडिय ॥४॥
किं कालु कयन्त-मित्तु हसिउ । किं वलयामुहु समुद्दु रसिउ ॥५॥
किं इन्दहों इन्दत्तणु टलिउ । खय-रक्खसेण किं जगु गिलिउ ॥६॥
किं गउ पायालहों भुवणयलु । वम्भण्डु फुट्टु किं गयणयलु ॥७॥
किं खय-मारुउ ठाणहों चलिउ । किं असणि-णिहाउ समुच्छलिउ ॥८॥

[५] लक्ष्मणने पहुँचते ही धनुषकी टंकार की। उसकी ध्वनिसे पवनका प्रचण्ड वेग उठा। उस वेगसे आहत मेघ गरज उठे। उसके गर्जनसे वज्र गिरने लगे। वज्रपातसे पर्वतोंकी चोटियाँ उछलने लगीं। उनके उछलनेसे कम्पमान धरती चरमराने लगी। उसकी चरमराहटसे सर्प विषकी ज्वाला उगलने लगे। उनकी उगली हुई आग समुद्र तक जा पहुँची। वहाँ तक पहुँची हुई आगकी चिनगारियोंसे सीप और शंखोंके सम्पुट जल उठे। मोती धकधक करके जल उठे। समुद्रका जल कड़कड़ाने लगा। किनारोंके अन्तर हस-हस करके धसने लगे। इस प्रकार विश्वका अन्तराल जल उठा। उस धनुषके कठोर शब्दने शत्रुका अहङ्कार और प्रताप चूर-चूर कर दिया। भयभीत श्रेष्ठ योधा अस्त-व्यस्त हो उठे। गज, अश्व, ध्वज, चमर सब लोट-पोट हो गये। धनुषकी टंकारकी हवासे आहत होकर शत्रुरूपी महावृक्ष मानो सौ-सौ खण्डोंमें खण्डित हो उठा ॥१-६॥

[६] तब, विन्ध्याचल नरेश रुद्र-भूतिने अपने मन्त्रियोंसे कहा, "आखिर तीनों लोकोंमें इस तरहका भय क्यों हो रहा है? क्या मेरु पर्वतके शिखरके शत-शत खण्ड हो गये हैं? क्या इन्द्रने अपना नगाड़ा बजवा दिया है? क्या प्रलयके महामेघ गरज उठे हैं? या आकाश-भार्गमें तड़तड़ बिजली चमक रही है या पहाड़पर वज्र टूट पड़ा है, या यमका मित्र काल अट्टहास कर रहा है या गोलाकार समुद्र हँस उठा है? या किसीने इन्द्रके इन्द्रत्वका अतिक्रमण कर दिया है, या फिर विनाशके राक्षसने ही समूचे संसारको निगल लिया है। क्या भुवनतल पाताल लोकमें चला गया है। या कि ब्रह्माण्ड ही फूट गया है। या आकाशतल ही फट गया है। क्या क्षयपवन ही अपने स्थानसे

घत्ता

किं सयल स-सायर चलिय महि किं दिसि-गय किं गज्जिय उवहि ।
एँउ अक्खु महन्तउ अच्छरिउ कहों सद्दें तिहुअणु थरहरिउ ॥९॥

[७]

जं णरवइ एव चवन्तु सुउ । पभणइ सुमुत्ति कण्टइय-भुउ ॥१॥
'सुणि अक्खमि जं तइलोक्क-भउ । णउ मेरु-सिहरु सय-खण्ड गउ ॥२॥
णउ दुन्दुहि हय सुरवर-जणेंण । णउ गज्जिउ पलय-महाघणेंण ॥३॥
णउ गयण-मग्गें तडि तडयडिय । णउ महिहरें वज्जासणि पडिय ॥४॥
णउ कालु कियन्त-मित्तु हसिउ । णउ वलयामुहु समुद्दु रसिउ ॥५॥
णउ इन्दहों इन्दत्तणु टलिउ । खय-रक्खसेण णउ जगु गिलिउ ॥६॥
णउ गउ पायालहों भुवणयलु । वम्भण्डु फुट्टु णउ गयणयलु ॥७॥
णउ खय-मारुउ थाणहों चलिउ । णउ असणि-णिहाउ समुच्छलिउ ॥८॥
णउ सयल स-सायर चलिय महि । णउ दिसि-गय णउ गज्जिय उवहि ॥९॥

घत्ता

सिय-लक्खण-वल-गुण-वन्तएँण णीसेसु वि जउ धवलन्तएँण ।
सु-कलत्तें जिम जण-मणहरेंण एँउ गज्जिउ लक्खण धणुहरेंण ॥१०॥

[८]

सुणेँ णरवइ असुर-परायणहुँ । जं चिण्हइँ वल-णारायणहुँ ॥१॥
तं अत्थि असेसु वि वणवसहुँ । सुरभुवणुच्छलिय - महाजसहुँ ॥२॥
एक्कहों ससि-णिम्मल-धवलु तणु । अण्णेक्कहों कुवलय-घण-कसणु ॥३॥
एक्कहों महि-माणदण्ड चलण । अण्णेक्कहों दुद्दम-दणु-दलण ॥४॥
एक्कहों तणु मज्झु पदीसियउ । अण्णेक्कहों कमल-विहूसियउ ॥५॥

चल पड़ा है, या कि समुद्रसहित समूची धरती ही चलायमान हो गई है ? या दिग्गज दहाड़ रहे हैं या समुद्र गरज रहा है ? आखिर यह किसके शब्दसे सारा संसार थर्रा उठा है ? बताओ यह क्या है ? मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है" ॥१-६॥

[७] राजाको यह कहते हुए सुनकर, सुभुक्ति नामके मन्त्रीने पुलकसे भरकर कहा—"सुनिये मैं बताता हूँ, क्यों तीनों लोकोंमें इतना भय उत्पन्न हो रहा है। न तो मेरुपर्वतके सौ टुकड़े हुए हैं और न इन्द्रका नगाड़ा ही बजा है। न प्रलयकालके मेघ गरजे हैं और न आकाशमार्गमें बिजली गरजी है। न पहाड़पर वज्रपात हुआ है और न यमका मित्र काल ही हँसा है। न तो वलयाकार समुद्र हँसा है और न इन्द्रका इन्द्रत्व ही अतिक्रान्त हुआ है। न तो क्षयके राक्षसने संसारको निगला है और न ब्रह्माण्ड या गगन तल ही फूटा है, न क्षयमारुत ही अपने स्थानसे चलित हुआ है। न तो वज्रका आघात हो उछला है और न समुद्र सहित धरती ही उछली है। न तो दिग्गज दहाड़ा और न समुद्र ही गरजा। प्रत्युत यह धनुर्धारी लक्ष्मणकी हुंकार है। वह सीता और रामके साथ हैं और अपने गुणोंसे समूची धरतीको उन्होंने धवल कर दिया है। वह सुकलत्रकी तरह जनमनके लिए सुन्दर लगते हैं ॥१-१०॥

[८] असुरोंको परास्त करनेवाले बलभद्र और नारायणके जो चिह्न हमने सुने हैं, वे सब, इन, स्वर्ग तकमें प्रसिद्ध वनवासियोंमें मिलते हैं। उनमेंसे एक शशिकी तरह गौर वर्ण है और दूसरा इन्दीवर या मेघकी तरह श्याम वर्ण है। एकके चरण मानो धरतीके मानदण्ड हैं, और दूसरेके दुर्दम शत्रुओंके संहारक। एक का शरीर मध्यमें कृश है, और दूसरेका शरीर कमलोंसे अंचित है।

एक्कहों वच्छत्थलु सिय-सहिउ । अण्णेक्कहों सीयाणुग्गहिउ ॥६॥
एक्कहों भीसावणु हेइ हलु । अण्णेक्कहों धणुहरु अतुल-वलु ॥७॥
एक्कहों मुहु ससिकुन्दुज्जलउ । अण्णेक्कहों णव-घण-सामलउ' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेप्पिणु विगय-मउ णंसिन्दणु णिग्गउ णित्तुरउ ।
वलएवहों चलणेंहिँ पडिउ किह अहिसेएँ जिणिन्दहों इन्दु जिह ॥९॥

[९]

जं रुद्दभुत्ति चलणेंहिँ पडिउ । तं लक्खणु कोवाणलें चडिउ ॥१॥
धगधगधगन्तु । थरथरथरन्तु ॥२॥
'हणु हणु' भणन्तु । णं कलि कियन्तु ॥३॥
करयल धुणन्तु । महि णिद्दलन्तु ॥४॥
विप्फुरिय - वयणु । णिट्ठुरिय - णयणु ॥५॥
महि - माणदण्डु । परवल - पचण्डु ॥६॥
सो चविउ एव । 'रिउ मेल्लि देव ॥७॥
जं पइज एण । पुज्जइ हएण' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेप्पिणु अतुल-वलु 'सुणु लक्खण' पचविउ एव वलु ।
मुक्काउहु जो चलणेंहिँ पडइ तें णिहएं को जसु णिव्वडइ' ॥९॥

[१०]

थिउ लक्खणु वलेण णिवारियउ । णं वर-गइन्दु कण्णारियउ ॥१॥
णं सायरु मज्जायएँ धरिउ । पुणु पुणु वि चविउ मच्छर-भरिउ ॥२॥
'खल खुद्द पिसुण तउ सिर-कमलु । एत्तडेण चुक्कु जं णविउ वलु ॥३॥
वरि वालिखिल्लु मुएँ वन्दि लहु । णं तो जीवन्तु ण जाहि महु' ॥४॥
तं णिसुणेंवि णिविसें मुक्कु पहु । णं जिणवरेण संसार-पहु ॥५॥
णं गाह-कल्लोलें अमिय-तणु । णं गरुड-विहङ्गें उरगमणु ॥६॥

एकका वक्षःस्थल शोभासे सहित है दूसरेका वक्षःस्थल सीताको अनुगृहीत करनेवाला है। एकका भीषण आयुध है हल, और दूसरेका अतुल बल धनुष है। एकका मुख शशि और कुन्दकी तरह उज्ज्वल है और दूसरेका मुख नव घनकी तरह श्यामल।" यह वचन सुनकर रुद्रभूतिका मद उतर गया और निरुत्तर होकर विना रथके ही चल पड़ा। जाकर वह रामके चरणोंमें वैसे ही गिर पड़ा जैसे अभिषेकके समय इन्द्र जिनेन्द्रके चरणोंमें गिर पड़ता है ॥१-९॥

[९] यद्यपि रुद्रभूति रामके चरणोंमें नत था, तो भी लक्ष्मण क्रोधसे तमतमा रहा था। वह कलि या यमकी तरह "मारो मारो" चिल्लाता, हाथ धुनता, धरती रौंदता हुआ, भयङ्कर-नेत्र, शत्रुके लिए प्रचंड, पृथ्वीका मानदण्ड, लक्ष्मण बोला, "देव, शत्रुको छोड़ दीजिए। इसे मारकर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।" यह सुनकर अतुलबल बलभद्र रामने कहा, "सुनो लक्ष्मण, जो शस्त्र छोड़कर अपने चरणोंमें पड़ा हो उसे मारकर तुम्हें क्या यश प्राप्त होगा" ॥१-९॥

[१०] यह कहकर रामने लक्ष्मण को उसी प्रकार रोक दिया जिस तरह महावत उत्तम गजको रोक देता है। या मानो उन्होंने समुद्रको पुनः मर्यादित कर दिया हो। परन्तु फिर भी रोषसे प्रदीप्त लक्ष्मण बोला, "रे खल क्षुद्र पिशुन, तेरा सिर केवल इसलिए बच सका क्योंकि तू रामके चरणोंमें नत है। अच्छा अब तुम वालिखिल्यको तत्काल मुक्त कर दो। नहीं तो तुम्हें मैं किसी भी तरह जीवित नहीं छोड़ सकता।" यह सुनकर वालिखिल्य को रुद्रभूतिने ऐसे छोड़ दिया, मानो जिनने संसारको छोड़ दिया हो या राहुने चन्द्रको, गरुड़ने साँपको छोड़ दिया हो। वालिखिल्य

णं मुक्कु सुअणु दुज्जण-जणहों । णं वारणु वारि-णिवन्धणहों ॥७॥
णं मुक्कु भविउ भव-सायरहों । तिह वालिखिल्लु दुक्खोयरहों ॥८॥

घत्ता

ते रुद्दभुत्ति-वल-महुमहण सहुँ कुव्वर-णिवेँण चयारि जण ।
थिय जाणइ तेहिँ समाणु किह चउ-सायर-परिमिय पुहइ जिह ॥९॥

[११]

तो वालिखिल्ल-विम्भाहिवइ । अवरोप्परु णेह-णिवद्ध-मइ ॥१॥
कम-कमलेँहिँ णिवडिय हलहरहों । णमि-विणमि जेम चिरु जिणवरहों ॥२॥
सइँ हत्थेँ वलेँण समुट्ठविय । उवहि व समएँहिँ परिट्ठविय ॥३॥
भरहहों पाइक्क वे वि थविय । लहु णिय-णिय-णिलयहुँ पट्ठविय ॥४॥
उत्तिण्णइँ तिण्णि वि महिहरहों । णं भवियइँ भव-दुक्खोयरहों ॥५॥
णं मेरु-णियम्वहों किण्णरइँ । णं सग्गहों चवियइँ सुरवरइँ ॥६॥
विणु खेवेँ तावि पराइयइँ । किर सलिलु पियन्ति तिसाइयइँ ॥७॥
णवरुण्हउ रवियर-तावियउ । सु-कुडुम्वु व खल-संतावियउ ॥८॥

घत्ता

दिणयर-वर-किरण-करम्वियउ जलु लेवि मुएँ हिँ परि-चुम्वियउ ।
पइसन्तु ण भावइ मुहहों किह अण्णाणहों जिणवर-वयणु जिह ॥९॥

[१२]

पुणु तावि तरेप्पिणु णिग्गयइँ । णं तिण्ण मि विउझ-महागयइँ ॥१॥
वइदेहि पजम्पिय हरिवलहों । सुरवर-करि-कर - थिर-करयलहों ॥२॥
'जलु कहि मि गवेसहों णिम्मलउ । जं तिस-हरु हिम-ससि-सीयलउ ॥३॥
तं इच्छमि भविउ व जिण-वयणु । णिहि णिद्धणु जच्चन्धु व णयणु' ॥४॥

भी रुद्रभूतिसे उसी प्रकार मुक्त हो गया जिस प्रकार सज्जन दुर्जनसे, गज आलान-स्तम्भसे, और भव्य जीव सांसारिक दुःखसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार रुद्रभूति, राम, लक्ष्मण और बालिखिल्य चारों मिलकर एक हो गये, उनके साथ सीतादेवी ऐसी जान पड़ती थीं मानो चारों समुद्रोंसे वेष्टित धरती ही हो ॥१-६॥

[११] रुद्रभूति और बालिखिल्य, एक दूसरेके प्रति स्नेहकी वृद्धि रखकर, श्रीरामके चरणोंमें नत हो गये। ठीक उसी तरह जिस प्रकार नमि और विनमि ऋषभ जिनके चरणोंमें नत हुए थे। तब अपने हाथों उन्हें उठाते हुए रामने, उन्हें समुद्रकी तरह अपनी मर्यादामें स्थापित किया। उन दोनोंको रामने राजा भरतकी प्रजा बनाकर अपने-अपने घर भेज दिया। फिर उन तीनोंने पर्वतराज विंध्याचलको उसी प्रकार पार किया जिस प्रकार भव्यजीव भव-दुख-सागरको पार करते हैं। या किन्नर मेरु-शिखरको। या सुरवर देवलोकको पार करते हैं। अविलम्ब वे तीनों ताप्ती नदीके तटपर जा पहुँचे। प्यास (लगनेपर) वे उसका पानी पीने लगे। सूर्यसे संतप्त वह पानी, दुष्टसे पीड़ित कुटुम्बकी तरह उष्ण था। सूर्य किरणोंसे मिश्रित उस जलको यद्यपि उन लोगोंने हाथमें लेकर पिया, परन्तु वह उन्हें उसी प्रकार अच्छा नहीं लगा जिस प्रकार अज्ञानीको जिनवरके वचन अच्छे नहीं लगते ॥१-६॥

[१२] ताप्ती नदी पारकर वे तीनों विंध्याचलसे दूर निकल आये। तब वैदेही सीताने गजसुण्डवाले विशालबाहु रामसे पूछा, "कहीं हिमशीतल और शशि की तरह स्वच्छ जलकी खोज कीजिये जो प्यासको बुझानेवाला हो ? मुझे जल पीनेकी इच्छा इस प्रकार हो रही है जिस प्रकार भव्यजन जिन वचनकी, निर्धन व्यक्ति धनकी, और अन्धा व्यक्ति नेत्रोंकी इच्छा करता है।" तब

वलु धीरइ 'धीरी होहि धणें। मं कायरु मुहु करि मिगणयणें' ॥५॥
थोवन्तरु पुणु विहरन्तएँ हिं। मल्हन्तेंहिँ पउ पउ देन्तएँ हिँ ॥६॥
लक्खिज्जइ अरुणगामु पुरउ। वय-चन्ध-विहूसिउ जिह मुरउ ॥७॥
कप्पदुमो व्व चउद्दिसु सुहलु। णट्टावउ व्व णाटय-कुसलु ॥८॥

घत्ता

तं अरुणगामु संपाइयइँ मुणिवर इव मोक्ख-तिसाइयइँ।
सो णउ जणु जेण ण दिट्ठाइँ घरु कविलहोँ गम्पि पइट्ठाइँ ॥९॥

[१२]

णिज्झाइउ तं घरु दियवरहोँ। णं परम-थाणु थिरु जिणवरहोँ ॥१॥
णिरवेक्खु णिरक्खरु केवलउ। णिम्माणु णिरञ्जणु णिम्मलउ ॥२॥
णिव्वत्थु णिरत्थु णिराहरणु। णिद्धणु णिब्भत्तउ णिम्महणु ॥३॥
तहिँ तेहएँ भवणें पइट्ठाइँ। छुडु छुडु जलु पिएँवि णिविट्ठाइँ ॥४॥
कुञ्जर इव गुहेँ आवासियइँ। हरिणा इव वाहुत्तासियइँ ॥५॥
अच्छन्ति ताव तहिँ एक्कु खणु। दिउ ताव पराइउ कुइय-मणु ॥६॥
'मरु मरु णीसरु णीसरु' भणन्तु। धूमद्धउ व्व धगधगधगन्तु ॥७॥
भय-भीसणु कुरुडु सणिच्छरु व्व। वहु उवविस विण्णउ विसहरु व्व ॥८॥

घत्ता

'किं कालु कियन्तु मित्तु वरिउ किं केसरि केसरग्गें धरिउ।
को जम-मुह-कुहरहोँ णीसरिउ जो भवणें महारएँ पइसरिउ' ॥९॥

वलभद्र रामने सीतादेवीको धीरज बँधाते हुए कहा—"देवी ! धैर्य रक्खो। कातर मुख न वनो।" इस प्रकार विहार करते और अल्हड़तासे आगे पग बढ़ाते हुए रामको थोड़ी दूर चलनेपर बुधजनोंसे घिरा हुआ अरुण नामका एक गाँव मिला। वह गाँव उन्हें ऐसा लगा मानो वह वयबन्ध (चमड़ा और वगीचा) से विभूषित हो कल्पवृक्षकी तरह चारों ओरसे शोभित वह नटकी भाँतिमें कुशल था। मोक्षपिपासासे व्याकुल मुनियोंकी भाँति वे सब उस अरुण गाँवमें पहुँचे। वहाँ एक भी आदमीको न पाकर वे लोग किसी कपिल नामके ब्राह्मणके घरमें घुस पड़े ॥१-६॥

[१३] द्विजवरका वह घर (वास्तवमें) जिनवरके परम स्थान मोक्षको तरह दीख पड़ा। निर्वाणकी तरह एकदम निरपेक्ष, अक्षररहित तथा केवल (केवलज्ञानसे रहित और पास पड़ौससे रहित) निर्मान (अहंकार और गौरवसे शून्य) निरंजन (पाप और अंजिरसे रहित) निर्मल (कर्म और धूलिसे हीन) निर्भक्त (भक्ति और भोजनसे हीन) था। उस घरमें घुसकर शीघ्रतासे पानी पीकर वे लोग उसी प्रकार लिपटे जैसे सिंहकी चपेटसे मस्त गज गुफामें पहुँचकर निवृत्ति प्राप्त करता है। वे उस घरमें क्षणभर ही ठहरे थे कि क्रुद्धमन कपिल (महोदय) वहाँ आ धमके। आगकी तरह धधकता हुआ वह बोला "मरो मरो, निकलो निकलो। शनिकी तरह अत्यन्त कठोर, भयभीषण और विपाक्त सर्पकी तरह वह ब्राह्मण अत्यन्त खिन्न मनका हो रहा था। उसने कहा, "क्या तुमने (आज) काल या कृतान्तको अपना मित्र चुना है या सिंहकी अयालके अग्रिम वालोंका पकड़ा है। यमकी मुख-गुफासे कौन निकल सका है, तुमने (फिर) मेरे घरमें कैसे प्रवेश किया" ॥१-६॥

[१४]

तं वयणु सुणेप्पिणु महुमहणु । आरुट्ठु समर-भर-उव्वहणु ॥१॥
णं धाइउ करि थिर-थोर-करु । उम्मूलिउ दियवरु जेम तरु ॥२॥
उग्गामेँवि भामेँवि गयणयलेँ । किर घिवइ पडीवउ धरणियलेँ ॥३॥
करेँ धरिउ ताव हलपहरणेँण । 'मुएँ मुएँ मा हणहि अकारणेँण ॥४॥
दिय-वाल-गोल - पसु-तवसि-तिय । छ वि परिहरु मेल्लेँ वि माण-किय' ॥५॥
तं णिसुणेँवि दियवरु लक्खणेँण । णं मुक्कु अलक्खणु लक्खणेँण ॥६॥
ओसरिउ वीरु पच्छामुहउ । अङ्कुस-णिरुद्धु णं मत्त-गउ ॥७॥
पुणु हियएँ विसूरइ खणेँ जेँ खणेँ । 'सय-खण्ड-खण्डु वरि हूउ रणेँ ॥८॥

घत्ता

वरि पहरिउ वरि किउ तवचरणु वरि विसु हालाहलु वरि मरणु ।
वरि अच्छिउ गम्पिणु गुहिल-वणेँ णवि णिविसु वि णिवसिउ अवुहयणेँ' ॥९॥

[१५]

तो तिण्णि वि एम चवन्ताइँ । उम्माहउ जणहोँ जणन्ताइँ ॥१॥
दिण-पच्छिम-पहरेँ विणिग्गयाइँ । कुञ्जर इव विउल-वणहोँ गयाइँ ॥२॥
वित्थिण्णु रण्णु पइसन्ति जाव । णग्गोहु महादुमु दिट्ठु ताव ॥३॥
गुरु-वेसु करेँवि सुन्दर-सराइँ । णं विहय पढावइ अक्खराइँ ॥४॥
वुक्कण-किसलय क-क्का रवन्ति । वाउलि-विहङ्ग कि-क्की भणन्ति ॥५॥
वण-कुक्कुड कु-क्कू आयरन्ति । अण्णु वि कलावि के-क्कइ चवन्ति ॥६॥
पियमाहवियउ को-क्कउ लवन्ति । कं-क्का वप्पीह समुल्लवन्ति ॥७॥
सो तरुवरु गुरु-गणहर-समाणु । फल-पत्त-वन्तु अक्खर-णिहाणु ॥८॥

घत्ता

पइसन्तेँहिँ असुर-विमद्दणेँहिँ सिरु णामेँवि राम-जणद्दणेँहिँ ।
परिअञ्चेँ वि दुमु दसरह-सुएँहिँ अहिणन्दिउ मुणि व स इं भु एँहिँ ॥९॥

[१४] यह सुनते ही समरभार उठानेमें समर्थ लक्ष्मण एकदम क्रुद्ध हो उठा और उस द्विजपर उसी प्रकार झपटा जिस प्रकार स्थूलशुण्ड गज पेड़ उखाड़ने दौड़ता है। वह उसे उठाकर और आकाशमें घुमाकर पटक देता, परन्तु रामने उसे शान्त करते हुए कहा, "छिः छिः व्यर्थ ही उसे मत मारो। नीति है कि मनुष्योंको इन छःकी हत्या नहीं करनी चाहिए। ब्राह्मण, बालक, गाय, पशु, तपस्वी और स्त्री।" यह सुनकर लक्ष्मणने उस द्विजवरको कुलक्षणकी भाँति छोड़ दिया। अंकुशसे निरुद्ध, महागजकी भाँति वह अपना मुँह मोड़कर पीछे हट गया। तब वे अपने मनमें बार-बार यह सोचकर पछताने लगे, "युद्धमें सौ-सौ खण्ड हो जाना अच्छा, प्रहार करना अच्छा, तपस्या करने चला जाना अच्छा, विष या हलाहल पीकर मर जाना अच्छा, एकान्त वनमें चला जाना अच्छा पर मूर्खोंके बीच पलभर ठहरना भी ठीक नहीं" ॥१-६॥

[१५] यह सुनते हुए उन तीनोंने लोगोंके मार्ग दर्शन करने पर, दोपहरके बाद उसी प्रकार कूच कर दिया जिस प्रकार गज दुर्गम वनकी ओर चल देता है। तब एक विस्तीर्ण वनमें प्रवेश करते ही, उन्हें वटका एक विशाल वृक्ष दिखाई दिया। वह वटवृक्ष मानो शिक्षकका रूप धारणकर पक्षिरूपी शिष्योंको सुन्दर स्वर और व्यञ्जनके पाठ पढ़ा रहा था। कौआ कक्का कह रहे थे, बाउल विहंग किक्की बोल रहे थे। मयूर केक्कई कह रहे थे, कोकिल कोक्कउ और पपीहा कंकाका उच्चारण कर रहे थे। वह महावृक्ष मानो गुरु गणधरकी भाँति फल-पत्रसहित नाना अक्षरोंका निधान था। उस महावटके निकट जाकर असुरसंहारक दशरथ पुत्र राम और लक्ष्मणने उसकी परिक्रमा की तथा माथा झुकाकर उसका अभिनन्दन किया ॥१-६॥

•

[२८. अट्ठावीसमो सन्धि]

सीय स-लक्खणु दासरहि तरुवर-मूलें परिट्ठिय जावँहिँ ।
पसरइ सु-कइहेँ कव्वु जिह मेह-जालु गयणङ्गणेँ तावँहिँ ॥

[१]

पसरइ मेह-विन्दु गयणङ्गणेँ । पसरइ जेम सेण्णु समरङ्गणेँ ॥१॥
पसरइ जेम तिमिरु अण्णाणहोँ । पसरइ जेम बुद्धि बहु-जाणहोँ ॥२॥
पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहोँ । पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहोँ ॥३॥
पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहोँ । पसरइ जेम कित्ति जगणाहहोँ ॥४॥
पसरइ जेम चिन्त धण-हीणहोँ । पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहोँ ॥५॥
पसरइ जेम सद्दु सुर-तूरहोँ । पसरइ जेम रासि णहेँ सूरहोँ ॥६॥
पसरइ जेम दवग्गि वणन्तरेँ । पसरइ मेह-जालु तिह अम्बरेँ ॥७॥
तडि तडयडइ पडइ घणु गज्जइ । जाणइ रामहोँ सरणु पवज्जइ ॥८॥

घत्ता

अमर-महाधणु-गहिय-करु मेह-गइन्दें चडेँवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिम्भ-णराहिवहोँ पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥९॥

[२]

जं पाउस-णरिन्दु गलगज्जिउ । धूली-रउ गिम्भेण विसज्जिउ ॥१॥
गम्पिणु मेह-विन्दें आलग्गउ । तडि-करवाल-पहारेँहिँ भग्गउ ॥२॥
जं विवरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्ठिउ 'हणु' भणन्तु उण्हालउ ॥३॥
धगधगधगधगन्तु उद्धाइउ । हसहसहसहसन्तु संपाइउ ॥४॥
जलजलजलजलजल पचलन्तउ । जालावलि-फुलिङ्ग मेल्लन्तउ ॥५॥
धूमावलि-धयदण्डुब्भेप्पिणु । वर-वाउल्लि-खग्गु कड्ढेप्पिणु ॥६॥
झडझडझडझडन्तु पहरन्तउ । तरुवर-रिउ-भड-थड भज्जन्तउ ॥७॥
मेह-महागय-घड विहडन्तउ । जं उण्हालउ दिट्ठु भिडन्तउ ॥८॥

घत्ता

धणु अप्फालिउ पाउसेँण तडि-टङ्कार-फार दरिसन्तें ।
चोऍवि जलहर-हत्थि हड णीर-सरासणि मुक्क तुरन्तें ॥९॥

अट्ठाईसवीं संधि

राम लक्ष्मण और सीतादेवीके साथ जैसे ही उस तरुवरके नीचे बैठे वैसे ही, सुकविके काव्यकी तरह, आकाशमें मेघजाल फैलने लगा।

[१] जैसे समराङ्गणमें सेना फैलती है, अज्ञानीमें अन्धकार फैलता है, बहुज्ञानीमें बुद्धि फैलती है, पापिष्ठमें पाप फैलता है, धर्मिष्ठमें धर्म फैलता है, चन्द्रमाकी चाँदनी फैलती है, धनहीनकी चिन्ता फैलती है और जैसे सुकुलीनकी कीर्ति फैलती है, जैसे नगाड़ेका शब्द फैलता है, जैसे सूर्यकी किरणें फैलती हैं, और वनमें दावानल फैलता है, वैसे ही आकाशमें मेघजाल फैलने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो पावस राजा यशकी कामनासे मेघ महागजपर बैठकर, इन्द्रधनुष हाथमें लेकर, ग्रीष्म नराधिपपर चढ़ाई करनेके लिए सन्नद्ध हो रहा हो ॥१-६॥

[२] जब पावस राजाने गर्जना की तो ग्रीष्म राजाने धूलिका वेग छोड़ा, वह जाकर मेघ-समूहसे चिपट गया। परन्तु पावस राजाने बिजलीकी तलवारोंके प्रहारसे उसे भगा दिया। जब वह धूलिवेग (बवण्डर) उलटे मुँह लौट आया, तो ग्रीष्मवेग पुनः उठा। धकधकाता और हस हस करता हुआ वह वहाँ पहुँचकर जल-जलकर प्रदीप्त हो उठा। उससे चिनगारियाँ छूटने लगीं। उसने धूमावलिके ध्वजदण्ड उखाड़कर तूफानकी तलवारसे झड़झड़ कर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। तरुवररूपी शत्रु-समूह भग्न होने लगे। मेघघटा विघटित हो उठी। इस प्रकार ग्रीष्मराजा, पावसराजासे भिड़ गया तब पावसने बिजलीकी टंकार करके इन्द्रधनुष पर डोरी चढ़ा ली। जलधरकी गजघटाको प्रेरित किया, और बूँदोंके तीरोंकी बौछार शुरू कर दी ॥१-६॥

[३]

जल-वाणासणि-घायहिँ घाइउ । गिम्भ-णराहिउ रणेँ विणिवाइउ ॥१॥
दद्दुर रडेँवि लग्ग णं सज्जण । णं णच्चन्ति मोर खल दुज्जण ॥२॥
णं पूरन्ति सरिउ अक्कन्दें । णं कइ किलकिलन्ति आणन्दें ॥३॥
णं परहुय विमुक्क उग्घोसें । णं वरहिण लवन्ति परिओसें ॥४॥
णं सरवर बहु-अंसु-जलोल्लिय । णं गिरिवर हरिसें गञ्जोल्लिय ॥५॥
णं उण्हविअ दवग्गि विओएं । णं णच्चिय महि विविह-विणोएं ॥६॥
णं अत्थमिउ दिवायरु दुक्खें । णं पइसरइ रयणि सइँ सुक्खें ॥७॥
रत्त-पत्त तरु पवणाकम्पिय । 'केण वि वहिउ गिम्भु' णं जम्पिय ॥८॥

घत्ता

तेहएँ कालेँ भयाउरएँ वेण्णि सि वासुएव-वलएव ।
तरुवर-मूलेँ स-सीय थिय जोगु लएविणु मुणिवर जेम ॥९॥

[४]

हरि-वल रुक्ख-मूलेँ थिय जावेंहिँ । गयमुहु जक्खु पणासेँवि तावेंहिँ ॥१॥
गउ णिय-णिवहों पासु वेवन्तउ । 'देव देव परिताहि' भणन्तउ ॥२॥
'णउ जाणहुँ किं सुरवर किं णर । किं विज्जाहर-गण किं किण्णर ॥३॥
धणुधर धीर चडायउ उव्भेंवि । सुत्त महारउ णिलउ णिरुम्भेंवि' ॥४॥
तं णिसुणेविणु वयणु महाइउ । पूवणु मम्भीसन्तु पधाइउ ॥५॥
विज्झ-महीहर-सिहरहों आइउ । तक्खणेँ तं उद्देसु पराइउ ॥६॥
ताम णिहालिय वेण्णि वि दुद्धर । सायर-वज्जावत्त-धणुद्धर ॥७॥
अवही-णाणु पउञ्जइ जावेंहिँ । लक्खण-राम मुणिय मणेँ तावेंहिँ ॥८॥

[३] जलके वाणों से आहत होकर ग्रीष्म राजा धरतीपर गिर पड़ा। उसके पतनको देखकर मेंढक सज्जनों की भाँति रोने लगे। और दुष्टजनों की तरह मयूर नाचने लगे। आक्रन्दनसे ऐसे नदियाँ भर उठीं, मानो कवि आनन्दसे किलकिला उठा हो, मानो कोयल कूक उठी हो, मानो मयूर परितोषसे नाच उठा हो, मानो सरोवरका जल अत्यधिक परिस्रावित हो उठा हो, मानो गिरिवर हर्षसे रोमांचित हो उठा हो, मानो वियोगका दावानल नष्ट हो गया हो। मानो धरावधू विविध विनोदोंसे नाच उठी हो, मानो दुःखके अतिरेकसे सूर्यका अस्त हो गया हो। मानो सुखसे रजनी फैल गई हो। हवामें हिलते-डुलते लाल कोंपलवाले वृक्ष मानो इस बातकी घोषणा कर रहे थे कि ग्रीष्मराजाका वध किसने कर दिया। उस घोर समयमें राम, लक्ष्मण और सीता उस वट महावृक्षके नीचे इस प्रकार बैठे हुए थे मानो योग साधकर महामुनि ही बैठे हों ॥१-६॥

[४] इतनेमें एक यक्ष, वर्षासे क्षतविक्षत होकर, ठिठुरता हुआ अपने राजाके पास गया और (यक्षराज से) बोला,—"देव देव, मैं नहीं जानता कि वे कौन हैं, सुरवर हैं कि नरवर, विद्याधर हैं या कि किन्नर। दोनों ही वीर धनुष चढ़ाकर हमारे घर वटवृक्षको घेरकर सो रहे हैं।" यह सुनकर, उस यक्षको अभयदान देकर, वह यक्षराज दौड़ा और शीघ्र ही पर्वत की उस शिखर पहुँचा जहाँ, वज्रावर्त और सागरावर्त धनुष लिये हुए वे दोनों (राम लक्ष्मण) बैठे हुए थे। अवधिज्ञानके प्रयोगसे उस यक्षराजने फौरन जान लिया कि ये राम और लक्ष्मण हैं। वलभद्र और

घत्ता

पेक्खेँवि हरि-बल वे वि जण पूवण-जक्खेँ जय-जस-लुद्धे ँ।
मणि-कञ्चण-धण-जण-पउरु पट्टणु किउ णिमिसद्धहोँ अद्धे ँ॥९॥

[५]

पुणु रामउरि पघोसिय लोएं। णं णारिहिँ अणुहरिय णिओएं॥१॥
दीहर - पन्थ - पसारिय-चलणी। कुसुम - णियत्थ - वत्थ-साहरणी॥२॥
खाइय-तिवलि-तरङ्ग - विहूसिय। गोउर-थणहर - सिहर - पदीसिय॥३॥
विउलाराम - रोम - रोमञ्चिय। इन्दगोव - सय - कुङ्कुम - अञ्चिय॥४॥
गिरिवर-सरिय - पसारिय-वाही। जल - फेणावलि - वलय-सणाही॥५॥
सरवर-णयण - वणञ्जण-अञ्जिय। सुरधणु-भउह - पदीसिय-पञ्जिय॥६॥
देउल-वयण-कमलु दरिसेप्पिणु। वर-मयलञ्छण-तिलउ लएप्पिणु॥७॥
णाइँ णिहालइ दिणयर-दप्पणु। एम विणिम्मउ सयलु वि पट्टणु॥८॥
वइसेँवि वलहोँ पासेँ वीसत्थउ। आलावइ आलावणि-हत्थउ॥९॥

घत्ता

एक्कवीस-वर-मुच्छणउ सत्त वि सर ति-गाम दरिसन्तउ।
'वुज्झि भडारा दासरहि सुप्पहाउ तउ' एव भणन्तउ॥१०॥

[६]

सुप्पहाउ उच्चारिउ जावेँहिँ। रामेँ वलेँवि पलोइउ तावेँहिँ॥१॥
दिट्ठु णयरु जं जक्ख-समारिउ। णाइँ णहङ्गणु सुर-विहूसिउ॥२॥
स-घणु स-कुम्भु स-सवणु स-सङ्कउ। स-वुहु स-तारउ स-गुरु-ससङ्कउ॥३॥
पुणु वि पडीवउ णयरु णिहालिउ। णाइँ महावणु कुसुमोमालिउ॥४॥

नारायण दोनोंको एक साथ देखकर, जयशील और यशलोलुप उस यक्षराजने पलभरमें एक नगरी खड़ी कर दी, जो मणि-माणिक्य और धन-धान्यसे पूरित थी ॥१-६॥

[५] लोगोंने उसका नाम ही रामपुरी रख दिया। रचना और आकार-प्रकारमें वह नगरी नारीकी तरह प्रतीत होती थी। लम्बे-लम्बे पथ उसके पैर थे। फूलों के ही उसके वस्त्र और अलङ्कार थे। खाईकी तरङ्गित त्रिवलीसे वह विभूषित थी। उसके गोपुर स्तनोंके अग्रभागकी तरह जान पड़ते थे। विशाल उद्यानोंके रोमोंसे पुलकित, और सैकड़ों बीर-वधूटियोंके केशरसे अञ्चित थी। पहाड़ और सरिताएँ मानो उस नगरीरूपी नारीकी फैली हुई भुजाएँ थीं। जल और फेनावलि उसकी चूड़ियाँ और नाभि थीं। सरोवर नेत्र थे, मेघ काजल थे और इन्द्रधनुष भौंहें। मानो वह नगरीरूपी नव-वधू चन्द्रमाका तिलक लगाकर दिनकर-रूपी दर्पण में अपना देवकुल रूपी मुख देख रही थी। इस प्रकार उस यक्षने क्षणभरमें समूची नगरीका निर्माण कर दिया। विश्रब्ध होकर, रामके पास बैठकर और अपने हाथमें वीणा लेकर बजाने लगा। इक्कीस मूर्छनाओं, सात स्वर और तीन ग्रामोंका प्रदर्शन करते हुए अपने गीतमें उस यक्षराजने कहा, "हे राम, यह सब आपका ही सुप्पहाव (सुप्रभाव और सुप्रभात) है॥ १-१०॥

[६] सुप्रभात शब्द सुनते ही, रामने जो मुड़कर देखा तो उन्हें यक्षोंसे भरा हुआ नगर दीख पड़ा। मानो सूर्यसे आलोकित गगनांगन ही हो। गगनांगनमें धन, कुंभ, श्रवण, चन्द्रमा, बुध, तारक, गुरु और जल होता है। उस नगरमें धन घड़ा श्रमण पंडित उपाध्याय और मार्ग थे। रामने फिर घूमकर देखा तो वह उन्हें कुसुमोंसे व्याप्त महावनकी तरह लगा। वह नगर सुकविके काव्यकी

णाइँ सुकइहेँ कव्वु पयडन्तिउ। णाइँ णरिन्द-चित्तु वहु-चित्तउ ॥५॥
णाइँ सेण्णु रहवरहँ अमुक्कउ। णाइँ विवाह-गेहु स-चउक्कउ ॥६॥
णाइँ सुरउ चचरि-चरियालउ। णावइ डिम्भउ अहिय-छुआलउ ॥७॥
अह किं वण्णिएण खणेँ जे खणेँ। तिहुअणेँ णत्थि जं पि तं पट्टणेँ ॥८॥

घत्ता

तं पेक्खेप्पिणु रामउरि भुअण-सहास-विणिग्गय-णामहोँ।
मच्छुडु उज्झाउरि-णयरु जाय महन्त भन्ति मणेँ रामहोँ ॥९॥

[७]

जं किउ विम्भउ सासय-लक्खेँ। वुत्तु णवेप्पिणु पुअण-जक्खेँ ॥१॥
'तुम्हारउ वण-वसणु गिएप्पिणु। किउ मइँ पट्टणु भाउ धरेप्पिणु' ॥२॥
एम भणेवि सुवित्थय-णामहोँ। दिण्ण सुघोस वीण तेँ रामहोँ ॥३॥
दिण्णु मउडु साहरणु विलेवणु। मणि-कुण्डल कडिसुत्तउ कङ्कणु ॥४॥
पुणु वि पजम्पिउ जक्ख-पहाणउ। 'हउँ तउ भिच्चु देव तुहुँ राणउ' ॥५॥
एव वोल्लु णिम्माइय जावेँहिँ। कविलेँ णयरु णिहालिउ तावेँहिँ ॥६॥
जण-मणहरु सुर-सग्ग-समाणउ। वासवपुरहोँ वि खण्डइ माणउ ॥७॥
तं पेक्खेँवि आसङ्किउ वम्भणु। 'कहिँ विरियणु रण्णु कहिँ पट्टणु' ॥८॥

घत्ता

थहरन्तु भय-मारुएँण समिहउ घिवेँवि सणासइ जावेँहिँ।
मम्भीसन्ति मियङ्कमुहि पुरउ स-माय जक्खि थिय तावेँहिँ ॥९॥

तरह पद (पद और—प्रजा) से सहित तथा नरेन्द्रके चित्तकी तरह बहुत ही चित्र-विचित्र था। सेनाकी तरह रथश्रेष्ठोंसे सहित, विवाहके घरकी तरह, चौक (चौमुहानी और भूमिमंडन) से सहित था। सुरतिके समान वक्र चेष्टाओंसे युक्त, बच्चेकी तरह अत्यधिक क्षुधित, (भूखा और चूनेसे पुता हुआ) जान पड़ता था। अथवा अधिक कहनेसे क्या, संसारमें एक भी ऐसा नगर नहीं था जिसकी उससे तुलना की जा सके। हजारों भुवनोंमें विख्यात नाम रामको उस नगरको देखकर यह भ्रांति हो गई कि कहीं यह दूसरी ही अयोध्या न हो॥ १-६॥

[७] (इसके अनन्तर) यह सब आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले—अपलक नेत्र उस यक्षने प्रणामपूर्वक रामसे निवेदन किया, "आपके वनवासकी बात जानकर ही मैंने सद्भावनासे इस नगरका निर्माण किया है।" यह कहकर उसने रामको सुघोष नामकी वीणा प्रदान की तथा दूसरी, मुकुट, आभरण, विलेप, मणि, कुंडल, कटिसूत्र और कंगन आदि चीजें दीं। तदनन्तर यक्षोंके प्रमुख उसने कहा, "मैं आपका अनुचर हूँ, और आप मेरे स्वामी।" वह इस प्रकार निवेदन कर ही रहा था कि इतनेमें उस कपिल ब्राह्मणने इस नगरको देखा। जनमन हारी, देवोंके स्वर्गके समान सुन्दर उस नगरको देखकर उसने समझा कि यह अमरावती का ही एक खंड है। यह सब (कौतुक) देखकर वह सोचने लगा, "कहाँ वह घना जंगल और कहाँ यह सुन्दर नगरी। भय रूपी हवासे वह काँप गया। लकड़ियोंका गट्ठर फेंककर वह मूर्छित होनेको ही था कि चन्द्रमुखी नामकी यक्षिणी उसके सम्मुख आई और 'डरो मत' कहकर माताके समान उसके आगे बैठ गई॥ १-९॥

[८]

'हे दियवर चउवेय-पहाणा । किण्ण मुणहि रामउरि अयाणा ॥१॥
जण-मण-वल्लहु राहव-राणउ । मत्त-गइन्दु व पगलिय-दाणउ ॥२॥
तक्कुव-भमर-सएहिँ ण मुच्चइ । देइ असेसु वि जं जसु रुच्चइ ॥३॥
जोयइ (?) जिणवर-णामु लएइ । तहो कड्ढेप्पिणु पाणइँ देइ ॥४॥
एँउ जं वासव-दिसएँ विसालउ । दीसइ तिहुअण-तिलउ-जिणालउ ॥५॥
तहिँ जो गम्पि करइ जयकारु । पट्टणेँ णवरि तासु पइसारु' ॥६॥
तं णिसुणेप्पिणु दियवरु धाइउ । णिविसेँ जिणवर-भवणु पराइउ ॥७॥
तं चारित्तसूरु मुणि वन्देवि । विणउ करेँवि अप्पाणउ णिन्देँवि ॥८॥

घत्ता

पुच्छिउ मुणिवरु दियवरेँण 'दाणहोँ कारणेँ विणु सम्मत्तेँ ।
धम्मेँ लइएं कवणु फलु एउ देव महु अक्खि पयत्तेँ ॥९॥

[९]

मुणिवरु कहेँ वि लग्गु 'विउलाइँ । किं जणेँ ण णियहि धम्मफलाइँ ॥१॥
धम्मेँ भड-थड हय गय सन्दण । पावेँ मरण-विओयक्कन्दण ॥२॥
धम्मेँ सग्गु भोग्गु सोहग्गु । पावेँ रोग्गु सोग्गु दोहग्गु ॥३॥
धम्मेँ रिद्धि विद्धि सिय संपय । पावेँ अत्थ-हीण णर विहय ॥४॥
धम्मेँ कडय-मउड-कडिसुत्ता । पावेँ णर दालिद्देँ भुत्ता ॥५॥
धम्मेँ रज्जु करन्ति णिरुत्ता । पावेँ पर - पेसण-संजुत्ता ॥६॥
धम्मेँ वर - पल्लङ्केँ सुत्ता । पावेँ तिण-संथारेँ विसुत्ता ॥७॥
धम्मेँ णर देवत्तणु पत्ता । पावेँ णरय-घोरेँ संकन्ता ॥८॥

[८] वह बोली, "अरे अजान द्विजवर, चारों वेदोंमें विद्वान् होकर तुम यह नहीं जानते कि यह रामपुरी है। और इसमें जनमनके प्रिय राजा राघव हैं। मत्तगजकी तरह वह शीघ्र ही दान (मदजल, दान) देनेवाले हैं। सैकड़ों याचकजन उन्हें नहीं छोड़ रहे हैं, जिसे जो अच्छा लगता है, वह उसे वही दे डालते हैं। जिनवरका नाम लेकर जो भी उनसे माँगता है उसके लिए वे अपने प्राण तक उत्सर्ग कर देते है। यह जो इन्द्रकी दिशामें त्रिभुवन श्रेष्ठ जिनालय देख पड़ रहा है। पहले तुम उसमें प्रवेश करो नहीं तो नगरमें प्रवेश नहीं मिल सकता।" यह सुनकर वह ब्राह्मण दौड़कर गया और एक पलमें ही उस जिनालयमें पहुँच गया। उसने वहाँ चारित्रसूर्य यतिकी वन्दना की। उनकी विनय करनेके बाद वह अपनी निन्दा करने लगा। फिर उस ब्राह्मणने उनसे पूछा, "सम्यक्त्वके बिना, दानके लिए धर्म-परिवर्तन करनेका क्या फल है। हे देव, मुझे यह बताइए" ॥ १-६ ॥

[६] यह सुनकर मुनिवर बोले, "क्या तुम लोकमें धर्मके नाना फल नहीं देखते। धर्मसे भटसमूह, हय, गज और रथ मिलते हैं। पापसे मरण, वियोग और आक्रन्दन मिलता है। धर्मसे स्वर्ग-भोग और सौभाग्य होता है। पापसे रोग, शोक और अभाग्य। धर्मसे ऋद्धि-सिद्धि-वृद्धि श्री और सम्पदा मिलती है। पापसे मनुष्य धनहीन और दयाविहीन होता है। धर्मसे कटक, मुकुट और मणिसूत्र मिलते हैं और पापसे मनुष्य दरिद्रताका भोग करता है। धर्मसे जीव निश्चय ही राज्य करता है और पापसे दूसरोंकी सेवा करता है। धर्मसे वह उत्तम पलंगपर शयन करता है और पापसे तिनकोंकी सेजपर सोता है। धर्मसे नर देवत्व पाता है, और घोर पापसे नरकमें जाता है। धर्मसे

धम्में णर रमन्ति वर-विलयउ। पावें दूहविउ दुह-णिलयउ ॥९॥
धम्में सुन्दरु अङ्गु णिवद्धउ। पावें पङ्गुलउ वि वहिरन्धउ ॥१०॥

घत्ता

धम्म-पाव-कप्पद्दुमहुँ आयइँ जस-अवजस-वहुलाइँ।
वेण्णि मि असुह-सुहङ्करइँ जाइँ पियइँ लइ ताइँ फलाइँ' ॥११॥

[१०]

मुणिवर-वयणेंहिँ दियवरु वासिउ। लइउ धम्मु जो जिणवरें भासिउ ॥१॥
पञ्चाणुव्वय लेवि पधाइउ। णिय-मन्दिरु णिविसेण पराइउ ॥२॥
गम्पिणु पुणु सोम्महेँ वज्जरियउ। 'अज्जु महन्तु दिट्ठु अच्चरियउ ॥३॥
कहिँ वणु कहिँ पट्टणु कहिँ राणउ। कहिँ मुणि दिट्ठु अणेयइँ जाणउ ॥४॥
कहिँ मइ कहिँ लद्धइँ जिण-वयणइँ। वहिरें कण्णऽन्धेण व णयणइँ' ॥५॥
तं णिसुणेवि सोम्म गञ्जोल्लिय। 'जाहुँ णाह तहिँ' एम पवोल्लिय ॥६॥
पुणु संचलइँ वे वि तुरन्तइँ। तिहुयण-तिलउ जिणालउ पत्तइँ ॥७॥
साहु णवेप्पिणु पासेँ णिविट्ठइँ। धम्मु सुणेप्पिणु णयरें पइट्ठइँ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठु णरिन्दत्थाणु णइ जाणइ-मन्दाइणि-परिचड्डिउ।
णर-णक्खत्तहिँ परियरिउ हरि-वल-चन्द-दिवायर-मण्डिउ ॥९॥

[११]

हरि अत्थाण-मग्गें जं दिट्ठउ। दियवरु पाण लएवि पणट्ठउ ॥१॥
णट्ठु कुरङ्गु व वारणवारहो। णट्ठु जिणिन्दु व भव-संसारहोँ ॥२॥
णट्ठु मियङ्कु व अब्भपिसायहो। णट्ठु दवग्गि व णीर-णिहायहोँ ॥३॥
णट्ठु भुअङ्गु व गरुड-विहङ्गहोँ। णट्ठु खरो व्व मत्त-मायङ्गहोँ ॥४॥
णट्ठु अणङ्गु व सासय-गमणहोँ। णट्ठु महाघणो व्व खर-पवणहोँ ॥५॥
णट्ठु महीहरो व्व सुर-कुलिसहोँ। णट्ठु तुरङ्गमो व्व जम-महिसहोँ ॥६॥
तिह णासन्तु पदीसिउ दियवरु। मम्भीसन्तु पधाइउ सिरिहरु ॥७॥

मनुष्य उत्तम निलयमें रमण करता है, और पापसे दुर्भाग्यपूर्ण दुख-निलयमें। धर्मसे सुन्दर शरीरकी रचना होती है, पापसे (मनुष्य) पंगु और अन्धा होता है। धर्म और पाप रूपी कल्पतरुओंके यश और अपयशसे युक्त शुभ और अशुभ दो ही फल होते हैं। इनमेंसे जो प्रिय लगे उसे ले लो" ॥१-११॥

[१०] मुनिवरके वचनोंसे पुलकित होकर उस द्विजने जिन-वर-द्वारा प्रतिपादित धर्म अंगीकार कर लिया। पाँच अणुव्रत ग्रहण कर लिये। एक पलमें ही वह अपने घर पहुँच गया। जाकर उसने अपनी पत्नीसे कहा—"आज मैंने बहुत बड़ा अचरज देखा। कहीं मैंने वन देखा और कहीं नगर। कहीं राजा और कहीं मुनि, कहीं अनेक यान मिले और कहीं मुझे जिनवचन सुननेको मिले। मानो बहरेको कान और अन्धेको नेत्र मिले हों।" यह सुनकर, पुलकित पत्नीने कहा,—"शीघ्र ही वहाँ जाइए।" तदनन्तर वे दोनों वहाँके लिए चल पड़े। वे उस त्रिभुवनतिलक जिनालयमें पहुँचे, और मुनिवरको प्रणामकर वहाँ बैठ गये। धर्मका श्रवणकर वे नगरमें घुसे। वहाँ उन्होंने राजा रामका दरवाररूपी आकाश देखा, उसमें सीता रूपी मन्दाकिनी (आकाशगंगा) अधिष्ठित थीं। और वह मनुष्य रूपी नक्षत्रोंसे घिरा हुआ था। राम और लक्ष्मण रूपी चन्द्र और सूर्यसे वह अलंकृत था ॥१-६॥

(११) परन्तु जैसे ही राज-दरबारके मार्गमें उस द्विजवरने लक्ष्मणको देखा तो उसके प्राण उड़ गये। जिस प्रकार सिंहको देखकर हरिण, या भवसंसारसे जिन, राहुसे चन्द्र, मत्तहाथीसे गर्दभ, मोक्षगामीसे काम, प्रबलपवनसे मेघ, इन्द्रवज्रसे पर्वत, यममहिषसे अश्व नष्ट हो जाता है, वैसे ही लक्ष्मणसे उस कपिल द्विजको प्रनष्ट होते हुए देखकर, उसने उसे अभय दिया।

मण्ड धरेवि करेण करग्गएँ। गम्पि वित्तु वलएवहों अग्गएँ ॥८॥
दुक्खु दुक्खु अप्पाणउ धीरेंवि। सयलु महब्भड मणेँ अवहेरेंवि ॥९॥
दुद्दम - दाणविन्द - बल-मद्दहों। पुणु आसीस दिण्ण वलद्दहों ॥१०॥

घत्ता

'जेम समुद्दु महाजलेंण जेम जिणेसरु सुकिय-कम्में।
चन्द-कुन्द-जस-णिम्मलेंण तिह तुहुँ वद्दु णराहिव धम्में' ॥११॥

[१२]

ता एत्थन्तरेँ पर-वल-मद्दणु। कहकह-सद्दें हसिउ जणद्दणु ॥१॥
भवणेँ पइट्ठ तुहारएँ जइयहुँ। पइँ अवगण्णेँवि वल्लिय तइयहुँ ॥२॥
एत्थु कालें पुणु दियवरु कीसा। विणउ करेंवि पुणु दिण्ण असीसा ॥३॥
तं णिसुणेवि भणइ वेयायरु। अत्यहों को ण वि करइ महायरु ॥४॥
जिह आणन्दु जणइ सीयालएँ। एत्थु ण हरिसु विसाउ करेवउ ॥५॥
काल-वसेण कालु वि सहेवउ। एत्थु ण हरिसु विसाउ करेवउ ॥६॥
अत्थु विलासिणि-जण-मण-वल्लहु। अत्थ-विहूणउ वुच्चइ वल्लहु ॥७॥
अत्थु वियड्ढु अत्थु गुणवन्तउ। अत्थ-विहूणु भमइ मग्गन्तउ ॥८॥
अत्थु अणङ्गु अत्थु जगेँ सूहउ। अत्थ-विहूणु दीणु णरु दूहउ ॥९॥
अत्थु सइच्छिउ भुञ्जइ रज्जु। अत्थ विहूणें किं पि ण कज्जु' ॥१०॥

घत्ता

'साहु' भणन्तें राहवेंण इन्दणील-मणि-कञ्चण-खण्डेंहिँ।
कडय-मउड-कडिसुत्तयहिँ पुज्जिउ कविलु सइं भुव-दण्डेंहिँ ॥११॥

अपने हाथसे उसकी अंगुली पकड़कर लक्ष्मणने उसे लाकर रामके सम्मुख डाल दिया। जैसे तैसे अपने आपको धीरज बँधा, और मनसे समस्त भयको दूर कर उस कपिल द्विजवरने दुर्दम दानवेन्द्रोंके संहारक रामको आशीर्वाद दिया—"जिस प्रकार समुद्र महाजलसे बढ़ते हैं, जिनेश्वर पुण्य कर्मसे बढ़ते हैं, उसी प्रकार आपका भी यश चन्द्र और कुन्द पुष्पके समान बढ़ता रहे" ॥१–११॥

[१२] तब पर-बलसंहारक लक्ष्मण कहकहा लगाकर हँस पड़ा। और बोला,—"जब हम तुम्हारे घरमें घुसे थे तब तो तुमने अवहेलनाके साथ निकाल दिया। और अब आप, कैसे द्विजवर हैं जो इस तरह विनय पूर्वक आशीर्वाद दे रहे हैं?" यह सुनकर उस ब्राह्मणने कहा,"अर्थका महान् आदर कौन नहीं करता। सूर्य जिस प्रकार शीतकालमें आनन्द देता है, उसी प्रकार क्या उष्णकालमें अच्छा नहीं लगता। समयके अधीन होकर हमें (जीवन में) सब कुछ सहन करना पड़ता है। अतः इसमे हर्ष विषाद की क्या बात है। विलासिनी स्त्रियोंको अर्थ बहुत ही प्रिय लगता है। अर्थहीन नरको वे छोड़ देती हैं। (संसार में) अर्थ ही विदग्ध है और अर्थ ही गुणवान् है। अर्थ विहीन भीख माँगता हुआ फिरता है। अर्थ ही कामदेव है, अर्थ ही जगमें शुभ है, अर्थहीन नर दीन और दुर्भग है। अर्थसे ही इच्छित राजभोग मिलता है। अर्थहीनसे कुछ काम-काज नहीं होता।" तब रामने साधु-साधु कहकर उस ब्राह्मण देवता को, इन्द्रनील मणियों और सुवर्णसे बने कटक मुकुट और कटिसूत्र देकर अपने हाथसे स्वयं उसका खूब आदर-सत्कार किया ॥१–११॥

●

[२९. एगुणतीसमो संधि]

सुरडामर-रिउ-डमरकर कोवण्ड-धर सहुँ सीयएँ चलिय महाइय ।
वल-णारायण वे वि जण परितुट्ठ-मण जीवन्त-णयरु संपाइय ॥

[१]

पट्टणु तिहि मि तेहिँ आवज्जिउ । दिणयर-विम्बु व दोस-विवज्जिउ ॥१॥
णवर होइ जइ कम्पु धएसु । हउ तुरएसु जुज्झु चुरएसु ॥२॥

घाउ मुरवेसु भङ्ग चिहुरेसु ॥३॥
जड रुद्देसु मलिणु चन्देसु ॥४॥
खलु खेत्तेसु दण्डु छत्तेसु ॥५॥
(वहु-)कर गहणेसु पहरु दिवसेसु ॥६॥
धणु दाणेसु चिन्त झाणेसु ॥७॥
सुर सग्गेसु सीहु रण्णेसु ॥८॥
कलहु गएसु अङ्क कव्वेसु ॥९॥
दरु वसहेसु वेलु गयणेसु ॥१०॥
वणु रुक्खेसु झाणु मुक्खेसु ॥११॥

अहवइ किंत्तिउ णिव वण्णिज्जइ । जइ पर तं जि तासु उवमिज्जइ ॥१२॥

घत्ता

तहोँ णयरहोँ अवरुत्तरेँण कोसन्तरेँण उववणु णामेण पसत्थउ ।
णाइँ कुमारहोँ एन्ताहोँ पइसन्ताहोँ थिउ णव-कुसुमञ्जलि-हत्थउ ॥१३॥

[२]

तहिँ उववणेँ थिय हरि-वल जावेँहिँ । भरहेँ लेहु विसज्जिउ तावेँहिँ ॥१॥
अग्गएँ वित्तु णरेण णरिन्दहोँ । भविउ व चलणेँहिँ पडिउ जिणिन्दहोँ ॥२॥
लइउ महीहरेण सइँ हत्थेँ । जिणवर-धम्मु व मुणिवर-सत्थेँ ॥३॥
वारि-णिवन्धहोँ मुक्कु गइन्दु व । दिट्ठ अङ्कु तहिँ णहयलेँ चन्दु व ॥४॥

उनतीसवीं सन्धि

देवों के लिए भयंकर शत्रुओंके संहारक और धनुर्धारी राम और लक्ष्मण घूमते हुए जीवंत नगर पहुँचे।

[१] उन तीनोंने उस नगरको सूर्यविम्ब की तरह दोष (अवगुण और रात) से रहित देखा। उस नगरमें कम्पन केवल पताकाओं में था, हत (घाव) अश्वोंमें, द्वन्द्व सुरति में, आघात मृदंगमें, भंग केशोंमे, जड़ता रुद्रमें, मलिनता चन्द्रमें, खल खेतोंमें, दण्ड छत्रोंमें, वहुल कर ग्रहण करनेका अवसर (कर = टैक्स और दान) प्रहर दिनमें, धन दानमें, चिन्ता ध्यानमें, सुर (स्वर और शराव) संगीतमें, सिंह अरण्यमें, कलह गजोंमें, अंक काव्योंमें, भय वैलोंमें, वेल (वातूल और मूर्ख) आकाशमें, वन (व्रण, वेत) जंगल में, और ध्यान मुक्त नरोंमें था। इनके लिए दूसरी जगह नहीं थीं। (गौतम गणधरने कहा) अथवा हे राजन् (श्रेणिक) उस नगर का वर्णन करना सम्भव नहीं, उस नगरकी उपमा केवल उसी नगरसे दी जा सकती है। उस नगरके उत्तरमें प्रशस्त नामक एक उपवन था, वह ऐसा लगता था मानो आते और प्रवेश करते हुए कुमारोंके स्वागतमें हाथमें अंजलि लेकर खड़ा हो ॥१–१२॥

[२] जब राम और लक्ष्मण उस उपवन में ठहरे, तभी उस नगरके राजाके पास भरतका लेखपत्र पहुँचा। पत्रवाहकने वह पत्र राजाके सम्मुख वैसे ही डाल दिया जैसे जीव जिनेन्द्रके चरणोंके आगे पड़ जाते हैं और जैसे मुनिवर जिनधर्मको ग्रहण करते हैं वैसे ही राजाने उस पत्रको अपने हाथ में ले लिया। वह पत्र उसे ऐसा दीख पड़ा मानो वारी वन्धनसे मुक्त हाथी ही हो। उसके अक्षर आकाशमें उगे चन्द्रमा की तरह जान पड़ रहे थे। उस

'रज्जु मुएवि वे वि रिउ-मद्दण। गय वण-वासहों राम-जणद्दण ॥५॥
को जाणइ हरि कहिँउ आवइ। तहों वणमाल देज्ज जसु भावइ' ॥६॥
लेहु विवेप्पिणु णरवइ महिहरु। णाइँ दवेण दड्ढु थिउ महिहरु ॥७॥
णाइँ मियङ्को कमिउ विडप्पें। तिह महिहरु णरिन्दु माहप्पें ॥८॥

घत्ता

जाय चिन्त मणेँ दुद्धरहों धरणीधरहों सिहि-गल-तमाल-घण-वण्णहों।
'लक्खणु लक्खण-लक्ख-धरु तं मुएँ वि वरु मइँ दिण्ण कण्ण किं अण्णहों' ॥९॥

[२]

तो एत्थन्तरेँ णयण-विसालएँ। एह वत्त जं सुय वणमालएँ ॥१॥
आउलिहुय हियएण विसूरइ। दुक्खं महणइ व्व आऊरइ ॥२॥
सिरेँ पासेउ चडइ मुहु सूसइ। कर विहुणइ पुणु दइवहों रूसइ ॥३॥
मणु घुगुघुगइ देहु परितप्पइ। वम्महो णं करवत्तें कप्पइ ॥४॥
ताव णहङ्गणेण घणु गज्जिउ। णाइँ कुमारेँ दूउ विसज्जिउ ॥५॥
धीरी होहि माएँ णं भासिउ। 'उहु लक्खणु उववणेँ आवासिउ' ॥६॥
गरहिउ मेहु तो वि तणु-अङ्गिएँ। दोस वि गुण हवन्ति संसग्गिएँ ॥७॥
'तुहुँ किर जण-मण णयणाणन्दणु। महु पुणु जलहर णाइँ हुआसणु ॥८॥

घत्ता

तुज्झु ण दोसु दोसु कुलहों हय-दुह-कुलहों जलें जलणें पवणें जं जायउ।
तं पासेउ दाहु करहु णीसासु महु तिण्णि वि दक्खवणहों आयउ ॥९॥

पत्रमें यह लिखा था, "राज्य छोड़कर शत्रुसंहारक राम और लक्ष्मण दोनों वनवासके लिए गये हैं। क्या पता वे कब तक लौटें? इसलिए जिसको ठीक समझो उसको वनमाला दे दो।" लेख पढ़कर राजा सन्न रह गया। वह वैसे ही गौरवहीन हो उठा जैसे दावानलसे भस्मीभूत पहाड़ या राहु से ग्रस्त चन्द्रमा गौरव रहित हो जाता है। मयूरकण्ठके समान श्याम वर्ण उस राजाको अब यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि मैं, अपनी कन्या वनमाला, अनेक लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको छोड़कर, और किसे दूँ ॥१-६॥

[३] इतनेमें यह बात विशालनयना, वनमालाके कानों तक पहुँची। यह सुनते ही वह आकुल होकर मन ही मन विसूरने लगी। महानदीकी तरह वह दुखसे भर उठी। सिरमें पसीना हो आया। मुख सूख गया। हाथ मलती हुई वह अपने भाग्यको कोसने लगी। मन धुक-धुक कर रहा था। देह जल रही थी। मानो कामदेव ही करपत्रसे उसे काट रहा हो। उसी समय आकाशके आंगनमें मेघ ऐसा गरज उठा, मानो कुमार लक्ष्मणने दूत ही भेजा हो, और जो मानो यह कह रहा था,—"माँ धीरज धरो, वह कुमार लक्ष्मण उपवनमें ठहरा हुआ है।" तब भी उस तन्वंगीने मेघकी निन्दा ही की, ठीक भी है क्योंकि संसर्ग से, गुण भी दोष हो जाते हैं। उसने कहा,—"मेघ, तुम भले ही जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले हो, परन्तु मेरे लिए तो दावानलकी तरह हो। इसमें तुम्हारा दोष नहीं, दोष तुम्हारे हत और दुखद कुलका है। तुम जल आग और हवासे उत्पन्न जो हुए हो, उसीसे पसीना और जलन उत्पन्न करते हो और निःश्वास देते हो। तुमने मुझे तीनों ही चीजें दिखा दीं" ॥१-६॥

[४]

दोच्छिउ मेहु पणट्ठु णहङ्गणेँ। पुणु वणमालऍ चिन्तिउ णिय-मणेँ॥१॥
'किं पइसरमि वलन्तेँ हुआसणेँ। किं समुद्दें किं रण्णेँ सु-भीसणेँ॥२॥
किं विसु भुञ्जमि किं अहि चप्पमि। किं अप्पउ करवत्तें कप्पमि॥३॥
किं करिवर-दन्तहिँ उर भिन्दमि। किं करवालेँहिँ तिलु तिलु छिन्दमि॥४॥
किं दिस लङ्घमि किं पव्वज्जमि। कहोँ अक्खमि कहोँ सरणु पवज्जमि॥५॥
अहवइ एण काइँ गमु सज्जमि। तरुवर-डालऍ पाण विसज्जमि'॥६॥
एम भणेप्पिणु चलिय तुरन्ती। कङ्केल्ली-थड उग्घोसन्ती॥७॥
गन्ध-धूव-वलि - पुप्फ - विहत्थी। लीलऍ चिक्कमन्ति वीसत्थी॥८॥

घत्ता

चउविह-सेण्णेँ परियरिय धण णीसरिय 'को विहिँ आलिङ्गणु देसइ'।
एम चवन्ति पइट्ठु वणेँ रवि-अत्थवणेँ 'कहिँ लक्खणु' णाइँ गवेसइ॥९॥

[५]

दिट्ठु असोयवच्छु परिअञ्चिउ। जिणवरो व्व सब्भावें अञ्चिउ॥१॥
पुणु परिवायणु कियउ असोयहोँ। 'अण्णु ण इह-लोयहोँ पर-लोयहो॥२॥
जम्मेँ जम्मेँ सुअ-सुअहेँ स-लक्खणु। पिय-भत्तारु होज्ज महु लक्खणु'॥३॥
पुणु पुणु एम णमंसइ जावेँहिँ। रयणिहेँ वे पहरा हुय तावेँहिँ॥४॥
सयलु वि साहणु णिद्दोणल्लउ। णावइ मोहण-जालें पेल्लिउ॥५॥
णिग्गय पुणु वणमाल तुरन्ती। हार-डोर-णेउरेँहिँ खलन्ती॥६॥
हरि-विरहग्गु-पूरेँ उब्भन्ती। जुण्ण-कुरङ्गि व चित्तुब्भन्ती॥७॥

[४] अपनी भर्त्सना सुनकर मेघ आकाशमें ही नष्ट हो गया। तब फिर वनमाला अपने मनमें सोचने लगी,—"क्या मैं जलती आगमें कूद पड़ूँ या समुद्र या वनमें घुस जाऊँ, क्या विषपान कर लूँ या साँपको चाँप दूँ? क्या अपनेको करपत्रसे काट लूँ? क्या हाथीके दाँतसे छाती फाड़ लूँ या करवालसे तिल-तिल छेद दूँ? क्या दिशा लाँघ जाऊँ या संन्यास ग्रहण कर लूँ? किससे कहूँ और किसकी शरण जाऊँ? अथवा इस सबसे क्या काम बनेगा? तरुवरकी डालसे टंगकर मैं ही अपने प्राण छोड़े देती हूँ।" मनमें यह सोचकर, और अशोक वनके लिए जानेकी घोषणा करके वह तुरन्त घरसे चल पड़ी। उसके हाथमें गन्ध, दीप, धूप और पूजाके फूल थे। वह चमकती-दमकती, लीला पूर्वक चली जा रही थी। चारों ओर सैनिकोंसे घिरी हुई वह धन्या अपने मनमें यह सोचती हुई, अपने घरसे निकल पड़ी कि देखूँ, दोनों (अशोक वृक्ष और लक्ष्मण) मेंसे कौन मुझे आलिंगन देता है। सूर्यास्त होते-होते वह वनमें प्रविष्ट हुई। वह मानो यह खोज रही थी कि लक्ष्मण कहाँ हैं ॥१-६॥

[५] वनमालाके लिए अशोक वृक्ष ऐसा लगा मानो सद्भावोंसे अंचित जिनेन्द्र ही हों। फिर उसने अशोक वृक्षसे निवेदन करते हुए कहा,—"इस जन्ममें और दूसरे जन्ममें, मेरा दूसरा नहीं है। सुलक्षण लक्ष्मण ही जन्म-जन्मान्तरमें बार-बार मेरा पति हो।" इस प्रकार आत्म-निवेदन करते हुए उसे रातके दो प्रहर बीत गये। सारे सैनिक नींदके झोकोंमें ऊँघकर ऐसे लोट-पोट होने लगे मानो मोह-जालमें फँस गये हों। तब वनमाला बाहर निकली। हार डोर और नूपुरसे वह स्खलित हो रही थी। प्रियके विरहाश्रुओंसे भरी हुई वह; विपन्न हरिणीकी भाँति उद्भ्रान्त मन हो रही थी। एक ही पलमें वह वटके पेड़ पर चढ़ गई।

णिविसद्धें णग्गोहें वलग्गी । रमण-चवल णं गोह-वलग्गी ॥८॥

घत्ता

रेहइ दुमें वणमाल किह घणें विज्जु जिह पइयन्ती लक्खण-कङ्खिणि ।
किलिकिलन्ति जोण्हावणिय भीसावणिय पच्चक्ख णाइँ वड-जक्खिणि ॥९॥

[६]

तहिँ वालऍं कलुणु पकन्दियउ । वण-डिम्भउ णं परिअन्दियउ ॥१॥
'आयण्णहों वयणु वणस्सइहों । गङ्गाणइ - जउण - सरस्सइहों ॥२॥
गह-भूय-पिसायहों विन्तरहों । वण-जक्खहों रक्खहों खेयरहों ॥३॥
गय-वग्घहों सिङ्घहों सम्वरहो । रयणायर - गिरिवर - जलयरहों ॥४॥
गण-गन्धव्वहों विज्जाहरहों । सुर - सिद्ध - महोरग-किण्णरहों ॥५॥
जम - खन्द - कुवेर - पुरन्दरहों । वुह - भेसइ - सुक्क - सणिच्छरहों ॥६॥
हरिणङ्कहों अक्कहों जोइसहों । वेयाल - दइच्चहों रक्खसहों ॥७॥
वइसाणर - वरुण - पहञ्जणहों । तहों एम कहिज्जहों लक्खणहों ॥८॥

घत्ता

वुच्चइ धीय महीहरहों दीहर-करहों वणमाल-णाम भय-वज्जिय ।
लक्खण-पइ सुमरन्तियऍं कन्दन्तियऍं वड-पायवें पाण विसज्जिय' ॥९॥

[७]

एम भणेप्पिणु णयण-विसालऍं । अंसुअ-पासउ किउ वणमालऍं ॥१॥
सो ज्जें णाइँ सइँ मम्भीसावइ । णाइँ विवाह-लील दरिसावइ ॥२॥
णं दियवरु दाणहों हक्कारिउ । णाइँ कुमारें हत्थु पसारिउ ॥३॥
गलें लाऍवि हल्लावइ जावेंहिँ । कण्ठें धरियालिङ्गॅवि तावेंहिँ ॥४॥
एम पजम्पिउ मम्भीसन्तउ । 'हउँ सो लक्खणु लक्खणवन्तउ ॥५॥
दसरह-तणउ सुमित्तिऍं जायउ । रामें सहुँ वणवासहों आयउ' ॥६॥
तं णिसुणें वि विम्भाविय णिय-मणें ।'कहिँ लक्खणु कहिँ अच्छिउ उववणें' ॥७॥
ताम हलाउहु कोक्कइ लग्गउ । 'भो भो लक्खण आउ कहिं गउ' ॥८॥

वैसे ही जैसे कोई चपल रमणी, अपने जारके निकट लग जाती है ? लक्ष्मणको चाहने वाली क्रांतिमती वह वटके पेड़पर ऐसी मालूम हो रही थी मानो घनमें विजली चमक रही हो या, वनमें किलकती, कौतुक करती हुई सक्षात् भयंकर यक्षिणी हो ॥१–९॥

[६] (आत्मघातके पूर्व) उसने अपना विलाप ऐसे शुरू किया, मानो वनगज-शिशु ही चीख उठा हो। उसने कहा, "वनस्पति, गंगा नदी, जमुना, सरस्वती, ग्रह, भूत, पिशाच, व्यंतर, वनयक्ष, राक्षस, खेचर, गज, वाघ, सिंह, संवर, रत्नाकर, गिरिवर, जलधर, गण, गंधर्व, विद्याधर, सुर, सिद्ध, महोरग, किन्नर, कार्तिकेय, कुवेर, पुरन्दर, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, चन्द्र, सूर्य, ज्योतिप, वैताल, दैत्य, राक्षस, अग्नि, वरुण और प्रभंजन ! मेरे वचनोंको सुनो, तुम्हें यदि कहीं लक्ष्मण मिलें तो यह कह देना कि विशालवाहु राजा महीधरकी वनमाला नामकी लड़की, निडर हो, अपने पति लक्ष्मणके ध्यानमें रोती कलपती, हुई, गिरकर मर गई" ॥१–९॥

[७] यह कह कर विशालनयना वनमालाने कपड़ेका फन्दा वना लिया, स्वयं नहीं डरती हुई, वह मानो विवाह-लीलाका प्रदर्शन कर रही थी। मानो द्विजवरने कन्यादानके लिए उसे पुकारा हो और कुमार (वर) ने हाथ फैला दिया हो। वह, गलेमें फन्दा लगा ही रही थी कि इतनेमें कुमार लक्ष्मणने गलेसे पकड़कर उसका आलिंगन कर लिया और यह कहा, "डरो मत ! मैं ही वह सुलक्षण लक्ष्मण हूँ ! दशरथका सुमित्रासे उत्पन्न पुत्र मैं, रामके साथ वनवासके लिए आया हूँ।" यह सुनकर आश्चर्यचकित हो वनमाला अपने मनमें सोचने लगी, "अरे लक्ष्मण कहाँ, वह तो उपवनमें है।' इतनेमें, रामने पुकारा,—"ओ लक्ष्मण, इधर आओ,

घत्ता

तं णिसुणेंवि महिहर-सुअएँ पुलइय-भुअएँ णड्डु जिह णच्चाविउ णिय-मणु ।
'सहल मणोरह अज्जु महु परिहूउ सुहु(?) भत्तारु लद्धु जं लक्खणु' ॥९॥

[८]

तो एत्थन्तरें भुवणाणन्दें । दिट्ठु जणद्दणु राहवचन्दें ॥१॥
णावइ तसु दीवय-सिह-सहियउ । णावइ जलहरु विज्जु-पगहियउ ॥२॥
णावइ करि करिणिहें आसत्तउ । चलणेंहिं पडिउ वलहों स-कलत्तउ ॥३॥
'चारु चारु भो णयणाणन्दण । कहिँ पइँ कण्ण लद्ध रिउमद्दण' ॥४॥
वुत्तु कुमारें 'विज्ज व सगुणिय । धरणीधरहों धीय किं ण मुणिय ॥५॥
जा महु पुव्वयण्ण-उवदिट्ठी । सा वणमाल एह वणें दिट्ठी' ॥६॥
हरि अप्फालइ जाव कहाणउ । ताम रत्ति गय विमलु विहाणउ ॥७॥
सुहड विउद्ध कुद्ध जस-लुद्धा । 'केण वि लइय कण्ण' सण्णद्धा ॥८॥

घत्ता

ताव णिहालिय दुज्जएँहिँ पुणु रह-गएँहिँ चाउद्दिसु चवल-तुरङ्गेंहिँ ।
वेढिय रणउहेँ वे वि जण वल-महुमहण पञ्चाणण जेम कुरङ्गेंहिँ ॥९॥

[९]

अब्भिट्टु सेण्णु कलयलु करन्तु । 'जिह लइय कण्ण तिह हणु' भणन्तु ॥१॥
तं वयणु सुणेप्पिणु हरि पलित्तु । उद्धाइउ सिहि णं घिएँण सित्तु ॥२॥
एक्कल्लउ लक्खणु वलु अणन्तु । आलग्गु तो वि तिण-समु गणन्तु ॥३॥
परिसक्कइ थक्कइ चलइ वलइ । तरुवर उम्मूलेंवि सेण्णु दलइ ॥४॥

कहाँ चले गये ?"। यह सुनकर महीधर राजाकी पुत्री, पुलकित वाहु वनमालाने नटकी तरह अपना मन नचाते हुए कहा,—"आज मेरे सभी मनोरथ सफल हो गये, कि जो मुझे लक्ष्मण जैसा पति मिल गया ॥१-६॥

[८] तदनन्तर, भुवनानंददायक राघवचन्द्रने लक्ष्मणको वन-मालाके साथ आते हुए देखा। वह ऐसा लग रहा था मानो दीप-शिखा तमके साथ हो, या बिजली मेघके, या हथिनीमें आसक्त गजराज हो। अपनी पत्नी वनमालासहित वह रामके चरणोंमें गिर पड़ा। रामने तब उससे पूछा, अरे प्रिय लक्ष्मण,...सुन्दर-सुन्दर यह कन्यारत्न तुमने कहाँ प्राप्त किया।" (यह सुनकर) कुमारने उत्तर दिया—"क्या आप महीधर राजाकी गुणवती पुत्री विद्याधरी वनमालाको नहीं जानते"। वह मुझे पहले ही निर्दिष्ट कर दी गई थी। वही मुझे (अचानक) इस वनमें दीख गई।" इस प्रकार कुमार लक्ष्मणके पूरी कहानी बताते-बताते ही (पहले ही) रात्रि समाप्त हो गई और निर्मल प्रभात हो गया। इधर (उपवनमें) कन्याको न पाकर, यशलोलुप रक्षक सैनिक विरुद्ध हो उठे। वे कहने लगे "कन्याका हरण किसने किया।" तब रणमें दुर्जेय सैनिकोंने चपल अश्व, रथ और गजोंसे युद्ध क्षेत्रमें दोनों (राम लक्ष्मण) को इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार हरिण सिंहको घेर लें ॥१-६॥

[६] कलकल करती हुई सेना उठी, और यह चिल्लाने लगी, "जिसने कन्या ली हो उसे मारो" यह सुनकर लक्ष्मण प्रदीप्त हो उठा। मानो घी पड़नेसे आग ही भड़क उठी हो। सेना असंख्य थी और लक्ष्मण अकेला। तब भी उसे तिनकेके समान समझकर वह भिड़ गया। वह ठहरता, चलता, मुड़ता, पेड़ उखाड़

उव्वडइ भिडइ पाडइ तुरङ्ग । महि कमइ भमइ भामइ रहङ्ग ॥५॥
अवगाहइ साहइ धरइ जोह । दलवट्टइ लोट्टइ गयवरोह ॥६॥
विणिवाइय घाइय सुहड-थट्ट । कडुआविय विवरामुह पयट्ट ॥७॥
णासन्ति के वि जे समरें चुक्क । कायर-णर-कर-पहरणइँ मुक्क ॥८॥

घत्ता

गम्पिणु कहिउ महीहरहों 'एक्कहों णरहों आवट्टु सेण्णु भुव-दण्डएँ ।
जिम णासहि जिम भिडु समरें विहिँ एक्कु करें वणमाल लइय बलिमण्डएँ' ॥९॥

[१०]

तं वयणु सुणेप्पिणु थरहरन्तु । धरणीधरु धाइउ विप्फुरन्तु ॥१॥
आरूढु महारहें दिण्णु सङ्खु । सण्णद्धु कुद्धु जय-लच्छि-कङ्खु ॥२॥
तो दुज्जय दुद्धर दुण्णिवार । 'हणु हणु' भणन्त णिग्गय कुमार ॥३॥
वणमाल - कुसुम - कल्लाणमाल । जयमाल - सुमाल - सुवण्णमाल ॥४॥
गोपाल-पाल इय अट्ठ भाइ । सहुँ राएं णव गह कुइय णाइँ ॥५॥
एत्थन्तरें रणें वहु-मच्छरेण । हक्कारिउ लक्खणु महिहरेण ॥६॥
'वलु वलु समरङ्गणें देहि जुज्झु । णिय-णासु गोत्तु कहें कवणु तुज्झु' ॥७॥
तं णिसुणेंवि वोल्लिउ लच्छि-गेहु । 'कुल-णामहों अवसरु कवणु एहु ॥८॥

घत्ता

पहरु पहरु जं पइँ गुणिउ किण्ण वि मुणिउ जसु भाइ महन्तउ रामु ।
रहुकुल-णन्दणु लच्छि-हरु तउ जीवहरु णरवइ महु लक्खणु णामु' ॥९॥

[११]

कुलु णासु कहिउ जं सिरिहरेण । धणु वत्तेंवि मद्दिहँ महीहरेण ॥१॥

कर शत्रुओंका दलन करता, उछलता, भिड़ता, घोड़ोंको गिराता, धरतीको चॉपता, चक्रको घुमाता, अवगाहन करता, सहता, योधाओंको पकड़ता, गजसमूहको दलकर लोट पोट करता हुआ (दीख पड़ा)। आघातसे उसने सुभट-समूहको गिरा दिया। पीड़ित होकर वे पराङ्मुख हो गये। कितने ही मारे गये, और कितने ही कायर योधा चूककर, उसके खर-प्रहारसे वच गये। तब किसीने राजा महीधरसे जाकर कहा,—"एक नरने अपने भुजदण्डसे समूची सेनाको रोक लिया है, जिस तरह हो युद्धमें भिड़कर उसे नष्ट कीजिये। भाग्यसे वह एक हाथमें बलपूर्वक वनमालाको लिये है" ॥ १-९ ॥

[१०] यह सुनकर राजा महीधर क्रोधसे थर्रा उठा। वह तमतमाता हुआ दौड़ा। महारथ पर आरूढ़ होकर उसने शंख बजवा दिया, इस प्रकार क्रुद्ध और विजय-लक्ष्मीका आकांक्षी वह संनद्ध हो गया। तब उसके दुर्जेय दुर्वार कुमार भी "मारो-मारो' कहते हुए निकल पड़े। इस तरह, वनमाल कुसुम कल्याणमाल जयमाल सुकुमाल सुवर्णमाल गोपाल और पाल ये आठ भाई तथा राजा, कुल मिलाकर नौ ही लोग क्रुद्ध हो उठे। ईर्ष्यासे भरकर महीधरने लक्ष्मणको ललकारते हुए कहा,—"मुड़ो मुड़ो, युद्धमें लड़ो, बताओ तुम्हारा नाम गोत्र क्या है।" इसपर लक्ष्मणने उत्तर दिया, "कुल नाम पूछनेका यह कौन अवसर है। प्रहार करो जो तुमने सोचा है। कुछ भी समझ सकते हैं मुझे। जिसका राम सा महान् भाई है। मैं रघुकुलका पुत्र लक्ष्मीका धारक और तुम्हारा अन्त करनेवाला हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है" ॥ १-९ ॥

[११] लक्ष्मणके अपने कुल गोत्रका नाम बताते ही महीधरने धनुष-बाण फेंककर स्नेहोचित अपने विशाल बाहुओंमें (गजशुण्डकी

सुरकरि-कर-सम - भुअ - पञ्जरेण । अवरुण्डिउ णेह-महाभरेण ॥२॥
हवि सक्खिकरेंवि अपरायणासु । सइँ दिण्ण कण्ण णारायणासु ॥३॥
आरूढु महीहरु एक्क-रहेँ । अट्ठ वि कुमार अण्णेक्क-रहेँ ॥४॥
वणमाल स-लक्खण एक्करहेँ । थिय स-वल सीय अण्णेक्क-रहेँ ॥५॥
पडु - पडह - सङ्ख - वद्धावणेहिँ । णच्चन्तेंहिँ खुज्जय-वामणेहिँ ॥६॥
उच्छाहेंहिँ धवलेंहिँ मङ्गलेहिँ । कंसालेंहिँ तालेंहिँ मद्दलेहिँ ॥७॥
आणन्दें णयरेँ पइट्ठाइँ । लीलएँ अत्थाणेँ वइट्ठाइँ ॥८॥

घत्ता

महुँ वणमालएँ महुमहणु परितुट्ठ-मणु जं वेइहेँ जन्तु पदीसिउ ।
लोएँहिँ मङ्गलु गन्तएँहिँ णच्चन्तएँहिँ जिणु जम्मणेँ जिह स इँ भू सिउ ॥९॥

[३०. तीसमो संधि]

तहिँ अवसरेँ आणन्द-भरेँ उच्छाह-करेँ जयकारहोँ कारणेँ णिक्किउ ।
भरहहोँ उप्परि उच्चलिउ रहमुच्छलिउ णरु णन्दावत्त-णराहिउ ॥

[१]

जो भरहहोँ दूउ विसज्जियउ । आइउ सन्माण-विवज्जयउ ॥१॥
लहु णन्दावत्त-णराहिवहोँ । वज्जरिउ अणन्तवीर-णिवहोँ ॥२॥
'हउँ पेक्खु केम विच्छारियउ । सिरु मुण्डेंवि कह वि ण मारियउ ॥३॥
सो भरहु ण इच्छइ सन्धि रणेँ । जं जाणहोँ तं चिन्तवहोँ मणेँ ॥४॥
अण्णु वि उवखन्धे आइयउ । सहुँ सेण्णें विञ्झु पराइयउ ॥५॥
तहिँ णरवइ वालिखिल्लु वलिउ । सीहोयरु वज्जयण्णु मिलिउ ॥६॥

तरह प्रचण्ड) (भरकर) उसे गलेसे लगा लिया। उसने अग्निकी साक्षी (मानकर) अपनी कन्या वनमाला अपराजितकुमार लक्ष्मणको अर्पित कर दी। बादमें राजा महीधर एक रथपर बैठ गया। वनमाला और लक्ष्मण एक रथ पर और सीता और राम दूसरे पर। चलकर जब उन्होंने नगरमें प्रवेश किया तो पट-पटह शंख तथा तरह-तरहके वाद्य बज उठे। कुब्ज ब्राह्मण नाच रहे थे। कंसाल ताल और मर्दल की उत्साह और मंगलपूर्ण ध्वनि हो रही थी। वे लोग लीला पूर्वक दरबारमें जा बैठे ॥१-८॥

वनमालाके साथ वेदीपर जाता हुआ संतुष्ट मन लक्ष्मण ऐसा मालूम हो रहा था मानो जन्मके अवसर पर, लोगोंने गाते बजाते हुए, जिनको विभूषित कर दिया हो ॥९॥

०

तीसवीं संधि

आनन्द और उत्साहसे परिपूर्ण इसी अवसरपर, निर्दय नन्दावर्तके राजा अनन्तवीर्यने, हर्षसे भरकर जय पानेके लिए राजा भरतके ऊपर चढ़ाई कर दी।

[१] उसने भरतके पास जो अपना दूत भेजा था वह अपमानित होकर वापस आ गया। शीघ्र उसने नन्दावर्तके राजा अनन्तवीर्यसे कहा—"देखिये मेरी कैसी दुर्गति की, मेरा सिर मुड़वा दिया, किसी तरह मारा भर नहीं है, वह भरत राजा युद्धमें सन्धि नहीं चाहता, अब जो जानो वह मनमें सोच लो, एक और आपका वैरी आया है वह सेनाके साथ विंध्याचल तक पहुँच गया है। वहाँ नरपति वालिखिल्य सिंहोदर

तहिँ रुद्दभुत्ति सिरिवच्छ-धरु । मरुभुत्ति सुभुत्ति विभुत्ति-करु ॥७॥
अवरेहि मि समउ समावडिउ । पेक्खेसहि कल्लएँ अब्भिडिउ' ॥८॥

घत्ता

ताम अणन्तवीरु खुहिउ पइजारुहिउ 'जइ कल्लएँ भरहु ण मारमि ।
तो अरहन्त-भडाराहोँ सुर-साराहोँ णउ चलण-जुवलु जयकारमि' ॥९॥

[२]

पइजारूढु णराहिउ जावेंहिँ । साहणु मिलिउ असेसु वि तावेंहिँ ॥१॥
लेहु लिहेप्पिणु जग-विक्खायहोँ । तुरिउ विसज्जिउ महिहर-रायहोँ ॥२॥
अग्गएँ थिउ वद्धु लम्पिक्कु व । हरिणक्खरहिँ लोणु पण्डिक्कु व ॥३॥
सुन्दरु पत्तवन्तु वर-साहु व । णाव-वहुलु सरि-गङ्ग-पवाहु व ॥४॥
दिट्ठ राय तहिँ आय अणन्त वि । सल्ल-विसल्ल - सीहविक्कन्त वि ॥५॥
दुज्जय-अजय-विजय - जय-जयमुह । णरसद्दूल - विउल-गय - गयमुह ॥६॥
रुद्दवच्छु - महिवच्छु - महद्धय । चन्दण - चन्दोयर - गरुडद्धय ॥७॥
केसरि - मारिचण्डु - जमघण्टा । कोङ्कण - मलय - पण्डियाणट्टा ॥८॥
गुज्जर - गङ्ग - वङ्ग - मङ्गाला । पइविय - पारियत्त - पञ्चाला ॥९॥
सिन्धव - कामरूव - गम्भीरा । तज्जिय - पारसीय - परतीरा ॥१०॥
मरु - कण्णाड - लाड - जालन्धर । टक्काहीर - कीर - खस - वव्वर ॥११॥
अवर वि जे एक्केक्क-पहाणा । केण गणेप्पिणु सक्किय राणा ॥१२॥

और वज्रकर्ण भी मिल गये हैं। रुद्रभूति श्रीवत्सधर मरुभूति सुभुक्ति विभुक्तिकर आदि दूसरे राजा भी आकर उससे मिल गये हैं। अब समय आ गया है, देखिएगा ही युद्ध होगा।" यह सुनकर अनन्तवीर्य एकदम क्षुब्ध हो गया, और उसने प्रतिज्ञा की "यदि मैं कल तक भरतका हनन न करूँ तो सुरश्रेष्ठ भट्टारक अरहंतके चरण-कमलकी जय न बोलूँ" ॥१-९॥

[२] इस प्रकार अनन्तवीर्य जब प्रतिज्ञा कर रहा था तभी अशेष सेना उससे आ मिली। तब उसने तुरन्त ही एक लेखपत्र लिखवाकर विश्वविख्यात राजा महीधरके पास भी भेजा। वाहकने वह पत्र लाकर महीधरके सम्मुख डाल दिया। वह लेखपत्र चोर की तरह बँधा हुआ, व्याधकी तरह शाडिक्क (चितकबरे मृगचर्म और चितकबरे अक्षरों) से सहित, उत्तम साधुके समान सुन्दर पत्र वाला (पात्रता और पत्ता), गंगाके प्रवाह की भाँति (नाम और नावोंसे सहित) नावालऊ' था। उस लेख पत्रको पढ़ते ही, बहुतसे राजा अनन्तवीर्यके यहाँ पहुँचने लगे। शल्य, विशल्य, सिंहविक्रांत, दुर्जय, अज, विजय, नरशार्दूल, विपुलगज, गजमुख, रुद्रवत्स, महिवत्स, महाध्वज, चन्दन, चन्द्रोदर, गरुड़ध्वज, केशरी, मारिचण्ड, यमघण्ट, कोंकण, मलय, आनर्त, गुर्जर, गंग, वंग, मंगाल, पइवई ? पारियात्र, पांचाल, सैंधव, कामरूप, गंभीर, तर्जित, पारसीक, परतीर, मरु, कर्णाटक, लाट, जालंधर, टक्क, आभीर, कीरखस, वर्वर, आदि (के) राजा, उनमेंसे प्रमुख थे। और भी जो दूसरे एकाकी प्रमुख राजा थे उन्हें कौन गिना सकता है। तब श्यामवर्ण राजा महीधर सहसा उन्मन हो उठा। मानो उसके सिरपर वज्र गिर पड़ा हो। उसके सिरपर यह चिन्ता सवार

घत्ता

ताम णराहिउ कसण-तणु थिउ विमण-मणु णं पडिउ सिरत्थलेँ वज्जु ।
'किह सामिय-सम्माण-भरु विसहिउ दुद्धरु किह भरहहोँ पहरिउ अज्जु' ॥१३॥

[३]

ज णरवइ मणेँ चिन्तावियउ । हलहरु एक्कन्त-पक्खेँ थियउ ॥१॥
अट्ठ वि कुमार कोक्किय खणेँण । वइदेहि आय सहुँ लक्खणेँण ॥२॥
मेल्लेप्पिणु मन्तिउ मन्तणउ । वलु भणइ 'म दरिसहोँ अप्पणउ ॥३॥
रह-तुरय-महागय परिहरेँवि । तिय-चारण-गायण-वेसु करेँवि ॥४॥
तं रिउ-अत्थाणु पईसरहोँ । णच्चन्त अणन्तवीरु धरहोँ' ॥५॥
तं वयणु सुणेँवि परितुट्ठ-मण । थिय कामिणि-वेस कियाहिरण ॥६॥
वलएवेँ जोइउ पिय-वयणु । किं होइ ण होइ वेस-गहणु ॥७॥
'लइ सुन्दरि ताव तिट्ठ णयरेँ । अम्हेँहिँ पुणु जुज्झेवउ समरेँ' ॥८॥

घत्ता

लग्ग कडच्छएँ जणय-सुय कण्टइय-भुय 'लहु णरवर-णाह ण एसहि ।
मइँ मेल्लेँवि भासुरएँ रण-सासुरएँ मा कित्ति-वहुअ परिणेसहि' ॥९॥

[४]

खेड्डु करेँवि संचल्ल महाइय । णिविसेँ णन्दावत्तु पराइय ॥१॥
दिट्ठु जिणालउ खणेँ परिअञ्चेँवि । अग्गएँ गाएँवि वाएँवि णच्चेँवि ॥२॥
सीय ठवेँवि पइट्ठ पुर-सरवरेँ । रहवर - तुरय-महागय - जलयरेँ ॥३॥
देउल - वहल - धवल-कमलायरेँ । णन्दणवण - घण-तीर - लयाहरेँ ॥४॥
चारु-विलासिणि-णलिणि-करम्बिएँ । छप्पण्णय-छप्पय - परिचुम्बिएँ ॥५॥

थी कि मैं अब स्वामीके सम्मान-भारको कैसे निभाऊँ और राजा भरतकी किस प्रकार रक्षा करूँ ॥१-१३॥

[३] राजा महीधरको मन ही मन चिन्तित देखकर राम एकांतमें जाकर बैठ गये। एक ही क्षणमें उन्होंने महीधरके आठों कुमारोंको बुलवा लिया। लक्ष्मण सहित सीता देवी भी आ गईं। तब मन्त्रियों और मन्त्रणाको छोड़कर रामने कहा—"अपने आपको प्रकट मत करो। गज, अश्व और महागजको छोड़कर, स्त्री भाट और गायकका वेष बनाकर शत्रुके दरबारमें घुस पड़ो और नाचते हुए अनन्तवीर्यको पकड़ लो।" यह वचन सुनकर संतुष्ट मन उन लोगोंने स्त्रीका वेप बना लिया और गहने पहन लिये। तब रामने सीता देवीसे कहा, "शायद तुमसे यह रूप धारण करते बने या न बने, इसलिए तुम तब तक इसी नगरमें रहना, हम युद्ध में जाकर लड़ेंगे।" परन्तु पुलकितबाहु सीतादेवी कुछ तिरछी देखकर उनके साथ हो लीं। वह बोली—"हे नरनाथ! तुम शीघ्र नहीं लौटोगे; क्या पता कहीं तुम युद्ध रूपी ससुरालमें चमक-दमक वाली कीर्ति-वधूसे विवाह न कर लो" ॥१-६॥

[४] तब महनीय वे लोग खेल करते हुए चले और पल भरमें ही नन्दावर्त नगरमें पहुँच गये। उन्हें (पहले) एक जिनालय दीख पड़ा। तब उसके सम्मुख गा बजा और नाचकर उन लोगोंने उसी मन्दिरकी परिक्रमा दी। फिर सीतादेवीको वहीं छोड़ राम लक्ष्मण आदिने नगरमें प्रवेश किया। उस नगर रूप सरोवरमें प्रचुर देवकुल रूपी कमलाकर थे। रथ श्रेष्ठ अश्व और गजरूपी जलचर भरे थे। नन्दन वन ही, उसके तटवर्ती घने लतागृह थे। सुन्दर विलासिनीरूपी कमलिनियोंसे वह नगर सरोवर अंचित था। और विटरूपी भ्रमरोंसे चुम्बित। उसमें जनरूपी निर्मल जल

सज्जण-णिम्मल - सलिलालङ्किएँ । पिसुण-वयण-घण - पङ्कप्पङ्किएँ ॥६॥
कामिणि-चल-मण - मच्छुत्थल्लिएँ । णरवर-हंस-सएहिँ अमेल्लिएँ ॥७॥
तहिँ तेहएँ पुर-सरवरेँ दुज्जय । लीलएँ णाइँ पइट्ठ दिसागय ॥८॥

घत्ता

कामिणि-वेस कियाहरण विहसिय-वयण गय पत्त तेत्थु पडिहारु ।
वुच्चइ 'आयइँ चारणाइँ भरहहाँ तणइँ जिव कहेँ जिव देहु पइसारु' ॥९॥

[५]

तं वयणु सुणेँवि पडिहारु गउ । विण्णत्तु णराहिउ रणेँ अजउ ॥१॥
'पहु एत्तइँ गायण आयाइँ । फुडु माणुस-मेत्तेँण जायाइँ ॥२॥
णउ जाणहुँ किं विज्जाहरइँ । किं गन्धव्वइँ किं किण्णरइँ ॥३॥
अइ-सुसरइँ जण-मण-मोहणइँ । मुणिवरहु मि मण-संखोहणइँ ॥४॥
तं वयणु सुणेवि णराहिवेँण । 'दे दे पइसारु' वुत्तु णिवेँण ॥५॥
पडिहारु पधाइउ तुट्ठ-मणु । 'पइसरहोँ' भणन्तु कण्टइय-तणु ॥६॥
तं वयणु सुणेवि समुच्चलिय । णं दस दिसि-वह एक्कहिँ मिलिय ॥७॥

घत्ता

पइठ णरिन्दत्थाण-वणेँ रिउ-रुक्ख-घणेँ सिंहासण-गिरिवर-मण्डिएँ ।
पोढ-विलासिणि-लय-वहलेँ वर-वेल्लहलेँ अइ-वीर-सीह-परिचड्डिएँ ॥८॥

[६]

तहिँ तेहएँ रिउ-अत्थाण-वणेँ । पञ्चाणण जेम पइट्ठ खणेँ ॥१॥
णन्दियउ-णराहिउ दिट्ठु किह । णक्खत्तहँ मज्झेँ मियङ्कु जिह ॥२॥

भरा था, और जो चुगलखोरोंकी वाणीरूपी कीचड़से पंकिल था। कामिनियोंकी चञ्चल मनरूपी मछलियाँ उसमें उथल-पुथल कर रही थीं। उत्तम नररूपी हंस उस नगर-सरोवरका कभी भी त्याग नहीं करते थे। इस प्रकारके उस अजेय नगररूपी सरोवरमें, दिग्गजोंकी भाँति लीला करते हुए उन लोगोंने प्रवेश किया ॥१-८॥

स्रीका वेप बनाकर और आभरण पहनकर, हँसी मजाक करते जब वे चले तो (पहले) उन्हें प्रतिहार मिला। उनमेंसे एकने कहा,—"हम राजा भरतके चारण हैं, अपने राजासे इस तरह कहो कि जिससे हमें (दरबार) में प्रवेश मिल जाय" ॥ ६ ॥

[५] यह वचन सुनकर प्रतिहार गया। और उसने अजेय राजा प्रतिहारसे निवेदन किया, "प्रभु! कुछ गाने-बजानेवाले आये हैं। वैसे तो वे मनुष्य रूपमें हैं, पर मैं नहीं कह सकता कि वे गंधर्व हैं या किन्नर, या विद्याधर। जन-मन-मोहक उनके स्वर अत्यन्त सुन्दर मुनियोंके मनको भी लुब्ध करनेवाले हैं।" यह सुनकर राजाने कहा,—"शीघ्र भीतर ले आओ।" तब तुष्टमन प्रतिहार दौड़ा-दौड़ा बाहर गया और पुलकित होकर उनसे बोला, "चलिए भीतर।" उसके वचन सुनकर वे लोग भीतर गये। मानो दशों दिशापथ एक ही में मिल गये हों। वे उस दरबार रूपी वनमें प्रविष्ट हुए। वह शत्रुरूपी वृक्षोंसे सघन, सिंहासनरूपी पहाड़ोंसे मण्डित और प्रौढ़ विलासिनीरूपी लताओंसे प्रचुर, अनन्तवीर्य-रूपी बेलफलसे युक्त, और अतिवीररूपी सिंहोंसे चित्रित था ॥ १-८ ॥

[६] उस शत्रुके दरबाररूपी वनमें वे लोग सिंहकी भाँति घुसे। नन्दावर्तका राजा अनन्तवीर्य उन्हें ऐसा दीख पड़ा, मानो तारोंसे सहित चन्द्र हो। उसके आगे उन्होंने अपना प्रदर्शन

आरम्भिउ अग्गएँ पेक्खणउ । सुकलत्तु व सवलु सलक्खणउ ॥३॥
सुरयं पिव वन्ध-करण-पवरु । कव्वं पिव छन्द-सद्द-गहिरु ॥४॥
रण्णं पिव वंस-ताल-सहिउ । जुज्झं पिव राय-सेय-सहिउ ॥५॥
जिह जिह उव्वेल्लइ हल-वहणु । तिह तिह अप्पाणु णवेइ जणु ॥६॥
मयरद्धय - सर - संखोहियउ । मिग-णिवहु व गेएं मोहियउ ॥७॥
वलु पढइ अणन्तवीरु सुणइ । 'को सीहें समउ केलि कुणइ ॥८॥

घत्ता

जाम ण रणमुहें उत्थरइ पहरणु धरइ पइँ जीवगाहु सहुँ राएँहिं ।
ताम अयाण मुएवि छलु परिहरें वि वलु पडु भरह-णरिन्दहों पाएँहिं' ॥९॥

[७]

राहवचन्दु मणेण ण कम्पिउ । पुणु पुणरुत्तेंहिं एव पजम्पिउ ॥१॥
'भो भो णरवइ भरहु णमन्तहुँ । कवणु पराहउ किर अणुणन्तहुँ ॥२॥
जो पर-वल समुद्दें महणायइ । जो पर-वल-मियङ्कें गहणायइ ॥३॥
जो पर-वल-गयणेंहिं चन्दायइ । जो पर-वल-गइन्दें सीहायइ ॥४॥
जो पर-वल-रयणिहिं हंसायइ । जो पर-वल-तुरङ्गें महिंसायइ ॥५॥
जो पर-वल-भुयङ्गें गरुडायइ । जो पर-वल-वणोहें जलणायइ ॥६॥
जो पर-वल-घणोहें पवणायइ । जो पर-वल-पवणोहें धरायइ ॥७॥
। जो पर-वल-धरोहें वज्जायइ' ॥८॥

प्रारम्भ कर दिया। उनका वह प्रदर्शन, अच्छी स्त्रीकी तरह सवल (अंगवल, और रामसे सहित) और सलक्खन [लक्षण और लक्ष्मण सहित] था। सुरतिके समान वंधकरणमें प्रवल, काव्यकी तरह छन्द और शब्दोंमें गंभीर, अरण्यकी तरह [वंश और ताल] से भरपूर, युद्धकी तरह [राजा और प्रस्वेद, तथा कुंकुम और प्रस्वेद] से युक्त था। राम जैसे-जैसे उद्वेलित होते, श्रोता लोग वैसे-वैसे झुकते जाते। कामके वाणोंसे क्षुब्ध होकर मृगसमूहकी तरह, वे गानसे मुग्ध हो उठे। तब अनन्तवीर्यने रामको यह गाते हुए सुना, "सिंहके साथ क्रीड़ा कौन कर सकता है, जब तक वह (भरत) रणमुखमें नहीं उछलता, आयुध नहीं उठाता और दूसरे राजाओंके साथ तुम्हें जीवित नहीं पकड़ता, तब तक हे मूर्ख, सब छल प्रपंच छोड़कर और अपनी सेना हटाकर भरत राजाके चरणोंमें गिर जा" ॥१-६॥

[७] रामचन्द्र जरा भी नहीं काँपे, वार-वार वह यही दुहरा रहे थे, "अरे राजन्, भरतको राजा मानकर, उनकी आज्ञा माननेमें तुम्हारा क्या पराभव है? वह भरत शत्रुरूपी सेनासमुद्रके लिए मेरुमंथनकी तरह है। जो शत्रु सेनारूपी चन्द्रके लिए राहुके समान है, जो शत्रुसेनारूपी आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति चमकता है, जो शत्रुरूपी गजराजके लिए सिंह है, शत्रुवलरूपी निशाके लिए सूर्यहै, शत्रुवलरूपी वनके लिए दावानल है। परवलरूपी अश्वके लिए महिषके समान है। परवलरूपी सर्पके लिए जो गरुड़ है। परवलरूपी मेघसमूहके लिए पवनका आघात है। परवलरूपी पवनसमूहके लिए पर्वत है। और परवलरूपी पर्वतसमूहके लिए वज्रकी तरह है।" यह सुनकर अनन्त

घत्ता

तं णिसुणेवि विरुद्धएँ ण मणें कुद्धएँ ण अइवीरें अहर-फुरन्तें ।
रत्तुप्पल-दल-लोयणेंण जग-भोयणेंण णं किउ अवलोउ कियन्तें ॥६॥

[८]

भय-भीसणु अमरिस-कुइय-देहु । गज्जन्तु समुट्ठिउ जेम मेहु ॥१॥
करें असिवरु लेइ ण लेइ जाम । णहँ उड्डेंवि रामें धरिउ ताम ॥२॥
सिरें पाउ देवि चोरु व णिवद्धु । णं वारणु वारि-णिवन्धें छुद्धु ॥३॥
रिउ चम्पेंवि पर-वल-मद्दयवट्टु । जिण-भवणहों सम्मुहु वलु पयट्टु ॥४॥
एत्थन्तरें महुमहणेण वुत्तु । 'जो ढुक्कइ तं मारमि णिरुत्तु' ॥५॥
तं सुणेंवि परोप्परु रिउ चवन्ति । 'किं एय परक्कम तियहँ होन्ति' ॥६॥
एत्तडिय वोल्ल पडिवक्खें जाम । णर दस वि जिणालउ पत्त ताम ॥७॥
जे गिलिय आसि पुर-रक्खसेण । णं मुक्क पईवा भय-वसेण ॥८॥

घत्ता

तावन्तेउरु विमण-मणु गय-गइ-गमणु वहु-हार-दोर-खुप्पन्तउ ।
आयउ पासु जियाहवहों तहों राहवहों 'दे दइय-भिक्ख' मग्गन्तउ ॥९॥

[९]

जं एव वुत्तु वणियायणेण । पहु पभणिउ दसरह-णन्दणेण ॥१॥
'जइ भरहहों होहि सुभिच्चु अज्जु । तो अज्जु वि लइ अप्पणउ रज्जु' ॥२॥
तं वयणु सुणेंवि परलोय-भीरु । विहसेप्पिणु भणइ अणन्तवीरु ॥३॥
'पाडेवउ जो चलणेहिँ णिच्चु । तहों केम पडीवउ होमि भिच्चु ॥४॥
वलिमण्डएँ तव-चरणेण जो वि । पाडेवउ पायहिँ भरहु तो वि' ॥५॥
तं वयणु सुणेप्पिणु तुट्ठु रामु । 'सच्चउ जें तुज्झु अइवीरु णामु ॥६॥
पुणरुत्तेंहिँ वुच्चइ 'साहु साहु' । हक्कारिउ तहों सुउ सहसवाहु ॥७॥

वीर्य अपने मनमें भड़क उठा। अपने ओंठ चबाने लगा। उसने लाल-लाल आँखोंसे ऐसे देखा मानो जगसंहारक कृतान्तने ही देखा हो ॥१-६॥

[८] भयभीषण और अमर्षसे क्रुद्ध कलेवर वह मेघकी भाँति गरज उठा। वह अपनी तलवार हाथमें ले या न ले, इतनेमें रामने उछलकर (आकाशमें) उसे पकड़ लिया। उसके सिरपर पैर रखकर चोरकी तरह ऐसे बाँध लिया मानो हाथीकी पाली बनाकर जलको बाँध लिया हो। तब शत्रुसेना-संहारक राम अनन्तवीर्यको बाँधकर जिन-मन्दिर पहुँचे। लक्ष्मणने इतनेमें कहा, "जो इधर आयगा निश्चय ही मैं उसे मारूँगा।" यह सुनकर शत्रु लोग आपसमें बात करने लगे, "क्या स्त्रियोंमें इतना पराक्रम हो सकता है"। इस तरहकी बातें उनमें हो ही रही थीं कि शेष जन भी उस जिन-मंदिरमें, ऐसे आ पहुँचे मानो पहले जिन्हें पुररक्षकने पकड़ लिया था परन्तु बादमें मारे डरके छोड़ दिया हो। इसी बीच अनन्तवीर्यका अन्तःपुर युद्धविजेता रामके पास आया। विमन, गजगामी वह प्रचुर हार डोरसे स्खलित हो रहा था। वह यह याचना कर रहा था कि "पतिकी भीख दो"॥१-६॥

[६] स्त्रीजनकी इस प्रार्थनापर दशरथपुत्र रामने कहा, "यदि यह भरतका अनुचर बन जाय तो वह आज ही अपना राज्य पा सकता है।" यह सुनकर परलोकभीरु अनन्तवीर्य बोला, "अरे जो जिन सदैव अपने चरणोंमें डाले रहेगा उसे छोड़कर मैं और किसका अनुचर बनूँ। प्रत्युत मैं तपश्चरण कर, भरतको ही बलपूर्वक अपने पैरों पर झुकाऊँगा।" यह सुनकर रामने कहा "सचमुच तुम्हारा अनन्तवीर्य नाम सच है। उन्होंने यही दुहराया, "साधु साधु"। बादमें उसके पुत्र सहस्रबाहुको बुला उसे

सो णिय संताणहों रहुउ राउ । अण्णु वि भरहहों पाइक्कु जाउ ॥८॥

घत्ता

रिउ मेल्लेप्पिणु दस वि जण गय तुट्ट-मण णिय-णयरु पराइय जावेंहिं ।
णन्दावत्त-णराहिवइ जिणें करेंवि मइ दिक्खहें समुट्ठिउ तावेंहिं ॥९॥

[१०]

एत्थन्तरें पुर-परमेसराहँ । दिक्खाएँ समुट्ठिउ सउ णराहँ ॥१॥
सद्दूल - विउल - वरवीरभद्द । मुणिभद्द - सुभद्द - समन्तभद्द ॥२॥
गरुडद्धय - मयरद्धय - पचण्ड । चन्दण - चन्दोयर - मारिचण्ड ॥३॥
जयघण्ट - महद्धय - चन्द - सूर । जय विजय-अजय-दुज्जय-कुकूर ॥४॥
इय एत्तिय पहु पव्वइय तेत्थु । लाहण-पच्चएँ जय-णन्दि जेत्थु ॥५॥
थिय पञ्च मुट्ठि सिरें लोउ देवि । सइँ वाहहिं आहरणइँ मुएवि ॥६॥
णीसङ्ग वि थिय रिसि-सङ्ग-सहिय । संसार वि भव-संसार-रहिय ॥७॥
णिम्माण वि जीव-सयहुँ समाण । णिग्गन्थ वि गन्थ-पयत्थ-जाण ॥८॥

घत्ता

इय एक्केक्क-पहाण रिसि भव-तिमिर-ससि तव-सूर महावय-धारा ।
छट्टट्ठम-दस-बारसेंहिं बहु-उववसेंहिं अप्पाणु खवन्ति भडारा ॥९॥

[११]

तव-चरणें परिट्ठिउ जं जि राउ । तहों वन्दण-हत्तिएँ भरहु आउ ॥१॥
तें दिट्ठु भडारउ तेय-पिण्डु । जो मोह-महीहरें वज्ज-दण्डु ॥२॥
जो कोह-हुवासणें जल-णिहाउ । जो मयण-महाघणें पलय-वाउ ॥३॥
जो दप्प-गइन्दें महा-मइन्दु । जो माण-भुअङ्गमें वर-खगिन्दु ॥४॥
सो मुणिवरु दसरह-णन्दणेण । वन्दिउ णिय-गरहण-णिन्दणेण ॥५॥
भो साहु साहु गम्भीर धीर । पइँ पूरिय पइज्जाऽणन्तवीर ॥६॥
जं पाडिउ हउँ चलणेहिँ देव । तं तिहुअणु कारावियउ सेव ॥७॥

समस्त राज्य दे दिया। इस प्रकार भरतका एक और अनुचर बढ़ गया। शत्रुको इस प्रकार मुक्त कर, वे सब अपने नगर वापस आ गये। उधर राजा महीधरने अपनी सारी आस्था जिनमें केन्द्रितकर दीक्षाके लिए कूच कर दिया ॥१-६॥

[१०] पुरपरमेश्वर महीधरके साथ और भी दूसरे राजा दीक्षाके लिए प्रस्तुत हो गये। शार्दूल, विपुल, वीरभद्र, मुनिभद्र, सुभद्र, समंतभद्र, गरुड़ध्वज, मकरध्वज, प्रचण्ड, चन्दन, चन्द्रोदर, मारिचण्ड, जयघण्ट, महाध्वज, चन्द्र, सूर, जय, विजय, अजय, दुर्जय और कुक्करने भी उसी पर्वतपर जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली जहाँ आचार्य जयनन्दी दीक्षा दान कर रहे थे। अपनी पाँच मुट्ठियोंसे केश लोंचकर सवारियोंके साथ आभूषणोंका त्याग कर, अनासंग वे सब मुनिसंघके साथ हो लिये। वे मुनिजन मानरहित होकर भी जीवोंके मानके साथ थे। और निर्ग्रन्थ होकर भी ग्रन्थोंके प्रशस्त जानकार थे। उस संघमें प्रत्येक ऋषि मुख्य थे। जो भवरूपी अन्धकारके लिए चन्द्र; तपःसूर और महाव्रतोंका धारण करनेवाले थे। वे छह, आठ और बारह तक उपवास करके अपने आपको खपाने लगे ॥१-६॥

[११] जब राजा अनन्तवीर्य तप साधने चला गया तो भरत राजा भी वहाँ उसकी वन्दना-भक्तिके लिए गया। उसने तेजके पिंड भट्टारक अनन्तवीर्यको देखा। वह, मोहरूपी महीधरके लिए प्रचण्डवज्र, क्रोधाग्निके लिए मेघसमूह, काम-महा-घनके लिए प्रलय वात, दर्पगजके लिए सिंह, मानसूर्यके लिए गरुड़ थे। मनमें अपनी निंदा करते हुए भरत वन्दनापूर्वक बोला, "साधु ! धीर वीर अनन्तवीर्य, तुमने, सचमुच अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। लो तुमने आखिर मुझे अपने चरणोंमें नत कर ही लिया। और

गउ एम पसंसेंवि भरहु राउ। णिय-णयरु पत्तु साहण-सहाउ ॥८॥

घत्ता

हरि-वल पइठ जयन्तपुरें धण-कण-पउरें जय-मङ्गल-तूर-वमालेंहिँ।
लक्खणु लक्खणवन्तियएँ णिय-पत्तियएँ अवगूढु स इं भु व-डालेंहिँ ॥९॥

[३१. एक्कतीसमो संधि]

धण-धण्ण-समिद्धहों पुहइ-पसिद्धहों जग-मण-णयणाणन्दणहों।
वण-वासहों जन्तेहिँ रामाणन्तेंहिँ किउ उम्माहउ पट्टणहो॥

[१]

छुडु छुडु उहय समागम-लुद्धइँ। रिसि-कुलइँ व परमागम-लुद्धइँ ॥१॥
छुडु छुडु अवरोप्परु अणुरत्तइँ। सञ्झ-दिवायरइँ व अणुरत्तइँ ॥२॥
छुडु छुडु अहिणव-वहु-वरइत्तइँ। सोम-पहा इव सुन्दर-चित्तइँ ॥३॥
छुडु छुडु चुम्विय-तामरसाइँ। फुल्लन्धुय इव लुद्ध-रसाइँ ॥४॥
ताम कुमारें णयण-विसाला। जन्तें आउच्छिय वणमाला ॥५॥
'हे मालूर-पवर-पीवर-थणें। कुवलय-दल - पप्फुल्लिय-लोअणें ॥६॥
हंस-गमणें गय-लील-विलासिणि। चन्द-वयणें णिय-णाम-पगासिणि ॥७॥
जामि कन्तें हउँ दाहिण-देसहों। गिरि-किक्किन्ध - णयर - उद्देसहों' ॥८॥

घत्ता

सुरवर-वरइत्तें णव-वरइत्तें जं आउच्छिय णियय धण।
ओहुल्लिय-वयणी पगलिय-णयणी थिय हेट्ठामुह विमण-मण ॥९॥

त्रिभुवनसे अपनी सेवा करा ली।" इस प्रकार उसकी प्रशंसा कर, राजा भरत सेनासहित अपने नगरको चला गया। राम और लक्ष्मणने भी जयमंगल और तूर्यध्वनिके साथ, धनकनसे भरपूर जयंतपुर नगरमें प्रवेश किया। तब लक्ष्मणकी सुलक्षणा पत्नीने अपनी भुजारूपी डालोंसे उसका आलिङ्गन किया ॥१-६॥



इकतीसवीं संधि

कुछ समयके उपरांत राम और लक्ष्मण, धन-धान्यसे सम्पन्न पृथ्वीमें सुप्रसिद्ध, जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्ददायक, उस नगरको छोड़कर वनवासके लिए कूच कर गये।

[१] इस अवसरपर लक्ष्मण वनमालासे मिलनेके लिए एकदम आतुर हो उठे। क्योंकि वे दोनों—मुनिकुलकी तरह परमागम लुब्ध (परमशास्त्र और दूसरेके आगमके लोभी) थे। एक दूसरे पर आसक्त वे दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त हो उठे। वैसे ही जैसे सूर्य और चन्द्र अनुरक्त हो उठते हैं। वे दोनों अभिनव वर-वधू चन्द्र और उसकी प्रभाकी तरह, सुन्दर चित्त थे। रक्तकमलका चुम्बन करनेवाले भ्रमरकी तरह वे दोनों रसलुब्ध हो रहे थे। जाते समय कुमार लक्ष्मणने विशालनयना वनमालासे कहा, हे हंसगामिनी गजलीला विलासिनी चन्द्रमुखी, स्वयं अपना नाम प्रसिद्ध करनेवाली वनमाले! मैं किष्किंध नगरको लक्ष्य बनाकर दक्षिण देशके लिए जा रहा हूँ"। पूतन यक्षसे वर प्राप्त करनेवाले कुमार लक्ष्मणके यह कहने पर (पूछने पर) विमना गलितनेत्र म्लानमुख, वह अपना मुख नीचा करके रह गई ॥१-६॥

[२]

कज्जल - वहलुप्पील - सणाहँ । महि पव्वालिय अंसु-पवाहँ ॥१॥
'एत्तिउ विरुवउ माणुस-लोउ । जं जर-जम्मण - मरण - विओउ' ॥२॥
धारिय लक्खणेण एत्थन्तरें । 'रामहों णिलउ करेवि वणन्तरें ॥३॥
कइहि मि दिर्णे हिँ पढीवउ आवमि । सयल स-सायर महि भुञ्जावमि ॥४॥
जइ पुणु कहवि तुल-लग्गों णायउ । हउँ ण होमि सोमित्तिएँ जायउ ॥५॥
अण्णु वि रयणिहेँ जो भुञ्जन्तउ । मंस-भक्खि महु मज्जु पियन्तउ ॥६॥
जीव वहन्तउ अलिउ चवन्तउ । पर-धर्णे पर-कलत्तेँ अणुरत्तउ ॥७॥
जो णरु आएँहिँ वसणेँहिँ भुत्तउ । हउँ पावेण तेण संजुत्तउ ॥८॥

घत्ता

जइ एम वि णावमि वयणु ण दावमि तो णिव्वूढ-महाहवहों ।
णव-कमल-सुकोमल णह-पह-उज्जल छित्त पाय मइँ राहवहों' ॥९॥

[३]

वणमाल णियत्तेँवि भग्गमाण । गय लक्खण-राम सुपुज्जमाण ॥१॥
थोवन्तरें मच्छुत्थल्ल देन्ति । गोला-णइ दिट्ठ समुव्वहन्ति ॥२॥
सुंसुअर - घोर - घुरुघुरुहुरन्ति । करि - मयरड्डोहिय - डुहुडुहन्ति ॥३॥
डिण्डीर-सण्ड-मण्डलिउ देन्ति । दद्दुरय - रडिय - दुरुदुरुदुरन्ति ॥४॥
कल्लोलुल्लोलहिँ उव्वहन्ति । उग्घोस - घोस - घवघवघवन्ति ॥५॥
पडिखलण-वलण-खलखलखलन्ति । खलखलिय-खलक्क-भडक्क देन्ति ॥६॥
ससि-सङ्ख-कुन्द - धवलोज्झरेण । कारण्डुड्डाविय डम्बरेण ॥७॥

घत्ता

फेणावलि-वङ्किय वलयालङ्किय णं महि-कुलवहुअहें तणिय ।
जलणिहि-भत्तारहों मोत्तिय-हारहों वाह पसारिय दाहिणिय ॥८॥

[२] काजल मिश्रित अश्रुधारासे वह धरतीको प्लावित करने लगी। तब लक्ष्मणने धीरज बँधाते हुए कहा—"संसारमें यही बात तो बुरी है कि यह बुढ़ापा, जन्म, मरण और वियोग होता है। किसी अन्य वनमें रामका आश्रय बनाकर मैं कुछ ही दिनोंमें वापस आ जाऊँगा, और फिर तुम्हारे साथ धरतीका भोग करूँगा। यह कहकर भी, यदि मैं तुलालग्नमें वापस नहीं आया तो सुमित्राका बेटा नहीं, और भी, निशाभोजन, मांसभक्षण, मधु और मद्यका पान, जीव-हत्या, झूठ बोलना, परधन और परस्त्रीमें अनुरक्त होना इत्यादि व्यसनोंमें जो पाप लगता है, वह सब पाप मुझे लगे। यदि मैं लौटकर न आऊँ, या अपना मुँह न दिखाऊँ। मैं महायुद्धमें समर्थ, श्रीरामके नव कमलकी तरह कोमल, और नव प्रभासे उज्ज्वल रामके चरण छूकर कह रहा हूँ" ॥१–६॥

[३] इस प्रकार भग्न वनमालाको समझा-बुझाकर, सुपूज्य राम और लक्ष्मणने वहाँसे प्रस्थान किया। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें गोदावरी नदी मिली। उसमें मछलियाँ उछल-कूद मचा रही थीं। शिशुमारोंमें घोर घुरघुराती हुई, गज और मगरोंके आलोड़नसे डुहडुहाती हुई, फेन-समूहके मण्डल बनाती हुई, मेंढकोंकी ध्वनिसे टर्राती हुई; तरङ्गोंके उद्वेलसे बहती हुई, उद्दीपके शब्दसे छप-छप करती हुई, वह गोदावरी नदी शशि, शंख और कुन्द-कुसुमोंसे धवल हो रही थी। कारंडवके उड्डयनसे भयङ्कर, जलप्रपातोंके स्खलन और मोड़से खल-खल करती हुई और चट्टानों पर सर-सराती हुई वह बह रही थी। वलय (आवर्त और चूड़ी) से अंकित, वह मानो धरती रूपी नव-वधूकी कुल पुत्री ही हो जो अपने प्रिय समुद्रके आगे मुक्ताहारके लिए अपना दाँया हाथ पसार रही थी ॥१–८॥

[४]

थोवन्तरें बल-णारायणेहिँ। खेमञ्जलि-पट्टणु दिट्ठु तेहिँ ॥१॥
अरिदमणु णराहिउ वसइ जेत्थु। अइचण्डु पयण्डु ण को वि तेत्थु ॥२॥
रज्जेसरु जो सव्वहँ वरिट्ठु। सो पहु पहियाह मि मूलेँ दिट्ठु ॥३॥
णह-भासुरु जो लङ्गूल-दीहु। सो मायङ्गेहि मि लइउ सीहु ॥४॥
जो दुद्दम-दाणव-तिमिर-चूरु। सो तिय-मुहयन्दहोँ तसइ सूरु ॥५॥
जं रायहँ तं छत्तह मि छित्तु। जं सुहडहँ तं कुड्डह मि चित्तु ॥६॥
तहोँ णयरहोँ थिउ अवरुत्तरेण। उज्जाणु अद्ध-कोसन्तरेण ॥७॥
सुरसेहरु णामेँ जगेँ पयासु। णं अग्घ-विहत्थउ थिउ वलासु ॥८॥

घत्ता

तहिँ तेहएँ उववणेँ णव-तरुवर-घणेँ जहिँ अमरिन्दु रइ करइ।
तहिँ णिलउ करेप्पिणु वे वि थवेप्पिणु लक्खणु णयरेँ पईसरइ ॥९॥

[५]

पइसन्तें पुर-वाहिरेँ करालु। भड-मडय-पुञ्जु दीसइ विसालु ॥१॥
ससि-सङ्ख-कुन्द-हिम-दुद्ध-धवलु। हरहार-हंस-सरयब्भ-विमलु ॥२॥
तं पेक्खेंवि लहु हरिसिय-मणेण। गोवाल पपुच्छिय लक्खणेण ॥३॥
'हउ दीसइ काइँ महा-पयण्डु। णं णिम्मलु हिमगिरि-सिहर-खण्डु' ॥४॥
तं णिसुणेंवि गोवहिँ वुत्तु एम। 'किं एह वत्त पइँ ण सुअ देव ॥५॥
अरिदमण-धीय जियपउम-णाम। भड-थड-संघारणि जिह दुणाम ॥६॥

[४] थोड़ी दूरपर राम-लक्ष्मणको क्षेमंजली नगर दीख पड़ा। उसमें अरिदमन नामक राजा रहता था। उसके समान प्रचण्ड वहाँ दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था। वह राजेश्वर, सबमें श्रेष्ठ था। रास्तागीरों तककी बात भाँप लेनेमें वह समर्थ था। वह सिंहकी तरह, नखोंसे भास्वर, लंगूलदीहु (लम्बी पूँछ और हथियार विशेषसे सहित) था। सिंह मातंगों (हाथियोंसे) अग्राह्य होता है, पर वह राजा मातंग (लक्ष्मीके अंगों) से ग्राह्य था। अर्थात् लक्ष्मी उसे प्राप्त थी। पर दुर्दम दानव-समूहको चूरनेवाला वह स्त्रियोंके मुख-चन्द्रको सतानेके लिये सूर्य था। जैसे वह राजाओंसे, वैसे ही छत्रोंसे स्पृष्ट था। और जैसे सुभटोंसे वैसे ही उड्ड (गहना विशेष) से भूषित था। उस नगरसे, वायव्य कोणमें आधे कोसकी दूरी पर, सुरशेखर नामसे जगत्‌में प्रसिद्ध एक उद्यान था, मानो वह उद्यान बलभद्र रामके लिए हाथोंमें अर्घ लेकर खड़ा था। नये वृक्षोंसे सघन उस उपवनमें देवेन्द्र क्रीड़ा करता था। लक्ष्मणने वहीं घर बनाया। और राम-सीताको वहीं ठहराकर उसने उस नगरमें प्रवेश किया ॥१-६॥

[५] घुसते ही उसे नगरके बाहर भटोंका भयङ्कर और विशाल, शव-समूह मिला। वह ढेर शशि, शंख, कुन्द, हिम तथा दूधकी तरह सफेद; हर, हार, हंस और शरद् मेघकी तरह स्वच्छ था। उसे देखकर, हर्षितमन होकर लक्ष्मणने एक गोपालसे पूछा, "यह महाप्रचण्ड क्या दिखाई दे रहा है ? यह ऐसा लगता है मानो हिमालयके निर्मल शिखर हों।" यह सुनकर गोपालने उत्तर दिया, "देव, क्या आपने यह नहीं सुना, यहाँके राजा अरिदमनकी जित-पद्मा नामकी एक लड़की है, वह, महाभट समूहोंका नाश करने वाली, मानो साक्षात् डाकिनी है। वह आज भी वर-कुमारी है,

सा अज्ज वि अच्छइ वर-कुमारि । पच्चक्ख णाइँ आइय कुमारि ॥७॥
तहेँ कारणेँ जो जो मरइ जोहु । सो विप्पइ तं हड्डहरि एहु ॥८॥

घत्ता

जो घइँ अवगण्णेँवि तिण-समु मण्णेँवि पञ्च वि सत्तिउ धरइ णरु ।
पडिवक्ख-विमद्दणु णयणाणन्दणु सो पर होसइ ताहेँ वरु' ॥९॥

[६]

तं वयणु सुणेप्पिणु दुण्णिवारु । रोमञ्चिउ खणेँ लक्खण-कुमारु ॥१॥
वियड-प्पय-छोहेँहिँ पुणु पयट्टु । णं केसरि मयगल-मइय-वट्टु ॥२॥
कत्थइ कप्पद्दुम दिट्ठ तेण । णं पन्थिय थिय णयरासएण ॥३॥
कत्थइ मालइ कुसुमइँ खिवन्ति । सीस व सुकइहेँ जसु विक्खिरन्ति ॥४॥
कत्थइ लक्खइ सरवर विचित्त । अवगाहिय सीयल जिह सुमित्त ॥५॥
कत्थइ गोरसु सव्वहँ रसाहुँ । णं णिग्गउ माणु हरेवि ताहुँ ॥६॥
कत्थइ आवाह डज्झन्ति केम । दुज्जण-दुव्वयणेँहिँ सुयण जेम ॥७॥
कत्थइ अरहट्ट भमन्ति केम । संसारिय भव-संसारेँ जेम ॥८॥
णं धउ हक्कारइ 'एहि एहि । भो लक्खण लहु जियपउम लेहि' ॥९॥

घत्ता,

वारुब्भड-वयणेँ दीहिय-णयणेँ देउल-दाढा-भासुरेँण ।
णं गिलिउ जणद्दणु असुर-विमद्दणु एन्तउ णयर-णिसायरेँण ॥१०॥

[७]

पायार-मुएँहिँ पुरणाइँ तेण । अवरुण्डिउ लक्खणु णाइँ तेण ॥१॥
कत्थइ कुम्भा सहु णाडएहिँ । णं णड णाणाविह णाडएहिँ ॥२॥

मानो वह धरती पर प्रत्यक्ष मौत बनकर ही आई है। जो योधा उसके लिए अपनी जान गँवाता है, उसे इस हड्डियोंके पहाड़में डाल देते हैं। जो सुभट अपनी उपेक्षा करते हुए, प्राणोंको तिनकेके बराबर समझकर, पाँचों ही शक्तियोंको धारण कर लेगा, शत्रु-संहारक और नेत्रोंके लिए आनन्ददायक वह, उसका वर होगा" ॥ १-६ ॥

[६] यह वचन सुनकर दुर्निवार लक्ष्मणको एक क्षणमें रोमांच हो आया। विकट क्षोभसे भरकर वह नगरमें ऐसे प्रविष्ट हुआ मानो मत्तगजके संहारक सिंहने ही प्रवेश किया हो। कहीं उसने कल्प वृक्षोंको इस तरह देखा मानो नगरकी आशासे पथिक ही ठहर गये हों। कहीं मालतीसे फूल झड़ रहे थे, मानो शिष्य ही सुकविका यश फैला रहे थे। कहीं पर विचित्र सरोवर दीख पड़ रहे थे। जो अवगाहन करनेमें अच्छे मित्रकी तरह शीतल थे। कहीं पर सब रसोंका गोरस था मानो वह उनका मान हरण करते ही निकल आया हो। कहीं पर ईखके खेत ऐसे जलाये जा रहे थे मानो दुर्जन सज्जनको सता रहा हो। कहीं पर अरहट ऐसे घूम रहे थे जैसे जीव भवरूपी चक्रमें घूमते रहते हैं। हिलती डुलती पताका मानो लक्ष्मणसे कह रही थी,—"हे लक्ष्मण, आओ आओ और शीघ्र ही जितपद्माको ले लो", आते हुए असुरसंहारक लक्ष्मणको नगररूपी निशाचरने मानो लील लिया। द्वारही उसका विकट मुख था, वापिकाएँ नेत्र थीं, और देवकुलरूपी डाढोंसे वह भयङ्कर था ॥ १-६ ॥

[७] अथवा उस नगररूपी कोतवालने अपनी प्राकार की भुजाओंसे लक्ष्मणको रोक लिया। (अर्थात् उसने नगरके परकोटेके भीतर प्रवेश किया)। कहीं पर रस्सियोंके साथ घड़े थे, कहीं मानो नाना नाटकोंके साथ नट थे। कहीं पर विशुद्ध वंशवाले

कत्थइ वंसारि समुद्द-वंस । णाइव सु-कुलीण विसुद्ध-वंस ॥३॥
कत्थइ धय-वड णच्चन्ति एम । वरि अम्हि सुरायर सग्गेँ जेम ॥४॥
कत्थइ लोहारेँहिँ लोहखण्डु । पिट्टिज्जइ णरएँ व पावपिण्डु ॥५॥
तं हट्टमग्गु मेल्लेँवि कुमारु । णिविसेण पराइउ रायवारु ॥६॥
पडिहारु वुत्तु 'कहि गम्पि एम । वरु वुच्चइ आइउ एक्कु देव ॥७॥
जियपउमहेँ माण-मरट्ट-दलणु । पर-बल-मसक्कु दरियारि-दमणु ॥८॥
रिउ-संघायहोँ संघाय-करणु । सहुँ सत्तिहिँ तुज्झु वि सत्ति-हरणु ॥९॥

घत्ता

(अह) किं वहुएं जम्पिएँण णिप्फल-चविएँण एम भणहि तं अरिदमणु ।
दस-वीस ण पुच्छइ सउ वि पडिच्छइ पञ्चहँ सत्तिहिँ को गहणु' ॥१०॥

[८]

तं णिसुणेवि गउ पडिहारु तेत्थु । सह-मण्डवेँ सो अरिदमणु जेत्थु ॥१॥
पणवेप्पिणु वुच्चइ तेण राउ । 'परमेसर विण्णत्तिएँ पसाउ ॥२॥
भडु कालेँ चोइउ आउ इक्कु । ण मुणहुँ किं अक्कु मियङ्कु सक्कु ॥३॥
किं कुसुमाउहु अतुलिय-पयाउ । पर पञ्च वाण णउ एक्कु चाउ ॥४॥
तहोँ णरहोँ णवल्ली भङ्गि का वि । फिट्टइ ण लच्छि अङ्गहोँ कयावि ॥५॥
सो चवइ एम जियपउम लेमि । किं पञ्चहिँ दस सत्तिउ धरेमि ॥६॥
तं णिसुणेँवि पभणइ सत्तुदमणु । 'पेक्खमि कोक्कहि वरइत्तु कवणु' ॥७॥
पडिहारेँ सद्दिउ आउ कण्हु । जयलच्छि-पसाहिउ जुज्झ-तण्हु ॥८॥

घत्ता

अब्भुब्भड-वयणेँहिँ दीहर-णयणेँहिँ णरवइ-विन्दहिँ दुज्जणेहिँ ।
लक्खिज्जइ लक्खणु एन्त स-लक्खणु जेम मइन्दु महागएँहिँ ॥९॥

सुकुलीनोंकी भाँति उत्तम वंशके हाथी थे। कहीं पर ध्वज-पताकाएँ ऐसी फहरा रही थीं मानो वे स्वर्गके देव-समूहकी तरह अपनेको भी ऊपर समझ रही हों। कहीं पर लोहार लोहखंडको उसी प्रकार पीट रहे थे जिस प्रकार पापी नरकमें पीटे जाते हैं। वाजारके मार्गको छोड़कर लक्ष्मण राज्यद्वारके निकट पहुँच गया। तव प्रतिहारने टोककर पूछा, "इस प्रकार कहाँ जाओगे"। इस पर कुमारने कड़ककर कहा, "जाओ और राजासे कहो कि जितपद्माका मान जीतनेवाला आ गया है। पर-वलका संहारक, गर्वितशत्रुका दमनकर्ता, रिपु-समूहका घातक तथा शक्तियों सहित अरिदमनका भी हरण करनेवाला एक देव आया है। अथवा वहुत कहने से क्या ? उस राजासे कहना कि मैं दस वीसकी वात तो कौन पूछे (कमसे कम) सौ शक्तिको पानेकी इच्छा रखता हूँ। पाँच शक्तियोंका ग्रहण करनेसे क्या होगा" ॥ १–६ ॥

[८] यह सुनकर प्रतिहार, मण्डपमें आसनपर वैठे हुए राजाके पास गया। प्रणाम करके उसने निवेदन किया, "परमेश्वर, विज्ञप्तिसे प्रसन्न हों। यमसे प्रेरित एक योधा आया है, मैं नहीं जानता कि वह चन्द्र है या इन्द्र, या अतुलित प्रतापी कामदेव है। पर उसके पास पाँच वाण हैं और एक धनुष नहीं है। उस नरकी कोई अनोखी ही भंगिमा है कि उसके शरीरके एक भी अंगकी शोभा नष्ट नहीं होती। वह कहता है कि मैं जितपद्माको लेकर रहूँगा। इन पाँच शक्तियोंको क्या लूँ ?" यह सुनकर राजा अरिदमनने आवेशमें कहा, "वुलाओ, देखूँ कौन-सा आदमी है।" तव प्रतिहारके पुकारने पर, जय-लक्ष्मीको प्रसन्न करने-वाला, युद्धका प्यासा कुमार लक्ष्मण भीतर आया। भयङ्कर मुख, दीर्घनेत्र वहुतसे अजेय नर-पतियोंने सुलक्षण लक्ष्मणको आते हुए ऐसे देखा मानो महागज सिंहको देख रहे हों ॥ १–६ ॥

[९]

लक्खणु पासु पराइउ जं जे। वुत्तु णिवेण हसेप्पिणु तं जे ॥१॥
'को जियपउम लएवि समत्थु। केण हुवासणें ढोइउ हत्थु ॥२॥
केण सिरेण पडिच्छिउ वज्जु। केण कियन्तु वि घाइउ अज्जु ॥३॥
केण णहङ्गणु छित्तु करग्गें। केण सुरिन्दु परज्जिउ भोग्गें ॥४॥
केण वसुन्धरि धारिय पाएं। केण पलोट्टिउ दिग्गउ घाएं ॥५॥
केण सुरेहहों भग्गु विसाणु। केण तलप्पएं पाडिउ भाणु ॥६॥
लङ्घिउ केण समुद्दु असेसु। कें फण-मण्डवें चूरिउ सेसु ॥७॥
केण पहञ्जणु बद्धु पडेण। मेरु-महागिरि टालिउ केण ॥८॥

घत्ता

जिह तुहुँ तिह अण्ण वि णीसावण्ण वि गरुयइँ गज्जिय बहुय णर।
महु सत्ति-पहारेंहिँ रणें दुव्वारेंहिँ किय सय-सक्कर दिट्ठ पर' ॥९॥

[१०]

अरिदमणें भड्ड जं अहिखित्तु। महुमहु जेम दवग्गि पलित्तु ॥१॥
'हउँ जियपउम लएवि समत्थु। मइँ जि हुआसणें ढोइउ हत्थु ॥२॥
मइँ जि सिरेण पडिच्छिउ वज्जु। मइँ जि कियन्तु वि घाइउ अज्जु ॥३॥
मइँ जि णहङ्गणु छित्तु करग्गें। मइँ जि सुरिन्दु परज्जिउ भोग्गें ॥४॥
मइँ जि वसुन्धरि धारिय पाएं। मइँ जि पलोट्टिउ दिग्गउ घाएं ॥५॥
मइँ जि सुरेहहों भग्गु विसाणु। मइँ जि तलप्पएं पाडिउ भाणु ॥६॥
लङ्घिउ मइँ जि समुद्दु असेसु। मइँ फण-मण्डवें चूरिउ सेसु ॥७॥
मइँ जि पहञ्जणु बद्धु पडेण। मेरु महागिरि टालिउ जेण ॥८॥

घत्ता

हउँ तिहुअण-डामरु हउँ अजरामरु हउँ तेत्तीसहुँ रणें अजउ।
खेमञ्जलि-राणा अवुह अयाणा मेल्लि सत्ति जइ सत्ति तउ' ॥९॥

[९] लक्ष्मणके निकट आने पर अरिदमनमें हँसकर कहा, "अरे जितपद्माको कौन ले सकता है, आगको हाथसे किसने उठाया, किसने सिर पर वज्रकी इच्छा की, कृतान्तको आज तक किसने मारा? अंगुलीसे आकाशको कौन छेद सका है, भोगमें इन्द्रको किसने पराजित किया, कौन पैरसे धरतीका दलन कर सका। आघातसे मृगेन्द्रको कौन गिरा सका? ऐरावतके दाँत किसने उखाड़े, सूर्यको तल पर किसने गिराया, अशेष समुद्रको कौन बाँध सका, धरणेन्द्रके फनको कौन चूर-चूर कर सका, हवाको कपड़ेसे कौन बाँध सका, मंदराचलको कौन टाल सका? तुम्हारी ही तरह और भी बहुतसे युवक अपनेको असाधारण बताकर यहाँ गरजे थे पर युद्धमें दुर्धर मेरी शक्तियोंने अपने प्रहारोंसे उनके सौ सौ टुकड़े कर दिये" ।।१-९।।

[१०] अरिदमनने जब सुभट लक्ष्मण पर इस प्रकार आक्षेप किया तो वह दावानलकी तरह भड़क उठा, उसने कहा, "मैं जितपद्माको लेनेमें समर्थ हूँ, मैंने हाथ पर आग उठाई है, मैंने सिर पर वज्र झेला है, मैं आज भी कृतान्तका घात कर सकता हूँ, मैंने अँगुलीसे आकाशमें छेद किया है, मैंने भोगमें इन्द्रको पराजय दी है, धरतीको मैंने पैरोंसे चाँपा है, मैंने आघातसे गजको भूमिसात् किया है, मैंने ऐरावत हाथीका दाँत उखाड़ा है, मैंने सूर्यको तल पर गिराया है, मैंने अशेष समुद्रका उल्लंघन किया है, मैंने धरणेन्द्रके फनको चूर-चूर किया है, वस्त्रसे मैंने हवाको बाँधा है, मैं वही हूँ जिसने मेरुपर्वतको भी टाल दिया। मैं तीनों भुवनोंमें भयंकर हूँ। मैं अजर अमर हूँ, तेंतीस करोड़ देवोंके रणमें अजेय हूँ। क्षेमंजलिराज, तुम अपंडित और अज्ञानी हो, यदि तुममें शक्ति हो तो अपनी शक्ति मुझ पर छोड़ो" ।।१-९।।

[११]

तं णिसुणेँ वि खेमञ्जलि-राणउ । उट्ठिउ गलगज्जन्तु पहाणउ ॥१॥
सत्ति-विहत्थउ सत्ति-पगासणु । धगधगधगधगन्तु स-हुआसणु ॥२॥
अम्बरेँ तेय-पिण्डु णउ दिणयरु । णिय-मज्जाय-चत्तु णउ सायरु ॥३॥
जणेँ अणवरय-दाणु णउ मयगलु । परमण्डल-विणासु णउ मण्डलु ॥४॥
रामायणहोँ मज्झेँ णउ रामणु । भीम-सरीरु ण भीमु भयावणु ॥५॥
तेण विमुक्क सत्ति गोविन्दहोँ । णं हिमवन्तेँ गङ्ग समुद्दहोँ ॥६॥
धाइय धगधगन्ति समरङ्गणेँ । णं तडि तडयडन्ति णह-अङ्गणेँ ॥७॥
सुरवर णहेँ वोल्लन्ति परोप्परु । 'एण पहारेँ जीवइ दुक्करु' ॥८॥

घत्ता

एत्थन्तरेँ कण्हें जय-जस-तण्हें धरिय सत्ति दाहिण-करेण ।
संकेयहोँ ढुक्की थाणहोँ चुक्की णावइ पर-तिय पर-णरेण ॥६॥

[१२]

धरिय सत्ति जं समरेँ समत्थेँ । मेल्लिउ कुसुम-वासु सुर-सत्थेँ ॥१॥
पुण्णिम-इन्दु-रुन्द -मुह - सोमहेँ । केण वि कहिउ गम्पि जियपोमहेँ ॥२॥
'सुन्दरि पेक्खु पेक्खु जुज्झन्तहोँ । णोग्गी का वि भङ्गि वरइत्तहोँ ॥३॥
जा तउ ताएं सत्ति विसज्जिय । लग्ग हत्थेँ असइ व्वालज्जिय ॥४॥
णर-भमरेण एण अकलङ्कउ । पर चुम्बेवउ तुह मुह-पङ्कउ' ॥५॥
तं णिसुणेप्पिणु विहसिय-वयणऍ । णव-कुवलय-दल - दीहर-णयणऍ ॥६॥
जाल-गवक्खऍ जो अन्तर-पट्टु । णाइँ सहत्थेँ फेडिउ मुह-वट्टु ॥७॥
लक्खणु णयण-कडक्खिउ कण्णऍ । णं जुज्झन्तु णिवारिउ सण्णऍ ॥८॥
ताम कुमारेँ दिट्ठु सुदंसणु । धवलहरम्बरेँ मुह-मयलञ्छणु ॥६॥
सुह-णक्खत्तेँ सुजोग्गे सुहङ्करु । णयणामेलउ जाउ परोप्परु ॥१०॥

[११] यह सुनते ही क्षेमंजलि-राज गरजकर उठा, कुछ शक्तियोंको प्रकाशित करता और कुछ को हाथमें लिये हुए वह धक-धककर रहा था। वह ऐसा लगता था मानो आकाशमें तेजपिंड सूर्य हो, या मर्यादारहित समुद्र हो या अनवरत मद झरता हुआ महागज हो। या परमण्डलका नाश करनेवाला मांडलिक राजा हो, या रामायणके बीचमें रावण हो। या भीम शरीरवाला भीम ही हो। उसने तब लक्ष्मणके ऊपर उसी तरह शक्ति फेंकी जिस तरह हिमालयने समुद्रमें गंगा प्रक्षिप्त की। वह शक्ति धकधकाती हुई समरांगणमें इस तरह दौड़ी मानो नभमें तड़-तड़ करती बिजली ही चमक उठी हो। (यह देखकर) देवता आकाशमें यह बातें करने लगे कि अब इसके आघातसे लक्ष्मणका बचना कठिन है। परन्तु यश और जयके लोभी लक्ष्मणने अपने दाहिने हाथमें उस शक्तिको उसी तरह धारण कर लिया जिस तरह संकेतसे चूकी हुई परस्त्रीको पर-पुरुष पकड़ लेता है ॥१-६॥

[१२] लक्ष्मणके युद्धमें शक्तिके झेलते ही सुरसमूह पुष्प-वर्षा करने लगा। किसीने जाकर पूर्ण चन्द्रमुखी जितपद्मासे कहा, "सुंदरी, सुंदरी, लड़ते हुए लक्ष्मणकी अनोखी भंगिमा तो देखो, तातने जो शक्ति छोड़ी थी वह असती स्त्रीकी तरह लक्ष्मणसे जा लगी। यह नररूपी भ्रमर तुम्हारे मुख-कमलको अवश्य चूमेगा।" यह सुनकर नव-कमलकी तरह दीर्घनयन, विहसितमुख उसने अपने मुखपटकी तरह, जालीदार झरोखेके अन्तःपटको हटाकर लक्ष्मणको अपने नेत्र-कटाक्षसे देखा मानो उसने संकेतसे लड़ते हुए उसे निवारण किया हो, इतने में ही कुमारने भी धवलगृहके आकाशमें सुदर्शन मुखचन्द्र देखा। इस तरह शुभ नक्षत्र और सुयोगमें उन दोनोंकी आँखोंका परस्पर शुभङ्कर मिलाप हो गया।

घत्ता

एत्थन्तरें दुट्टें मुक्कारुट्टें लहु अण्णेक्क सत्ति णरेंण।
स वि धरिय सरग्गें वाम-करग्गें णावइ णव-वहु णव-वरेंण ॥११॥

[१२]

अण्णेक्क मुक्क वहु-मच्छरेण। वज्जासणि णाइँ पुरन्दरेण ॥१॥
स हि दाहिण-कक्खहिँ छुद्ध तेण। अवरुण्डिय वेस व कामुएण ॥२॥
अण्णेक्क विसज्जिय धगधगन्ति। णं सिहि-सिह जाला-सय मुअन्ति ॥३॥
स वि धरिय एन्ति णारायणेण। वामद्धें गोरि व तिणयणेण ॥४॥
णं महिहरु देवइणन्दणेण। पञ्चमिय मुक्क वहु-मच्छरेण ॥५॥
पम्मुक्क पधाइय णरवरासु। णं कन्त सुकन्तहों सुहयरासु ॥६॥
स विसाणेंहिँ एन्ति णिरुद्ध केम। णव-सुरय-समागमें जुवइ जेम ॥७॥
एत्थन्तरें देवहिँ लक्खणासु। सिरें मुक्क पडीवउ कुसुम-वासु ॥८॥
अरिदमणु ण सोहइ सत्ति-हीणु। खल-कुपुरिसु व्व थिउ सत्ति-हीणु ॥९॥

घत्ता

हरि रोमञ्चिय-तणु सहइ स-पहरणु रण-मुहेँ परिसक्कन्तु किह।
रत्तुप्पल-लोयणु रस-वस-भोयणु पच्चाउहु वेयालु जिह ॥१०॥

[१३]

समरङ्गणें असुर - परायणेण। अरिदमणु वुत्तु णारायणेण ॥१॥
'खल खुद्द पिसुण मच्छरिय राय। मइँ जेम पडिच्छिय पञ्च घाय ॥२॥
तिह तुहु मि पडिच्छहि एक्क सत्ति। जइ अत्थि का वि मणेँ मणुस-सत्ति' ॥
किर एम भणेप्पिणु हणइ जाम। जियपउमएँ घत्तिय माल ताम ॥४॥

इसी बीचमें उस दुष्ट और क्रोधी अरिदमनने एक और शक्ति लक्ष्मणके ऊपर छोड़ी परंतु लक्ष्मणने उसे भी बायें हाथमें वैसे ही ले लिया जैसे नया वर नई दुलहिनको ले लेता है ॥१-६॥

[१३] तब उसने इन्द्रके वज्रकी भाँति एक और शक्ति छोड़ी उसने उसे भी दाहिनी कांखमें ऐसे ही चाप लिया जैसे कामुक वेश्याको आलिंगनबद्ध कर लेता है। राजाने एक और शक्ति छोड़ी जो धक-धक करती हुई बालशिखाकी तरह सैकड़ों लपटें उगलने लगी। लक्ष्मणने आती हुई उसे वैसे ही धारण कर लिया, जैसे शिवजीने पार्वतीको अपने बायें अर्द्धांगमें धारण कर लिया था। तब अत्यंत मत्सरसे भरकर देवकीपुत्र राजा अरिदमनने पाँचवीं शक्ति विसर्जित की। वह भी नरश्रेष्ठ लक्ष्मणके पास इस तरह दौड़ी मानो कांता ही अपने सुभगराशि कांतके पास जा रही हो। किंतु कुमार लक्ष्मणने उसे भी अपने दाँतोंसे वैसे ही रोक लिया, पति जैसे सुहागरातमें आती हुई युवतीको रोक लेता है। तब देवोंने पुनः लक्ष्मणपर फूल बरसाये। शक्तिसे हीन होकर राजा अरिदमन बिलकुल भी नहीं सोह रहा था। तब वह शक्ति-हीन दुष्ट पुरुष की तरह स्थित हो गया। पुलकितशरीर युद्ध-स्थलमें इधर-उधर दौड़ता हुआ सशस्त्र लक्ष्मण वैसे ही सोह रहा था, जैसे रक्तकमलकी तरह नेत्रवाला, रसमज्जाका भोजी पंचायुध वैताल शोभित होता है ॥१-६॥

[१४] समरांगणमें असुरोंको पराजित करनेवाले लक्ष्मणने अरिदमनसे कहा, "खल, क्षुद्र, दुष्ट, नीच ईर्ष्यालु राजन्! जिस तरह मैंने तेरे पाँच आघात झेले। उसी तरह यदि तेरे मनमें थोड़ी भी मनुष्यशक्ति हो तो मेरी एक शक्ति झेल। यह कहकर कुमार लक्ष्मण जब तक मारने लगा तब तक जितपद्माने उसके गलेमें

'भो साहु साहु रणेँ दुण्णिरिक्ख । मं पहरु देव दइ जणण-भिक्ख ॥५॥
जेँ समरेँ परज्जिउ सत्तुदमणु । पइँ मुएँ वि अण्णु वरइत्तु कवणु' ॥६॥
तं वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण । आउद्धइँ चित्तइँ तक्खणेण ॥७॥
मुक्काउहु गउ अरिदमण-पासु । सहसक्खु व पणविउ जिणवरासु ॥८॥

घत्ता

'जं अमरिस-कुद्धेँ जय-जस-लुद्धेँ विप्पिउ किउ तुम्हेहिँ सहुँ ।
अण्णु वि रेकारिउ कह वि ण मारिउ तं मरुसेज्जहि माम महु' ॥९॥

[१५]

खेमञ्जलिपुर परमेसरेण । सोमित्ति वुत्तु रज्जेसरेण ॥१॥
'किं जम्पिएण बहु-अमरिसेण । लइ लइय कण्ण पइँ पउरिसेण ॥२॥
तुहुँ दीसहि दणु-माहप्प-चप्पु । कहेँ कवणु गोत्तु का माय वप्पु' ॥३॥
महुमहणु पवोल्लिउ 'णिसुणि राय । महु दसरहु ताउ सुमित्ति माय ॥४॥
अण्णु वि पयडउ इक्खक्कु वंसु । वड्ढारउ जिह तरुवरहोँ वंसु ॥५॥
वे अम्हइँ लक्खण-राम भाय । वणवासहोँ रज्जु मुएवि आय ॥६॥
उज्जाणेँ तुहारएँ असुर-मद्दु । सहुँ सीयएँ अच्छइ रामभद्दु' ॥७॥
वयणेण तेण कण्टइउ राउ । संचल्लु णवर साहण-सहाउ ॥८॥

घत्ता

जण-मण-परिओसेँ तूर-णिघोसेँ णरवइ कहि मि ण माइयउ ।
जहिँ रामु स-भज्जउ बाहु-सहेज्जउ तं उद्देसु पराइयउ ॥९॥

[१६]

एत्थन्तरेँ पर-बल-भड-णिसामु । उट्ठिउ जण-णिवहु णिएवि रामु ॥१॥
करेँ धणुहरु लेइ ण लेइ जाम । सकलत्तउ लक्खणु दिट्ठु ताम ॥२॥

माला डाल दी और वह बोली, "हे रणमें दुर्दर्शनीय, साधु-साधु, प्रहार मत करो, पिताकी भीख दो मुझे। तुमने युद्धमें अरिदमनको जीत लिया। तुम्हें छोड़कर और कौन मेरा पति हो सकता है।" यह सुनकर लक्ष्मणने तुरंत अपने हथियार डाल दिये। और अरिदमनके पास जाकर उसने वैसे ही उसको प्रणाम किया जैसे इन्द्र जिनको प्रणाम करता है। उसने कहा—"अमर्ष और क्रोधसे, तथा यश और जयके लोभसे मैंने आपके साथ बुरा-बर्ताव किया है और भी 'रे' कहकर बुलाया। किसी तरह मारा भर नहीं। हे मामा (ससुर) वह क्षमा कर दीजिए!" ॥१-९॥

[१५] तव क्षेमंजलिका राज-राजेश्वर अरिदमन बोला, "बहुत अमर्षपूर्ण प्रलापसे क्या, तुमने अपने पौरुषसे कन्या ले ली। तुम दानवोंके माहात्म्यको चाँपनेवाले दिखाई देते हो, बताओ तुम्हारा गोत्र क्या है? माँ और बाप कौन हैं?" इसपर लक्ष्मण बोला, "सुनिये राजन्! दशरथ मेरे पिता हैं और सुमित्रा माँ। और भी मेरा प्रसिद्ध इक्ष्वाकु कुल तरुवरके वंशकी तरह बड़ा है। हम राम और लक्ष्मण दो भाई हैं, जो राज्य छोड़कर वनवासके लिए आये हैं। असुरसंहारक भद्र राम सीता देवीके साथ तुम्हारे उद्यानमें ठहरे हैं।" यह सुनकर राजा पुलकित हो उठा और सेनाको लेकर चल पड़ा। जनोंके मनके परितोष और तूर्यके निर्घोषसे वह नरपति अपने तईं नहीं समा सका। शीघ्र ही वह उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ अपने ही बाहुओंका भरोसा करनेवाले राम अपनी पत्नीके साथ थे ॥१-६॥

[१६] यहाँ भी शत्रु-सेनाके सुभटोंका संहार करनेवाले राम जनसमूहको देखकर उठे। जब तक वह अपने हाथमें धनुष लें या न लें तब तक उन्होंने स्त्रीसहित लक्ष्मणको आते देखा।

सुरवइ व स-मउउ रहें णिविट्ठु । अण्णेक्कु पासें अरिदमणु दिट्ठु ॥३॥
सन्दणहों तरेप्पिणु दुण्णिवारु । रामहों चलणेंहिं णिवडिउ कुमारु ॥४॥
जियपउम स-विब्भम पउम-णयण । पउमच्छि पफुल्लिय-पउम-वयण ॥५॥
पउमहों पय-पउमेंहिं पडिय कण्ण । तेण वि सु-पसत्थासीस दिण्ण ॥६॥
एत्थन्तरें मामें ण किउ खेउ । कणय-रहें चडाविउ रामएउ ॥७॥
पडु पडह पहय किय-कलयलेहिं । उच्छाहेंहिं धवलेंहिं मङ्गलेंहिं ॥८॥

घत्ता

रहें एक्कें णिविट्ठइँ णयरें पइट्ठइँ सीय-वलइँ वलवन्ताइँ ।
णारायणु णारि वि थियइँ चयारि वि रज्जु स इं भु ञ्ज न्त इँ ॥९॥

[३२. बत्तीसमो संधि]

हलहर-चक्कहर परचक्क-हर जिणवर-सासणें अणुराइय ।
मुणि-उवसग्गु जहिं विहरन्त तहिं वंसत्थलु णयरु पराइय ॥

[१]

ताम विसन्थुलु पाणक्कन्तउ । दिट्ठु असेसु वि जणु णासन्तउ ॥१॥
दुम्मणु दीण-वयणु विद्दाणउ । गउ विच्छाय व गलिय-विसाणउ ॥२॥
पण्णय-णिवहु व फणिमणि-त्तोडिउ । गिरि-णिवहु व वज्जासणि-फोडिउ ॥३॥
पङ्कय-सण्डु व हिम-पवणाहउ । उब्भड-वयणु समुब्भिय-बाहउ ॥४॥
जणवउ जं णासन्तु पदीसिउ । राहवचन्दें पुणु सम्भासिउ ॥५॥
'थक्कहों मं भज्जहों मं भज्जहों । अभउ अभउ भउ सयलु विवज्जहों' ॥६॥
ताम दिट्ठु ओखण्डिय-माणउ । णासन्तउ वंसत्थल - राणउ ॥७॥

इन्द्रकी भाँति वह पत्नीके साथ रथपर आरूढ़ था। उसके निकट दूसरा अरिदमन था। (रामको देखते ही) दुर्निवार कुमार लक्ष्मण उनके चरणोंपर गिर पड़ा। खिले हुए कमलकी तरह मुख-वाली कमलनयनी कन्या जितपद्मा विलासके साथ रामके चरण-कमलोंपर नत हो गई। उन्होंने भी उसे प्रशस्त आशीर्वाद दिया। इतनेमें मामाने (ससुरने) जरा भी देर नहीं की। उसने रामदेवको सोनेके रथ पर बैठाया। पटु पटह बज उठे! कलकल ध्वनि और धवल तथा मंगल गीतोंके साथ, एक ही रथमें बैठकर बलवंत राम और सीताने नगरमें प्रवेश किया। ऐसे मानो वे विष्णु और लक्ष्मी हों। वे चारों इस तरह राज्यका उपभोग करते हुए वहीं रहने लगे॥ १-६॥

०

बत्तीसवीं संधि

जिनशासनमें अनुरक्त, दूसरेके चक्रका हरण करनेवाले वे दोनों राम और लक्ष्मण वहाँसे चलकर उस वंशस्थल नगरमें पहुँचे जहाँ मुनियों पर उपसर्ग हो रहा था।

[१] वह नगर जैसे सिसक रहा था, उन्होंने देखा सारे जन नष्ट हो रहे हैं, दुर्मन, दीनमुख और विद्रूप वे लोग दन्तहीन हाथीकी तरह एकदम कान्तिहीन हो उठे थे। वह जनपद वैसे ही नष्ट हो रहा था जैसे, फणमणि तोड़ लेनेपर सर्पराज, वज्रसे विदीर्ण पर्वतसमूह और हिमपवनसे आहत होकर कमलसमूह नष्ट हो जाता है। हाथ उठाये और मुँह ऊपर किये हुए उन्हें देखकर, रामने यह अभय वचन दिया, "ठहरो ठहरो, भागो मत।" इतने ही में उन्हें वंशस्थलका गलितमान राजा दीख पड़ा। उसने कहा,

तेण वुत्तु 'मं णयरें पईसहों । तिण्णिमि पाण लएप्पिणु णासहों ॥८॥

घत्ता

एत्तिउ एत्थु पुरें गिरिवर-सिहरें जो उट्ठइ णाउ भयङ्करु ।
तेण महन्तु डरु णिवडन्ति तरु मन्दिरइँ जन्ति सय-सक्करु ॥९॥

[२]

एँउ दीसइ गिरिवर-सिहरु जेत्थु । उवसग्गु भयङ्करु होइ तेत्थु ॥१॥
वाओलि धूलि दुव्वाइ एइ । पाहण पडन्ति महि थरहरेइ ॥२॥
धर भमइ समुट्ठइ सीह-णाउ । वरसन्ति मेह णिवडइ णिहाउ ॥३॥
तें कज्जें णासइ सयलु लोउ । मं तुम्ह वि उहु उवसग्गु होउ' ॥४॥
तं णिसुणेवि सीय मणें कम्पिय । भीय-विसन्थुल एव पजम्पिय ॥५॥
'अम्हहुँ देसें देसु भमन्तहुँ । कवणु पराहउ किर णासन्तहुँ' ॥६॥
तं णिसुणेवि भणइ दामोयरु । 'बोल्लिउ काइँ माएँ पइँ कायरु ॥७॥
विहि मि जाम करें अतुल-पयावइँ । सायर - वज्जावत्तइँ चावइँ ॥८॥
जाम विहि मि जय-लच्छि परिट्ठिय । तोणीरहिँ णाराय अहिट्ठिय ॥९॥
ताम माएँ तुहुँ कहों आसङ्कहि । विहरु विहरु मा मुहु ओवङ्कहि ॥१०॥

घत्ता

धीरेँ वि जणय-सुय कोवण्ड-भुय संचल्ल वे वि बल-केसव ।
सग्गहों अवयरिय सइ-परियरिय इन्द-पडिन्द-सुरेस व ॥११॥

[३]

पहन्तरें भयङ्करो । झसाल - छिण्ण - कक्करो ॥१॥
वलो व्व सिङ्ग-दीहरो । णियच्छिओ महीहरो ॥२॥
कहिँ जें भीम-कन्दरो । झरन्त-णीर - णिज्झरो ॥३॥
कहिँ जि रत्तचन्दणो । तमाल-ताल - वन्दणो ॥४॥

"नगरमें मत घुसो, नहीं तो तीनोंके प्राण चले जाँयगे। यहाँ इस नगरमें पहाड़की चोटीपर जो भयङ्कर नाद उठता है, उससे बहुत भय होता है, बड़े-बड़े पेड़ तक गिर जाते हैं, और प्रासाद सौ-सौ खण्ड हो जाते हैं" ॥१-६॥

[२] जहाँ यह विशाल पर्वत दीख पड़ता है, वहाँ भयङ्कर उत्पात हो रहा है। तूफान, धूलि और दुर्वात आ रहे हैं। पत्थर गिर रहे हैं और धरती काँप रही है। घर घूम रहे हैं, वज्राघात और सिंहनाद हो रहा है। मेघ बरस रहे हैं। अतः समूचा नगर ही नष्ट हुआ जाता है। तुमपर भी कहीं उत्पात न हो जाय" यह सुनते ही सीता देवी अपने मनमें काँप उठीं। वह भयकातर होकर बोलीं, "एक देशसे दूसरे देशमें घूमते और मारे-मारे फिरते हुए हम लोगोंपर कौन-सा पराभव आना चाहता है।" यह सुनकर कुमार लक्ष्मणने कहा, "माँ तुम इस तरह कायर वचन क्यों कहती हो! जब तक वज्रावर्त और सागरावर्त धनुष हमारे हाथमें हैं और जब तक तूणीर और बाणोंसे अधिष्ठित विजय-लक्ष्मी हमारे पास है तब तक माँ तुम आशङ्का ही क्यों करती हो, आगे चलनेमें मुँह मत बिचकाओ"। इस तरह जनकसुताको धीरज बँधाकर और हाथमें धनुष-बाण लेकर वे लोग चल दिये। जाते हुए वे ऐसे लगते थे मानो स्वर्गसे उतरकर, इन्द्र-प्रतीन्द्र ही शचीके साथ जा रहे हों ॥१-११॥

[३] थोड़ी दूरपर उन्हें कंकड़ और पत्थरोंसे आच्छन्न एक भयङ्कर पर्वत दिखाई दिया। उसके शृङ्ग (चोटी और सींग) बैलकी तरह विशाल थे। कहीं भीषण गुफाएँ थीं और कहीं पर पानी झरते हुए झरने। कहीं रक्तचंदनके वृक्ष थे और कहींपर तमाल, ताल तथा पीपलके पेड़ थे। कहीं कांतिसे रंजित मत्त मयूर

कहिं जि दिट्ठ-छाइया । लवन्त मत्त - मोरया ॥५॥
कहिं जि सीह-गण्डया । धुणन्त - पुच्छ-दण्डया ॥६॥
कहिं जि मत्त-णिब्भरा । गुलुग्गुलन्ति कुञ्जरा ॥७॥
कहिं जि दाढ-भासुरा । घुरुग्घुरन्ति सूयरा ॥८॥
कहिं जि पुच्छ-दीहरा । किलिकिलन्ति वाणरा ॥९॥
कहिं जि थोर-कन्धरा । परिब्भमन्ति सम्बरा ॥१०॥
कहिं जि तुङ्ग-अङ्गया । हयारि - तिक्खसिङ्गया ॥११॥
कहिं जि आणणुण्णया । कुरङ्ग बुण्ण-कण्णया ॥१२॥

घत्ता

तहिं तेहएँ सङ्कलेँ तरुवर-बहलेँ आरूढ बे वि हरि-हलहर ।
जाणइ-बिज्जुलएँ धवलुज्जलएँ चिञ्चइय णाइँ णव जलहर ॥१३॥

[४]

पिहुल-णियम्ब - बिम्ब-रमणीयहेँ । राहउ दुम दरिसावइ सीयहेँ ॥१॥
एहु सो धणेँ णग्गोह-पहाणु । जहिं रिसहहोँ उप्पण्णउ णाणु ॥२॥
एहु सो सत्तवन्तु किं न मुणिउ । अजिउ स-णाण-देहु जहिं पथुणिउ ॥३॥
एहु सो इन्दवच्छु सुपसिद्धउ । जहिं संभव-जिणु णाण-समिद्धउ ॥४॥
एहु सो सरलु सहलु संभूअउ । अहिणन्दणु स-णाणु जहिं हूअउ ॥५॥
एहु पीयङ्गु सीएँ सच्छायउ । सुमइ स-णाणपिण्डु जहिं जायउ ॥६॥
एहु सो सालु सीएँ णियच्छिउ । पउमप्पहु स-णाणु जहिं अच्छिउ ॥७॥
एहु सो सिरिसु महद्दुमु जाणइ । णाणु सुपासेँ भणेँवि जगु जाणइ ॥८॥
एहु सो णागरुक्खु चन्दपहेँ । णाणुप्पत्ति जेत्थु चन्दप्पहेँ ॥९॥
एहु सो मालइरुक्खु पदीसिउ । पुप्फयन्तु जहिं णाण-विहूसिउ ॥१०॥

घत्ता

एहु सो पक्खतरु फल-फुल्ल-भरु तेन्दुइ-समाणु दुह-णासहुँ ।
जहिं परिहूयाइँ संभूयाइँ सीयल-सेयंसहुँ ॥११॥

थे और कहीं पर अपनी पूँछ घुमाते हुए सिंह और मेढ़े। कहीं पर मदमाते गज गुरगुरा रहे थे और कहीं भयङ्कर दाढ़वाले सुअर घुर-घुरा रहे थे। कहीं मोटी और लम्बी पूँछके बन्दर किल-कारी भर रहे थे। कहीं स्थूल कंधोंके सांभर घूम रहे थे, कहीं लम्बे शरीर और तीखे सींगोंके भैंसे थे और कहींपर ऊपर मुख किये खिन्न कानवाले हिरन थे। ऐसे उस वृक्षोंसे सघन पर्वत पर दोनों भाई (आगे बढ़ते) चले गये। अत्यन्त गोरी जानकीके साथ वे दोनों भाई ऐसे ज्ञात हो रहे थे मानो बिजलीसे अंचित मेघ ही हो॥१-१३॥

[४] तब राम सीताको, (मोटे नितम्बों और अधरोंसे रमणीय) अच्छी तरह पेड़ दिखाने लगे। उन्होंने कहा, "धन्ये, देखो वह मुख्य वटवृक्ष है जहाँ आदि तीर्थङ्कर आदिनाथको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। क्या तुम इस सत्यवंत वृक्षको जानती हो जिसके नीचे अजित केवलीकी खूब स्तुति हुई थी। और यह वह इन्द्र वृक्ष है जहाँ सम्भव-जिनने केवल ज्ञान प्राप्त किया था। यह वह सरल द्रुम है जहाँ अभिनंदन स्वामी केवलज्ञानी बने थे। यह वह सच्छाय प्रियंगु वृक्ष है जहाँ सुमतिनाथने केवलज्ञान प्राप्त किया। सीतादेवी देखो, यह वह शाल वृक्ष है जहाँ पद्मप्रभ-जिन केवलज्ञानी हुए थे और हे जानकि, यह शिरीपका महाद्रुम है जहाँ भगवान् सुपार्श्वने ध्यान धारणकर समस्त विश्वको जाना था। चन्द्रमाके समान देखो यह नाग वृक्ष है जिसके नीचे चन्द्र प्रभु भगवान्ने केवलज्ञान प्राप्त किया था। यह वह मालती वृक्ष है जहाँ पुष्पदंत ज्ञानसे विभूषित हुए थे। फल-फूलोंसे लदा हुआ यह वह तेंदुकी की तरह प्लक्ष वृक्ष है जहाँ दुखनाशक शीतलनाथ और श्रेयांस भगवान्को केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी॥१-११॥

[५]

एँह सा पाडलि सुहल सुपत्ती । वासुपुज्जेँ जहिँ णाणुप्पत्ती ॥१॥
एँहु सो जम्बू एहु असत्थु । विमलाणन्तहुँ णाण-समत्थु ॥२॥
उहु दहिवण्ण-णन्दि सुपसिद्धा । धम्म-सन्ति जहिँ णाण-समिद्धा ॥३॥
उहु साहार-तिलउ दीसन्ति । कुन्थु-अरहुँ जहिँ णाणुप्पत्ति ॥४॥
एँहु सो तरु कङ्केल्लि-पहाणु । मल्लिजिणहोँ जहिँ केवल-णाणु ॥५॥
एँहु सो चम्पउ किण्ण णियच्छिउ । मुणि सुव्वउ स-णाणु जहिँ अच्छिउ॥६॥
इय उत्तिम-तरु इन्दु वि वन्दइ । जणु कज्जेण तेण अहिणन्दइ' ॥७॥
एम चवन्त पत्त बल-लक्खण । जहिँ कुलभूसण-देसविहूसण ॥८॥
दिवस चयारि अणङ्ग-वियारा । पडिमा-जोगें थक्क भडारा ॥९॥

घत्ता

वेन्तर-घोणसेँहिँ आसीविसेँहिँ अहि-विच्छिय-वेल्लि-सहासेँहिँ ।
वेढिय वे वि जण सुह-लुद्ध-मण पासण्डिय जिह पसु-पासेँहिँ ॥१०॥

[६]

जं दिट्ठु असेसु वि अहि-णिहाउ । बलएउ भयङ्करु गरुडु जाउ ॥१॥
तोणीर-पक्खु वइदेहि-चञ्चु । पक्खुज्जल-सर-रोमञ्च-कञ्चु ॥२॥
सोमित्ति-वियड-विप्फुरिय-वयणु । णाराय-तिक्ख-णिट्ठुरिय-णयणु ॥३॥
दोण्णि वि कोवण्डइँ कण्ण दो वि । थिउ राहउ भीसणु गरुडु होवि ॥४॥
तं णयण-कडक्खेँ वि दुग्गमेहिँ । परिचिन्तिउ कज्जु भुअङ्गमेहिँ ॥५॥
'लहु णासहुँ किं णर-संगमेण । खज्जेसहुँ गरुड-विहङ्गमेण' ॥६॥
एत्थन्तरेँ विहडिय अहि मयन्ध । गय खयहोँ णाइँ मुणि-कम्मबन्ध ॥७॥
भय-भीय विसन्थुल मणेंण तट्ठ । खर-पवण-पहय घण जिह पणट्ठ ॥८॥

[५] यह अच्छे पत्तोंवाली पाटली लता है जिसकी छायामें वासुपूज्यको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। ये वे जामुन और पीपल के वृक्ष हैं जिनके नीचे विमलनाथ और अनन्तनाथ ज्ञानसे समर्थ हुए थे। वे दधिपर्ण और नन्दीवृक्ष हैं जिनके नीचे धर्मनाथ और शान्तिनाथ ज्ञानसे समृद्ध हुए। ये वे तिलक और सहकार वृक्ष दिखाई दे रहे हैं जहाँ कुँथुनाथ और अरहनाथको ज्ञानकी उत्पत्ति हुई। यह वह अशोक वृक्ष है जहाँ मल्लिनाथ जिनने केवलज्ञान-प्राप्त किया। क्या तुम वह चंपक पेड़ नहीं देख रही हो जहाँ केवल ज्ञानी, मुनिसुव्रत ध्यानके लिए बैठे थे। इस उत्तम वृक्षकी तो इन्द्र तक वन्दना करता है और इसीलिए लोग भी इसका अभिनन्दन करते हैं।" इस प्रकार बातें करते हुए वे लोग वहाँ पहुँचे जहाँपर भट्टारक, जितकाम, देशभूषण और कुलभूषण मुनि प्रतिमा योगध्यानमें लीन बैठे थे। शुद्धमन वे दोनों यति घूरते हुए व्यन्तर देवों, विषाक्त साँपों-बिच्छुओं और लताओंसे इस प्रकार घिरे हुए थे जैसे पाखंडीजन घर, स्त्री आदि परिग्रहसे घिरे रहते हैं ॥१-१०॥

[६] रामने जब वहाँ सब ओर सर्प-समूह देखा तो स्वयं भयङ्कर गरुड़ बनकर बैठ गये। तूणीर उनके पंख थे, सीतादेवी चोंच थीं। रोमांच और कंचुक उजले पंखके बाण थे। लक्ष्मण ही खुला हुआ विकट मुख था। तीखे तीर डरावने नेत्र थे। दोनोंके दो धनुष, उस (गरुड़) के कान थे। इस तरह राम भीषण गरुड़ का रूप धारण करके बैठ गये। उस (रामरूपी गरुड़) को देखकर सर्पोंके लिए अपने प्राणोंकी चिन्ता होने लगी कि इस नरसंगममें हम शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। यह गरुड़ पक्षी हमें खा लेगा। इस प्रकार उन सर्पोंका नाश वैसे ही हो गया जैसे मुनिके कर्मबन्धका नाश हो जाता है। मनसे त्रस्त, भयभीत और कातर वे ध्वस्त होने

घत्ता

वेल्ली-सङ्कुलहों वंसत्थलहों विसहर-फुक्कार-करालहों ।
जाय पगास रिसि णहें सूर-ससि उम्मिल्ल णाइँ घण-जालहों ॥९॥

[७]

अहि-णिवहु जं जें गउ ओसरें वि । मुणि वन्दिय जोग-भत्ति करें वि ॥१॥
जे भव-संसारारिहिँ डरिय । सिव-सासय-गमणहों अइतुरिय ॥२॥
विहिँ दोसहिँ जे ण परिग्गहिय । विहिँ वज्जिय विहिँ झाणहिँ सहिय ॥३॥
तिहिँ जाइ-जरा-मरणेंहिँ रहिय । दंसण - चारित्त - णाण - सहिय ॥४॥
जे चउगइ-चउकसाय-महण । चउ-मङ्गल-कर चउ-सरण-मण ॥५॥
जे पञ्च-महव्वय-दुधर-धर । पञ्चेन्दिय-दोस-विणासयर ॥६॥
छत्तीस-गुणड्ढि-गुणेंहिँ पवर । छज्जीव-णिकायहुँ खन्ति-कर ॥७॥
जिय जेहिँ सभय सत्त वि णरय । जे सत्त सिवङ्कर अणवरय ॥८॥
कमट्ठ - मयट्ठ - दुट्ठ - दमण । अट्ठविह-गुणड्ढी-सरसवण ॥९॥

घत्ता

एक्केक्कोत्तरिय इय गुण-भरिय पुणु वन्दिय वल-गोविन्देंहिँ ।
गिरि-मन्दिर-सिहरें वर-वेइहरें जिण-जुवलु व इन्द-पडिन्देंहिँ ॥१०॥

[८]

भावें तिहि मि जणेंहिँ धम्मज्झणु । किउ चन्दण-रसेण सम्मज्जणु ॥१॥
पुप्फच्चणिय छुद्ध-सयवत्तेंहिँ । पुणु आढत्तु गेउ मुणि-भत्तेंहिँ ॥२॥
रामु सुघोस वीण अप्फालइ । जा मुणिवरहु मि चित्तइँ चालइ ॥३॥
जा रामउरिहिँ आसि रवण्णी । तूसेंवि पूयण-जक्खें दिण्णी ॥४॥
लक्खणु गाइ सलक्खणु गेउ । सत्त वि सर ति-गाम-सर-भेउ ॥५॥
एक्कवीस वर-मुच्छण-ठाणइँ । एक्कुणपञ्चास त्ति सर-ताणइँ ॥६॥

लगे। उसके अनंतर, लताओंसे संकुल, और सर्पोंकी फूत्कारोंसे कराल उस वंशस्थल प्रदेशमें प्रकाश करते हुए उसी प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार मेघमुक्त आकाशमें सूर्य और चन्द्र चमकते हैं ॥१-६॥

[७] सर्पसमूहका नाश होने पर रामने उचित भक्तिके साथ मुनिकी वन्दना की कि "आप दोनों ही भवसागरसे डरे हुए मोक्ष जानेकी शीघ्रतामें हैं, आप दोनों दोषरहित और दृढ़ हैं। दोनों ही ध्यानमें स्थित जन्म, जरा और मृत्यसे हीन हैं। दर्शन ज्ञान और चारित्रसे संपन्न चारों गतियों और कषायोंका नाश करनेवाले धर्मकी शरण अपने मानसमें धारण करनेवाले, पाँच महाकठोर व्रतोंके पालक, पाँचो ही इन्द्रियोंके दोषोंको दूर करनेवाले, छत्तीस उत्तम गुणोंसे सम्पन्न, छह प्रकारके निकायोंके जीवोंके प्रति क्षमाशील, सप्त महाभयङ्कर नरकोंके विजेता, सप्त कल्याणोंको निरन्तर धारण करनेवाले, दुष्ट आठ कर्मोंका नाश करनेवाले आप आठगुण-ऋद्धियोंसे परिपूर्ण हैं।" इस प्रकार एकसे एक उत्तम गुणोंसे भरपूर उन मुनियोंकी उसी तरह वन्दना-भक्ति की जिस तरह, मंदराचलकी वेदी पर इन्द्र और उपेन्द्र वाल जिनकी वन्दना-भक्ति करते हैं ॥१-१०॥

[८] फिर राम लक्ष्मणने भावपूर्वक धर्मलाभ किया और स्वच्छ कमलोंसे उनकी पुष्प-पूजा की। तदनन्तर मुनियोंकी भक्तिसे प्रेरित होकर उन्होंने गीत प्रारम्भ किया। और मुनियोंके मनको डगमगा देनेवाले सुघोष वीणाका वादन किया। यह वही सुन्दर वीणा थी जिसे राम-पुरीमें प्रसन्न होकर पूतन यक्षने रामको प्रदान की थी। लक्ष्मणने शास्त्रीय संगीत प्रारम्भ किया। उसमें सात स्वर, तीन ग्राम और दूसरे दूसरे स्वर-भेद थे। मूर्छनाके सुन्दर इक्कीस स्थान और उनचास स्वर-तानें थीं। तालपर

ताल-विताल पणच्चइ जाणइ । णव रस अट्ठ भाव जा जाणइ ॥७॥
दस दिट्ठिउ वावीस लयाइँ । भरहें भरह-गविट्ठइँ जाइँ ॥८॥

घत्ता

भावें जणय-सुय चउसट्ठि भुय दरिसन्ति पणच्चइ जावँ हिँ ।
दिणयर-अत्थवणेँ गिरि-गुहिल-वणेँ उवसग्गु समुट्ठिउ तावँ हिँ ॥९॥

[९]

तो कोवग्गि-करम्बिय - हासइँ । दिट्ठइँ णहयलेँ असुर-सहासइँ ॥१॥
अण्णइँ विप्फुरियाहर-वयणइँ । अण्णइँ रत्तुम्मिल्लिय-णयणइँ ॥२॥
अण्णइँ पिङ्गङ्गइँ पिङ्गक्खइँ । अण्णइँ णिम्मंसइँ दुप्पेक्खइँ ॥३॥
अण्णइँ णहेँ णच्चन्ति विवत्थइँ । अण्णइँ तहिँ चामुण्ड-विहत्थइँ ॥४॥
अण्णइँ कङ्कालइँ वेयालइँ । कत्तिय-मडय-करइँ विकरालइँ ॥५॥
अण्णइँ मसि-वण्णइँ अपसत्थइँ । णर-सिर-माल - कवाल-विहत्थइँ ॥६॥
अण्णइँ सोणिय-मइर पियन्तइँ । णच्चन्तइँ घुम्मन्त-घुलन्तइँ ॥७॥
अण्णइँ किलकिलन्ति चउ-पासेँ हिँ । अण्णइँ कहकहन्ति उवहासेँ हिँ ॥८॥

घत्ता

अण्णइँ भीसणइँ दुद्दरिसणइँ 'मरु मारि मारि' जम्पन्तइँ ।
देसविहूसणहँ कुलभूसणहँ आयइँ उवसग्गु करन्तइँ ॥९॥

[१०]

पुणु अण्णइँ अण्णण्ण-पयारेँ हिँ । ढुक्कइँ विसहर-फण-फुक्कारेँ हिँ ॥१॥
अण्णइँ जम्बुव-सिव-फेक्कारेँ हिँ । वसह - फडक्क - मुक्क-ढेक्कारेँ हिँ ॥२॥
अण्णइँ करिवर-कर - सिक्कारेँ हिँ । सर-सन्धिय-धणु-गुण - टङ्कारेँ हिँ ॥३॥
अण्णइँ गद्दह - मण्डल-सद्देँ हिँ । अण्णइँ बहुविह-भेसिय-णद्दे हिँ ॥४॥
अण्णइँ गिरिवर-तरुवर-घाएँ हिँ । पाणिय-पाहण - पवणुप्पाएँ हिँ ॥५॥
अण्णइँ अमरिस-रोस-फुरन्तइँ । णयणेँ हिँ अग्गि-फुलिङ्ग मुयन्तइँ ॥६॥

सीता नाच रही थीं। वह भी नौ रस, आठ भाव, दस दृष्टियों और बाईस लयोंको जानती थीं। इन सबका भरतके नाट्यशास्त्रमें भलीभाँति वर्णन है। इस प्रकार चौसठ हस्त-कलाओंका प्रदर्शन करती हुई सीतादेवी जब नाच रही थीं, तभी सूर्यास्त होने पर उस गहन वनमें फिर घोर उपसर्ग होने लगा ॥ १–६ ॥

[६] क्रोधसे भरे हुए हजारों राक्षस आकाशमें दिखाई देने लगे। उनमेंसे कितनों ही के अधर और मुख काँप रहे थे। कईके नेत्र आरक्त थे। कितनोंकी आँखें पीली-पीली थीं। कई निर्मांस और दुर्दर्शनीय हो रहे थे। कितने ही आकाशमें नग्ननृत्य कर रहे थे। कई चामुण्ड हाथमें लिये हुए थे। कितने ही कंकाल और वेताल थे। कई कृत्तिका और शव अपने हाथ रखते थे। कोई अप्रशस्त काले रंगके थे। कईके हाथोंमें मुण्डमाला और खप्पर थे। कई रक्तकी मदिरा पीकर, और नाच-घूमकर मत्त हो रहे थे। कई चारों ओर खिलखिलाकर उपहास कर रहे थे। कितने ही दुर्दर्शनीय 'मारो मारो' चिल्ला रहे थे। इस प्रकार वे सब कुलभूषण और देश-भूषण मुनियोंपर उपसर्ग करनेके लिए आये ॥१–९॥

[१०] दूसरे (उपद्रवी) सर्पके फनों और फूत्कारोंके साथ वहाँ उपसर्ग करने पहुँचे। कितने ही शृगाल और जम्बूककी फेत्कार ध्वनि कर रहे थे। कई गजशुंडके शीत्कार, सरसंधान और धनुषकी डोरीके साथ आये। दूसरे गर्दभ मण्डलकी ध्वनि तथा और और ध्वनियोंके साथ आये। दूसरे पेड़ों और पहाड़ोंके आघात, पानी, पत्थर और पवनका उत्पात करते हुए आये। दूसरे कई, क्रोध और अमर्षसे भरकर आये। कई आँखोंसे चिनगारियाँ बरसाते हुए दस-दस और सौ-सौ मुख बनाकर आये। दूसरे

अण्णइँ दह-वयणइँ सय-वयणइँ । अण्णइँ सहस-मुहइँ वहु-णयणइँ ॥
तहिँ तेहएँ वि कालेँ मइ-विमलहुँ । तो वि ण चलिउ झाणु मुणि-धवलहुँ॥

घत्ता

वहरु सरन्ताइँ पहरन्ताइँ सब्बल-हुलि-हल-मुसलग्गेँहिँ ।
कालेँ अप्पणउ भीसावणउ दरिसाविउ णं वहु-भङ्गेँहिँ ॥९॥

[११]

उवसग्गु णिएँवि हरिसिय-मणेँहिँ । णीसङ्केँहिँ वल-णारायणेँहिँ ॥१॥
सम्भीसेँवि सीय महावलेँहिँ । मुणि-चलण-धराविय करयलेँहिँ ॥२॥
धणुहरइँ विहि मि अप्फालियइँ । णं सुर-भवणइँ संचालियइँ ॥३॥
भुवणइँ भय-भीय - विसण्ठुलइँ । णं रसियइँ णहयल-महियलइँ ॥४॥
तं सद्दु सुणेँवि आसङ्कियइँ । रिउ-चित्तइँ माण-कलङ्कियइँ ॥५॥
धणुहर-टङ्कारेँहिँ वहिरियइँ । णट्ठइँ खल-खुद्दइँ वइरियइँ ॥६॥
णं अट्ठ वि कम्मइँ णिज्जियइँ । णं पञ्चेन्दियइँ पराजियइँ ॥७॥
णं णासेँवि गयइँ परीसहइँ । तिह असुर-सहासइँ दूसहइँ ॥८॥

घत्ता

छुडु छुडु णट्ठाइँ भय-तट्ठाइँ मेल्लेप्पिणु मच्छरु माणु ।
ताव भडाराहुँ वय-धाराहुँ उप्पण्णउ केवल-णाणु ॥९॥

[१२]

ताव मुणिन्दहँ णाणुप्पत्तिएँ । आय सुरासुर-वन्दणहत्तिएँ ॥१॥
जेहिँ कित्ति तइलोक्कें पगासिय । जोइस वेन्तर भवण-णिवासिय ॥२॥
पहिलउ भावण सङ्ख-णिणद्दें । वेन्तर तूरयफालिय - सद्दें ॥३॥
जोइस-देव वि सीह-णिणाएं । कप्पामर जयघण्ट - णिणाएं ॥४॥
संचलिएं चउ-देवणिकाएं । छाइउ णहु णं घण-संघाएं ॥५॥
वहइ विमाणु विमाणें चप्पिउ । वाहणु वाहण-णिवह-झडप्पिउ ॥६॥

हजारों मुखों और असंख्य नेत्रोंको बनाकर आये। यह सब होनेपर भी उन विमलबुद्धि दोनों मुनियोंका ध्यान डिगा नहीं। (आततायी) सब्बल हलि हल और मूसलसे प्रहार कर रहे थे, अपनी तरह-तरह की भंगिमाओंसे वे यमकी तरह कराल जान पड़ रहे थे ॥१–६॥

[११] उस भयानक उपसर्गको देखकर हर्षितमन, निःशंक, महाबली राम और लक्ष्मणने सीताको अभयवचन दिया और अपने करतलसे मुनियोंके चरण-कमल पकड़कर, दोनों धनुप चला दिये। उनकी कठोर ध्वनिसे सुमेरु पर्वत भी हिल उठा। धरती और आसमान दोनों भयकातर हो गूँज उठे। उस शब्दसे शत्रुओंके हृदय दहल गये। उनका मान खण्डित हो गया। उन धनुपोंकी टंकारसे बड़े-बड़े क्षुब्ध राक्षस वैसे ही प्रणष्ट हो गये जिस प्रकार जिनके द्वारा आठ कर्म और पाँचों इन्द्रियों विजित कर ली जाती हैं। इस प्रकार मान और मत्सरसे भरे हुए राक्षसोंके नष्ट होते होते, उन व्रतधारी मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥१–९॥

[१२] तब सुर और असुर उनकी वन्दना भक्तिके लिए आये। और उनकी कीर्ति चारों लोकोंमें फैल गई। ज्योतिप, भवन और व्यंतरवासी देव आने लगे। सबसे पहले भवनवासी देवोंने शङ्खध्वनि की। फिर व्यन्तर देवोंने अपना तूर्य बजाया और ज्योतिप देवोंने सिंहनाद किया तथा कल्पवासी देवोंने जय-घण्टोंका निनाद किया। इस प्रकार चारों निकायोंके देवोंके प्रस्थान करते ही आकाश इस प्रकार ढक गया मानो मेघोंसे ही आच्छन्न हो उठा हो। विमान विमानको चापकर उड़ रहे थे। सवारीसे सवारी टकरा गई। अश्वोंसे अश्व और रथोंसे रथ अवरुद्ध हो उठे।

तुरउ तुरङ्गमेण ओमाणिउ । सन्दणु सन्दणेण संदाणिउ ॥७॥
गयवरु गयवरेण पडिखलियउ । लग्गेँ वि मउडें मउडु उच्छलियउ ॥८॥

घत्ता

भावेँ पेल्लियउ भय-मेल्लियउ सुर-साहणु लीलऍ आवइ ।
लोयहुँ मूढाहुँ तमेँ छूढाहुँ णं धम्म-रिद्धि दरिसावइ ॥९॥

[१३]

ताव पुरन्दरेण अइरावउ । साहिउ जण-मण-णयण-सुहावउ ॥१॥
सोह दिन्तु चउसट्ठी-णयणेँहिँ । गुलगुलन्तु बत्तीसहिँ वयणेँहिँ ॥२॥
वयणेँ वयणेँ अट्ठट्ठ विसाणइँ । णाइँ सुवण्ण-णिबद्ध-णिहाणइँ ॥३॥
एक्कक्कऍ विसाणेँ जण-मणहरु । एक्केक्कउ जेँ परिट्ठिउ सरवरु ॥४॥
सरेँ सरेँ सर-परिमाणुप्पण्णी । कमलिणि एक्क-एक्क णिप्पण्णी ॥५॥
एक्केक्कहेँ पउमिणिहेँ विसालइँ । पङ्कयाइँ बत्तीस स-णालइँ ॥६॥
कमलेँ कमलेँ बत्तीस जि पत्तइँ । पत्तेँ पत्तेँ णट्टाइ मि तेत्तइँ ॥७॥
वड्ढिउ जम्बूदीव - पमाणेँ । पुणु जि परिट्ठिउ तेण जि थाणेँ ॥८॥
तहिँ दुग्घोट्टें चडेँवि सुर-सुन्दरु । वन्दणहत्तिऍ आउ पुरन्दरु ॥९॥
पुरउ सुरिन्दहोँ णयणाणन्देंहिँ । गुरु पोमाइउ वन्दिण-वन्देंहिँ ॥१०॥

घत्ता

देवहोँ दाणवहोँ खल-माणवहोँ रिसि चलणेँहिँ केव ण लग्गहोँ ।
जेहिँ तवन्तऍहिँ अचलन्तऍहिँ इन्दु वि अवयारिउ सग्गहोँ ॥११॥

[१४]

जिणवर-चलण-कमल-दल-सेवहिँ । केवल-णाण-पुज्ज किय देवहिँ ॥१॥
भणइ पुरन्दरु अहोँ अहोँ लोयहोँ । जइ सक्किय जर-मरण-विओयहोँ ॥२॥
जइ णिव्विण्णा चउ-गइ-गमणहोँ । तो किं ण ढुक्कहो जिणवर-भवणहोँ ॥३॥
पुत्तु कलत्तु जाव मणेँ चिन्तहोँ । जिणवर-बिम्बु ताव किं ण चिन्तहोँ ॥४॥

गजसे गज और मुकुटसे मुकुट टकराकर उछल पड़े। भावविह्वल और अभय देवसेना वहाँ इस तरह आई मानो मूढलोकका अन्धकार दूर करनेके लिए धर्मऋद्धि ही चारों ओर बिखर गई हो ॥१–६॥

[१३] तब इन्द्रने भी अपना ऐरावत हाथी सजाया। जनोंके मन और नेत्रोंके लिए सुहावने उस गजकी चौसठ आँखें अत्यन्त शोभित हो रही थीं। अपने बत्तीस मुखोंसे वह गुरगुरा रहा था। उसके एक-एक मुखमें आठ-आठ दाँत थे जो स्वर्णिम निधानकी तरह लगते थे। एक-एक दाँतपर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवरमें उसीके अनुरूप आकार-प्रकारकी कमलिनी थी। एक-एक कमलिनीपर मृणालसहित बत्तीस कमल थे। एक-एक कमलमें बत्तीस पत्ते थे और पत्ते-पत्तेपर उतनी ही अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। जम्बूद्वीप प्रमाण वह गज अपने स्थानसे चल पड़ा। उसपर सुरसुन्दर पुरन्दर भी मुनिकी वन्दना-भक्ति करनेके लिए आया। इन्द्रके सम्मुख नयनानन्द दायक देवसमूहने जिनकी स्तुति प्रारम्भ की। देव, दानव, खल और मनुष्योंमें उस समय कौन ऐसा था जो उन मुनियोंके चरणोंमें नत न हुआ हो और तो और, स्वयं इन्द्र तकको स्वर्गसे उतरकर आना पड़ा ॥१–११॥

[१४] जिनवरके चरण-कमलोंके सेवक देवोंने केवलज्ञानी उन मुनियोंकी खूब अर्चना की। फिर इन्द्रने कहा—"अरे, अरे! तुम्हें यदि जन्म, जरा, मरण और वियोगसे आशंका हो, और यदि तुम चारगतियोंके भ्रमणसे छूटना चाहते हो तो जिनवर भवनकी शरणमें क्यों नहीं आते। जितनी पुत्र-कलत्रकी अपने मनमें चिन्ता करते हो उतनी जिन-प्रतिमाकी चिन्ता क्यों नहीं करते। जितना तुम मांस और कामका चिन्तन करते हो, उतना जिन-शासनका

चिन्तहों जाव मासु मयरासणु । कि ण चिन्तवहों ताव जिणसासणु ॥५॥
चिन्तहों जाव रिद्धि सिय सम्पय । कि ण चिन्तवहों ताव जिणवर-पय ॥६॥
चिन्तहों ताव रूउ धणु जोव्वणु । धण्णु सुवण्णु अण्णु घरु परियणु ॥७॥
चिन्तहों जाव वलिउ भुव-पञ्जरु । कि ण चिन्तवहों ताव परमक्खरु ॥८॥

घत्ता

पेक्खहु धम्म-फलु चउरङ्गवलु पयहिण ति-वार देवाविउ ।
स इँ भु वणेसरहों परमेसरहों अत्थक्कएँ सेव कराविउ' ॥९॥

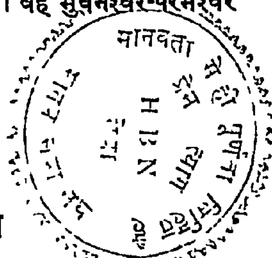
[३३. तेत्तीसमो संधि]

उप्पणएँ णाणेँ पुच्छइ रहु-तणउ ।
'कुलभूसण-देव किं उवसग्गु कउ' ॥

[१]

तं णिसुणेँवि पभणइ परम-गुरु । 'सुणु जक्खथाणु णामेण पुरु ॥१॥
तहिँ कासव-सुरव महाभविय । एयारह - गुणथाणगविय ॥२॥
एक्कोवर किङ्कर पुरवइहें । णं तुम्बुरु-णारय सुरवइहेँ ॥३॥
हम्मन्तु विहङ्गमु लुद्धएँहिं । परिरक्खिउ तेहिँ पवुद्धएँहिं ॥४॥
खगवइ तुणु वहुकालेण मुउ । विञ्झाचलेँ भिल्लाहिवइ हुउ ॥५॥
तो कासव-सुरव वे वि मरेँवि । थिय अभियसरहों घरेँ ओअरेँवि ॥६॥
उवओवादेविहें दोहलेंहिं । उप्पण्णा वड्ढहिँ सोहलेंहिं ॥७॥
वद्धावउ आयउ वन्धुजणु । किउ उइय-मुइय णामग्गहणु ॥८॥

चिन्तन क्यों नहीं करते ? जितनी चिन्ता तुम ऋद्धि, श्री और सम्पदा की करते हो उतनी जिनवरके चरणोंकी क्यों नहीं करते ? जितनी चिन्ता तुम्हें रूप, धन और यौवनकी है, और भी धान्य, सुवर्ण, घर और परिजनोंकी है, जितनी चिन्ता तुम्हें नश्वर भव-पञ्जर (शरीर) की है, उतनी चिन्ता परमाक्षरोंवाले (जिनवर) की क्यों नहीं है ? जरा, धर्मका फल तो देखो कि चतुरंग देवसेना मुनिवरकी तीन वार प्रदक्षिणा दे रही है। वह भुवनेश्वर-परमेश्वर जिनकी सेवा कर रही है ॥१-६॥



•

तेतीसवीं संधि

केवलज्ञान उत्पन्न होने पर रामने पूछा, "कुलभूषण देव आप पर यह उपसर्ग क्यों हुआ।"

[१] यह सुनकर वह परम गुरु बोले, "सुनो बताता हूँ। यक्षस्थानपुर नामका एक नगर था। उसमें कर्षक और सूरप नामके दो ग्यारह प्रतिमाधारी भाई रहते थे। वे दोनों एक राजाके उसी प्रकार अनुचर थे जिस प्रकार इन्द्रके तुम्बुरु और नारद अनुचर हैं। प्रवुद्ध उन दोनोंने एक दिन व्याधसे आहत एक पक्षी की रक्षा की। बहुत दिनोंके वाद मरने पर वह पक्षी विंध्याटवीमें भिल्लराज हुआ। सूरप और कर्षक, दोनों भाई भी मरकर राजा अमृतसरकी पत्नीसे उत्पन्न हुए। उनके जन्म दिनका उत्सव खूब धूमधामसे मनाया गया। बन्धुजन बधाई देने आये। उनके

घत्ता

णं अमर-कुमार छुडु सग्गहों पडिय ।
णाणङ्कुस-हत्थ जोव्वण-गएँ चडिय ॥६॥

[२]

तो पउमिणिपुर - परमेसरहों । दरिसाविय विजय-महीहरहों ॥१॥
तेण वि णिय-सुअहों जयन्धरहों । किय किङ्कर वड्डिय-रणभरहों ॥२॥
अच्छन्ति जाम भुञ्जन्ति सिय । तो ताम जणेरहों गमण-किय ॥३॥
पट्ठविउ णरिन्दें अमियसरु । अइभूमि - लेह - रिञ्छोलि-धरु ॥४॥
वसुभूइ सहेज्जउ तासु गउ । तें णवर पाण-विच्छोउ कउ ॥५॥
पल्लट्टइ पल्लट्टिउ भणेंवि । ते उइय-मुइय तिण-समु गणेंवि ॥६॥
सो उवउवाएँवि सहुँ जियइ । अमिओवमु अहर-पाणु पियइ ॥७॥
परियाणेंवि जेट्ठें दुच्चरिउ । वसुभूइहें जीविउ अवहरिउ ॥८॥

घत्ता

उप्पण्णउ विञ्झें होप्पिणु पल्लिवइ ।
पुव्वक्किउ कम्मु सव्वहों परिणवइ ॥९॥

[३]

जय-पव्वय - पवरुज्जाणु जहिं । रिसि-सङ्घु पराइउ ताव तहिं ॥१॥
किय रुक्खें रुक्खें आवास-किय । णं रुक्खें रुक्खें अवइण्ण सिय ॥२॥
संजायइँ अङ्गइँ कोमलइँ । अहियइँ पण्णइँ फुल्लइँ फलइँ ॥३॥
रिसि रुक्ख व अविचल होवि थिय । किसलएँ परिवेढावेढि किय ॥४॥
रिसि रुक्ख व तवण-ताव तविय । रिसि रुक्ख व मूल-गुणग्घविय ॥५॥

नाम उदित और मुदित रक्खे गये। वे दोनों ऐसे प्रतीत होते थे मानो अमर कुमार ही स्वर्गसे अवतरित हुए हों। धीरे-धीरे वे यौवनरूपी महागज पर आरूढ़ हो चले। तो भी उन पर विवेक का अंकुश उनके हाथमें था ॥१-६॥

[२] (कुछ समयके बाद) पिताने पद्मिनीपुरके राजा विजयको अपने पुत्र दिखाये। उसने उन दोनोंको युद्धभार उठानेमें समर्थ जानकर अपने पुत्र जयन्धरका अनुचर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार सम्पदाका उपभोग करते हुए वे दोनों रहने लगे। एक दिन उनके पिता अमृतसरको (किसी कामसे) बाहर जाना पड़ा। राजाने उसे भूमिसंबन्धी कोई लेखमाला देकर बहुत दूर भेजा। वसुभूति नामका ब्राह्मण भी उसके साथ गया। वह वहाँ (परदेशमें) कुछ और नहीं कर सका तो अमृतसरके प्राणोंको ही समाप्त कर बैठा। (उसका अमृतसरकी पत्नीसे अनुचित सम्बन्ध था) वहाँसे लौटकर पतिको मरा समझ वह ब्राह्मण उसकी पत्नीके साथ आनन्दोपभोग करने लगा। उसे उदित-मुदितकी जरा भी परवाह नहीं थी। वह इस प्रकार उपभोगके साथ अधरामृतका पान करने लगा। तब बड़े भाईने उसे दुश्चरित्र समझकर मार डाला। वह भी मरकर विंध्याटवीमें भीलोंका राजा हुआ। पूर्वकृत कर्म सभीको भोगने पड़ते हैं ॥१-६॥

[३] इसी बीच राजा विजयके उद्यानमें एक मुनि संघका आगमन हुआ। वृक्षोंके नीचे निवास करता हुआ वह संघ ऐसा जान पड़ता था मानो वृक्षोंके नीचे श्री ही अवतरित हुई हो। उनके अंकुर कोमल हो गये। नये पत्ते, फल और फूल आ गये। मुनि वृक्षोंकी ही भाँति अपने ध्यानमें अचल थे। पेड़ोंके पल्लव

रिसि रुक्ख व आलवाल-रहिय । रिसि रुक्ख व मोक्ख-फलब्भहिय ॥६॥
गउ णन्दणवणिउ तुरन्तु तहिँ । सो विजय-महीहर-राउ जहिँ ॥७॥
"परमेसर केसरि - विक्कमेंहिँ । उज्जाणु लइउ जइ-पुङ्गवेंहिँ ॥८॥

घत्ता

वारन्तहों मज्झु उम्मग्गिम करेंवि ।
रिसि-सीह-किसोर (व) थिय वणेँ पइसरेंवि" ॥९॥

[४]

तं णिसुणेंवि णरवइ गयउ तहिँ । आवासिउ महरिसि-सत्थु जहिँ ॥१॥
वोल्लाविय अहों "अहों मुणिवरहों । अवुहहों अयाण - परमक्खरहों ॥२॥
परमप्पउ अप्पउ होवि थिउ । कज्जेण केण रिसि-वेसु किउ ॥३॥
अइदुल्लहु लहेंवि मणुअत्तणउ । कें कज्जें विणडहों अप्पणउ ॥४॥
कहों केरउ परम-मोक्ख-गमणु । वरि माणिउ मणहरु तरुणियणु ॥५॥
सच्छाइँ आयइँ अङ्गाइँ । सोलह - आहरणहँ जोग्गाइँ ॥६॥
विच्छिण्णइँ आयइँ कडियलइँ । हय - गय-रह - वाहण-पचलइँ ॥७॥
लायण्णाइँ रूवइँ जोव्वणइँ । णिप्फलइँ गयइँ तुम्हहँ तणइँ ॥८॥

घत्ता

सुपसिद्ध लोएँ एक्क वि तउ ण कउ ।
पुम्हाण किलेसु सयलु णिरत्थु गउ" ॥९॥

[५]

तो मोक्ख-रुक्ख - फल - वद्धणेंण । महिपालु वुत्तु मइवद्धणेंण ॥१॥
"पइँ अप्पउ काइँ विडम्वियउ । अच्छहि सुह - दुक्ख-करम्वियउ ॥२॥
कहों घरु कहो पुत्त-कलत्ताइँ । धय चिन्धइँ चामर-छत्ताइँ ॥३॥

उन्हें बार-बार ढक लेते थे। वह वृक्षकी ही तरह तपनशील (तप और घामको सहनेवाले) उन्हींकी तरह मूलगुणों (अट्ठाईस मूल गुण और जड़) से महान् थे। फिर भी वे महामुनि वृक्षोंके समान आलवाल (परिग्रह और लता आदि) से रहित थे। परन्तु फल (मोक्ष) से सहित थे। उन्हें देखकर वनपाल राजा विजयके पास दौड़ा गया और जाकर बोला, "परमेश्वर सिंहकी भाँति पराक्रमी, उत्तम मुनियोंने बलात् उद्यानमें प्रवेश कर लिया है।" मना करने पर भी वे वैसे ही भीतर घुस आये हैं जैसे किशोर सिंह वनमें घुस आता है ॥१-६॥

[४] यह सुनते ही राजा वहाँ जा पहुँचा जहाँ वह मुनि-संघ विराजमान था। जाकर उसने भर्त्सना करते हुए कहा, "अरे अपण्डित परममूर्ख यतिवरो! तुम तो स्वयं परमात्मा बनकर बैठे हो। तुमने मुनिका यह वेष किस लिए बनाया? अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर पाकर उसका नाश क्यों कर रहे हो? फिर परममोक्ष किसने आज तक प्राप्त किया? इसलिए सुन्दर स्त्री-जनको ही बढ़िया समझो। ये सुन्दर कान्तिमय अङ्ग सोलह शृङ्गारके योग्य हैं। यह चौड़ा कटिभाग हय, गज और रथोंकी सवारीके लिए है। तुम्हारा लावण्य, रूप और यौवन सभी कुछ व्यर्थ गया। लोकमें प्रसिद्ध (मौजकी) तुमने एक भी बात नहीं की। तुम्हारा यह सब क्लेश उठाना एक प्रकारसे व्यर्थ गया ॥१-६॥

[५] तब मोक्ष महावृक्षके फलको बढ़ानेवाले मतिवर्धन नामके यतिने राजासे कहा "तुम अपनी विडम्बना क्यों कर रहे हो, सुख-दुखमें सने क्यों बैठे हो, किसका यह घर, किसके पुत्र-

स-विमाणइँ जाणइँ जोग्गाइँ । रह तुरय - महग्गय - दुग्गाइँ ॥४॥
धण-धण्णइँ जीविय-जोव्वणइँ । जल-कीलउ पाणइँ उववणइँ ॥५॥
वइसणउ वसुन्धरि वज्जाइँ । णउ कासु वि होन्ति सहेज्जाइँ ॥६॥
आयहिँ वहुयहिँ वेयारियइँ । वम्भाणहँ लक्खइँ मारियइँ ॥७॥
सुरवइहिँ सहासइँ पाडियइँ । चक्कवइ-सयइँ णिद्धाडियइँ ॥८॥

घत्ता

एय वि अवरे वि कालें कवलु किय ।
सिय कहों समाणु एक्कु वि पउ ण गय" ॥९॥

[६]

परमेसरु पुणु वि पुणु वि कहइ । "जिउ तिण्णि अवत्थउ उव्वहइ ॥१॥
उप्पत्ति - जरा - मरणावसरु । पहिलउ जें णिवद्धउ देह-घरु ॥२॥
पुग्गल-परिमाण - सुत्तु धरेँवि । कर-चलण चयारि खम्भ करेँवि ॥३॥
वहु-अत्थि जि अन्तहिँ ढङ्कियउ । मासिट्टु चम्म-छुह - पङ्कियउ ॥४॥
सिर - कलसालङ्किउ संचरइ । माणुसु वर-भवणहों अणुहरइ ॥५॥
तरुणत्तणु जाम ताम वहइ । पुणु पच्छएँ जुण्ण-भाउ लहइ ॥६॥
सिरु कम्पइ जम्पइ ण वि वयणु । ण सुणन्ति कण्ण ण णियइ णयणु ॥७॥
ण चलन्ति चलण ण करन्ति कर । जर-जज्जरिहोइ सरीरु पर ॥८॥

घत्ता

पुणु पच्छिम-कालें णिवडइ देह-घरु ।
जिउ जेम विहङ्गु उड्डइ मुएँ वि तरु ॥९॥

[७]

तं णिसुणेँवि णरवइ उवसमिउ । णिय-णन्दणु णिय-पएँ सण्णिमिउ ॥१॥
अप्पुणु पुणु भाव-गाह-गहिउ । णिक्खन्तु णराहिव-सय-सहिउ ॥२॥

कलत्र ? ध्वजचिह्न, चामर, छत्र, विमान, बढ़िया योग्य रथ, अश्व, महागज, दुर्ग, धन-धान्य, जीवित, यौवन, जलक्रीड़ा, प्राण, उपवन, आसन, धरती और हीरा रत्न किसीके भी साथी नहीं होते। इन्होंने बहुतोंको खंडित किया है, लाखों ब्रह्मज्ञानियों ब्राह्मणोंको मार दिया है। इनसे हजारों इन्द्र धराशायी हो गये। सैकड़ों चक्रवर्ती विनष्ट हो गये। इनको और दैत्योंको भी कालने कवलित किया है। सम्पदा किसीके भी साथ एक भी पग नहीं गई ॥१-६॥

[६] तब परमेश्वरने बार-बार यही कहा—"जीवकी तीन अवस्थाएँ होती हैं। जन्म, जरा और मृत्यु। पहले ही (पूर्वजन्ममें) जो जीवने देहरूपी घर किया था (उसका बन्ध किया था।) उन्हीं पुद्गल परमाणुओंके सूत्रको लेकर हाथों और पैरोंके चार खम्भ बनाये जाते हैं फिर बहुत-सी हड्डियों और आंतोंसे उसे ढककर, मांस और चर्मके चूनेसे पोत दिया गया है। फिर सिर रूपी कलशासे अलंकृत होकर वह चलने लगता है। इस तरह मनुष्यका तन एक उत्तम भवनसे मिलता-जुलता है। यौवनको तो यह जिस किसी तरह ढकेलता है पर बादमें जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। सिर काँपने लगता है, मुखसे बात नहीं निकलती। कान सुनते नहीं, आंखें देखती नहीं। पैर चलते नहीं। हाथ काम नहीं करते, केवल शरीर जर्जर हो उठता है। फिर मरण-कालमें यह देहरूप घर ढह जाता है और जीव उससे उसी तरह उड़ जाता है जिस तरह पक्षी पेड़को छोड़कर उड़ जाता है ॥१-६॥

[७] यह सुनकर राजा शान्त हो गया। अपने पुत्रको उसने अपने पदपर नियुक्त कर दिया। वह स्वयं भवरूपी ग्राहसे गृहीत होकर दूसरे सौ राजाओंके साथ दीक्षित हो गया। वहींपर

तहिँ उइय-मुइय णिग्गन्थ थिय। कर-कमलेँहिँ केसुप्पाड किय ॥३॥
पुणु सवण-सङ्घु तहोँ पुरवरहोँ। गउ वन्दणहत्तिएँ जिणवरहोँ ॥४॥
सम्मेयहोँ जन्त जन्त वलिय। पहु छड्डेँवि उप्पहेण चलिय ॥५॥
ते उइय-मुइय दुइ णिव्वडिय। वसुभूइ-भिल्ल-पल्लिहेँ पडिय ॥६॥
धाइउ धाणुक्कु वद्ध-वइरु। गुञ्जाहल-णयणु पीय-मइरु ॥७॥
दुप्पेच्छ-वच्छु थिर-थोर-करु। अप्फालिय धणुहरु गहिर-सरु ॥८॥

घत्ता

वइरइँ ण कुहन्ति होन्ति ण जज्जरइँ।
इउ हणइ णिरुत्तु सत्त-भवन्तरइँ ॥९॥

[८]

हक्कारिय विण्णि वि दुद्धरेण। णिय-वइयर-वइर-विरुद्धएण ॥१॥
"अहोँ संचारिम-णर-वणयरहोँ। कहिँ गम्मइ एवहिँ महु मरहोँ" ॥२॥
तं सुणेँवि महावय-धारएँण। धीरिउ लहुवउ वड्डारएँण ॥३॥
"मं भीहि थाहि अण्णहोँ भवहोँ। उवसग्ग-सहणु भूसणु तवहोँ" ॥४॥
तहिँ तेहएँ विहुरेँ समावडिएँ। अघुरन्धरेँ गरुअ-भारेँ पडिएँ ॥५॥
थिउ खन्धु समइँ वि एक्कु जणु। भिल्लाहिउ अब्भुद्धरण-मणु ॥६॥
जो पुव्व-भवन्तरेँ पक्खियउ। पुरेँ जक्खथाणेँ परिरक्खियउ ॥७॥
तेँ वुच्चइ "लोद्धा ओसरहि। को मारइ रिसि तुहुँ महु मरहि" ॥८॥

घत्ता

वोलाविय तेण कालान्तरेँण मय।
दय चडेँवि णिसेणि लीलएँ सग्गु गय ॥९॥

उदित-मुदित भी दिगम्बर हो गये। अपने करकमलोंसे ही उन्होंने केश लोंच कर लिया। फिर वह श्रमणसंघ उस नगरसे जिनवरकी वंदना-भक्ति करनेके लिए चल पड़ा। परन्तु सम्मेदशिखरजीको जाते-जाते उदित-मुदित दोनों भाई मुड़कर, पथ छोड़कर गलत मार्गपर जा लगे। भूले-भटके वे दोनों वसुमति भीलराजके गांव में पहुँच गये। उन्हें देखते ही आरक्त नेत्र, मदिरा पिये हुए वह वैर-भाव कर उनपर दौड़ा। उसका वक्ष दुर्दर्शनीय था और हाथ स्थूल और विशाल थे। उसने अपना गम्भीर स्वरवाला धनुष चढ़ा लिया। ठीक ही है कि वैर न तो नष्ट होता है और न जीर्ण। यह निश्चित है कि आहत व्यक्ति सात भवान्तरोंमें भी मारता है ॥१-६॥

[८] अपने शत्रुओंके वैरसे विरुद्ध होकर दुर्धर उसने उन दोनोंको ललकारा, "हे हेरिको! कहाँ जाते हो? मैं तुम्हें मारता हूँ।" यह सुनकर महाव्रतधारी बड़े भाईने छोटे भाईको धीरज बँधाते हुए कहा, "डरो मत, दूसरे भवका मनमें विचार करो, उपसर्ग सहन करना ही तपका भूषण है"। उस ऐसे विधुर समयमें, अंधाधुन्ध घोर संकट आ पड़नेपर, एक और भिल्लराज उनके उद्धारकी इच्छासे कन्धा ऊँचा करके स्थित हो गया। यह पूर्व-भवका वही पक्षी था जिसकी यक्षस्थानमें इन्होंने रक्षा की थी। उसने कहा, "अरे लुब्धक, हट। ऋषिको कौन मार सकता है, तू मुझसे मारा जायगा।" इस तरह उसने उससे हमें छुड़वा दिया। कालान्तरमें मरकर वह दयाकी नसैनी चढ़कर लीलापूर्वक स्वर्ग चला गया ॥१-६॥

[९]

पावासउ पउरु पाउ करवि । बहु-कालु णरय-तिरियहिँ फिरॅवि ॥१॥
वसुभूइ-भिल्लु धण-जण-पउरॅ । पट्टणॅ उप्पण्णु अरिट्ठउरॅ ॥२॥
णामेण अणुद्धरु दुद्दरिसु । कणयप्पह-जणणि - जणिय-हरिसु ॥३॥
दुल्लइहोँ णिय-कुल-पच्चयहोँ । णन्दण णरवइहेँ पियव्वयहोँ ॥४॥
ते उइय-मुइय तासु 'जि तणय । विण्णाण - कला - पर-पार-गय ॥५॥
गिरि-धीर महोवहि-गहिर-गुण । पय-पालण रज्ज-कज्ज-णिउण ॥६॥
णामङ्किय रयण-विचित्त - रह । पउमावइ-सुअ ससि-सूर-पह ॥७॥
छद्दिवसइँ सल्लेहणु करॅवि । गउ सग्गु पियव्वउ तहिँ मरॅवि ॥८॥
जगडन्तु अणुद्धरु डामरिउ । रणॅ रयण-विचित्तरहेँ धरिउ ॥९॥

घत्ता

पव्वण्ढहिँ तेहिँ छड्डाविय,डमरु ।
हुउ अवर-भवेण अग्गिकेउ अमरु ॥१०॥

[१०]

बहु-कालें रयण- विचित्तरह । तउ करॅवि मरॅवि परिभमॅवि पह ॥१॥
उप्पण्ण वे वि सिद्धत्थपुरॅ । कण-कञ्चण-जण-धण-पय - पउरॅ ॥२॥
विमलग्गमहिसि - खेमङ्करहुँ । अवरोप्परु णयण - सुहङ्करहुँ ॥३॥
कुलभूसणु पढमु पुत्तु पवरु । लहु देसविहूसणु एक्कु अवरु ॥४॥
अण्णु वि उप्पण्ण एक्क दुहिय । कमलोच्छव रुन्द-चन्द-मुहिय ॥५॥
वेण्णि मि कुमार सालहिँ णिमिय । आयरियहोँ कहोँ वि समुल्लविय ॥६॥
पढमाण जुवाण-भावॅ चडिय । णं दइवें वे अणङ्ग घडिय ॥७॥
वित्थय - वच्छयल पलम्ब-भुअ । णं सग्गहोँ इन्द-पडिन्द चुअ ॥८॥

[९] परन्तु पापाशय वह भीलराज खूब पाप कर, बहुत समय तक नरक और तिर्यञ्च गतियोंमें सड़ता रहा। फिर धन-जनसे पूर्ण अरिष्ट नगरमें उत्पन्न हुआ। उसका नाम था अनुद्धर। दुर्दर्शन वह अपनी मां कनकप्रभाके लिए बहुत हर्षदायक था। वे उदित-मुदित भी, अपने कुलके दुर्लंघ्य पर्वत सदृश प्रियव्रत नामक राजाके पुत्र हुए। वे दोनों ही विज्ञान और कलामें पारङ्गत थे। पर्वतकी तरह धीर, समुद्रकी भांति गम्भीर, प्रजापालन और राज-काजमें निपुण। उनके नाम थे रत्नरथ और विचित्ररथ। शशि और सूर्यकी तरह प्रभावाले वे रानी पद्मावतीसे उत्पन्न हुए थे। (कुछ समयके बाद) छह दिनका सल्लेखना व्रत करके जब उनका पिता प्रियव्रत राजा मरकर स्वर्ग चला गया तब उन दोनों भाइयोंने विद्रोही और झगड़ालू अनुद्धरको पकड़ लिया। और उसका विद्रोह कुचल दिया। मरकर दूसरे जन्ममें वह अग्निकेतु नामका देव हुआ ॥१-९॥

[१०] बहुत कालके अनन्तर रत्नरथ और विचित्ररथ तप करके स्वर्गवासी हुए। और फिर घूम-फिरकर सिद्धार्थपुरमें उत्पन्न हुए। वह नगर धनकण कांचन जन और दुग्धसे खूब भरपूर था। परस्पर एक दूसरेके नेत्रोंके लिए शुभङ्कर विमला और क्षेमङ्कर उनके माता-पिता थे। उनमें बड़ेका नाम कुलभूषण और छोटेका देशभूषण था। एक और कमलोत्सवा नामकी चन्द्रमुखी कन्या उत्पन्न हुई। वे दोनों कुमार शासनमें आचार्य नेमिको सौंप दिये गये। पढ़ लिखकर जब वे युवक हुए तो ऐसे मालूम होते थे जैसे दैवहीने उन्हें गढ़ा हो। उनके वक्षस्थल विशाल, बाहुएँ लम्बी थीं। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो स्वर्गसे इन्द्र उपेन्द्र ही अवतरित हुए

घत्ता

कमलोच्छव ताम कहि-मि समावडिय।
णं वम्मह-भल्लि हियएँ झत्ति पडिय ॥९॥

[११]

कुलभूसण - देसविहूसणहुँ। णिय-वहिणि-रूव - पेसिय-मणहुँ ॥१॥
पडिहाइ ण चन्दण-लेव-छवि। धवलामल-कोमल-कमलु ण वि ॥२॥
ण वि जलु जलद दाहिण-पवणु। कुसुमाउहेण ण णडिउ कवणु ॥३॥
पेक्खेप्पिणु पयइँ सु-कोमलइँ। ण सहन्ति रूढ - रत्तुप्पलइँ ॥४॥
पेक्खेवि थणवट्टइँ चक्कलइँ। उच्चिट्ठइँ करि - कुम्भत्थलइँ ॥५॥
पेक्खेप्पिणु मुहु बालहें तणउ। पडिहाइ ण चन्दणु चन्दिणउ ॥६॥
लोयणइँ रूव पङ्गुत्ताइँ। ढोरा इव कद्दमें खुत्ताइँ ॥७॥
पेक्खेप्पिणु केस-कलाउ मणें। ण सुहन्ति मोर णच्चन्त वणें ॥८॥

घत्ता

दिट्ठि-विस वाल सप्पहों अणुहरइ।
जो जोअइ को वि सो सयलु वि मरइ ॥९॥

[१२]

तहिँ अवसरें पणइहिँ पहु भणिउ। खेमङ्कर तुहुँ जणणिएँ जणिउ ॥१॥
तुहुँ महियलेँ धण्णउ एक्कु पर। कमलोच्छव दुहिय जासु पवर ॥२॥
कुल-देसविहूसण जमल सुय। तं णिसुणेंवि णाइँ कुमार मुय ॥३॥
हय-हियय काइँ चिन्तवसि तुहुँ। पाविज्जइ जेहिँ महन्तु दुहु ॥४॥
खल-खुद्दइँ दुक्किय-गाराइँ। णारइय णरय-पइसाराइँ ॥५॥
गय- वाहि- दुक्ख- हक्काराइँ। सिव- सासय- गमण- णिवाराइँ ॥६॥
तित्थङ्कर-गणहर- णिन्दियइँ। णउ खञ्चहि पञ्च-वि-इन्दियइँ ॥७॥
रूवेण पयङ्गु माणु रसेंण। मिगु सवणें भसलु गन्धवसेंण ॥८॥

हों। एक दिन कमलोत्सवा कहींसे आती हुई उन्हें दिख गई। कामकी अनीकी तरह वह शीघ्र ही उनके हृदयमें विंध गई ॥१-६॥

[११] अपनी ही वहिनके रूपमें आसक्तमन होकर उन दोनोंको चन्द्रलेखाकी छवि भी नहीं भाती थी। न तो धवल, अमल, कोमल, कमल अच्छा लगता और न जल या जलार्द्र दक्षिण-पवन। उसके सुकोमल चरण देखकर उन्हें सुन्दर रक्त-कमल अशोभन लगते थे। उसके गोल सुडौल स्तनोंको देखकर उनका मन हाथीके कुम्भस्थलसे उचट गया। उस बालाका मुख देख लेनेपर, उन्हें चाँद या चाँदनी अच्छी नहीं लगती थी। उसके सौन्दर्यमें उन दोनोंकी आँखें ऐसी लिप्त हो गई मानो ढोर ही कीचड़में फँस गये हों। उसके केश-कलापको देखकर उनके मनको वनमें नाचता हुआ मोर अच्छा नहीं लगा। अपनी दृष्टिमें विप छिपाये हुए वह बाला—सांपके समान थी जो भी उसे देखता वही मारा जाता॥ १-६॥

[१२] उस अवसरपर वन्दीजनोंने राजासे कहा—"खेङ्कमर! सचमुच मांसे उत्पन्न तुम्हीं हुए हो, महीमण्डलपर तुम्हीं एक धन्य हो, कि जिसकी कमलोत्सवा जैसी पुत्री है और कुल-भूषण देश-भूषण जैसे दो पुत्र हैं।" यह सुनकर वे दोनों कुमार जैसे सन्न रह गये। वे अपने तईं सोचने लगे—"अभागे हृदय! तुम क्या चिन्तन कर रहे हो, इससे तुम घोर दुख पाओगे, इन पाँच इन्द्रियोंमें तुम मत फँसो, ये क्षुद्र और दुष्ट बहुत ही अनर्थ करने-वाली हैं, ये नारकीय नरकमें ले जानेवाली हैं। ये, रोग-व्याधि और दुखोंको आमन्त्रण देती हैं, और शाश्वत शिवगमनका निवारण करती है। तीर्थङ्करों और गणधरोंने इनकी निन्दा की है। रूपसे

घत्ता

फरिसेण विणासु मत्त-गइन्दु गउ।
जो सेवइ पञ्च तहों उत्तारु कउ ॥९॥

[१३]

तो किय णिवित्ति परिणेवाहों। सावज्जु रज्जु भुञ्जेवाहों ॥१॥
पारद्ध पयाणउ तव-पहेँण। णिय-देहमएण महारहेँण ॥२॥
विहि विण्णाणिय उप्पाइएँण। दुट्टट्ठ- कम्म- पच्छाइएँण ॥३॥
इन्दिय- तुरङ्ग- संचालिएँण। सत्तविह- धाउ- वन्धालिएँण ॥४॥
चल- चलणं- चक्क- मंजोइएँण। मण- पवण- सारहि- चोइएँण ॥५॥
तव- संजम- णियम-धम्म-भरेंण। आइय णिय- णिय-तणु-रहवरेंण ॥६॥
थिय पडिमा-जोग्गेँ गिरि-सिहरेँ। सो अग्गिकेउ तेहएँ अवसरेँ ॥७॥
संचलिउ णहङ्गणेँ कहिँ वि जाम। गउ अम्हहुँ उप्परि खलिउ ताम ॥८॥
पुव्वभउ सरेँ वि कोहें जलिउ। थिउ रुन्धँवि णहयलेँ किलिकिलिउ ॥९॥
उवसग्गु जाम पारम्भियउ। वहु-रूवेँहिँ गयणेँ वियम्भियउ ॥१०॥
पडिवण्णाएँ तहिँ तेहएँ अवसरेँ। वट्टन्तएँ गुरु-उवसग्ग-भरेँ ॥११॥
तुम्हहुँ जेँ पहावें तट्टाइँ। असुरइँ धणु-रवेंण पणट्टाइँ ॥१२॥

घत्ता

तो अम्हहुँ वप्पु कालन्तरेंण मुउ।
सो दीसइ एत्थु गारुडु देउ हुउ ॥१३॥

[१४]

तो गरुडें परिओसिय-मणेंण। वे विज्जउ दिण्णउ तक्खणेंण ॥१॥
राहवहों सीहवाहणि पवर। लक्खणहों गरुडवाहणि अवर ॥२॥

शलभ, रससे मछली, शब्दसे मृग, गन्धसे भ्रमर और स्पर्शसे मत्त गज विनाशको प्राप्त होता है। पर जो पाँचोंका सेवन करता है उसका निस्तार कहाँ ? ॥ १-९॥

[१३] यह विचारकर उन्हें विवाह और दोषपूर्ण राज्यके भोगसे विरक्ति हो गई। अपने देहमय महारथसे उन्होंने तपके पथपर चलना प्रारम्भ कर दिया। और इस प्रकार हम दोनों विवेकशील (कुलभूषण और देशभूषण) दुष्ट आठ कर्मोंसे प्रच्छन्न, इन्द्रियरूपी अश्वोंसे संचालित, सात धातुओंसे आवद्ध, चञ्चल चरण चक्रसे संजोये मनरूपी मुख्य सारथिसे प्रेरित, एवं तप, संयम, नियम, धर्म आदिसे भरे हुए अपने-अपने इस शरीर-रूपी महारथोंसे चलकर इस पर्वत पर आये। और एक शिखरपर प्रतिमायोगमें लीन होकर बैठ गये। इसी अवसर पर अग्निकेतु आकाश-मार्गसे कहीं जा रहा था कि उसका विमान हम लोगोंके ऊपर आते ही अचानक स्खलित हो उठा। इसपर पूर्व जन्मके वैरका स्मरणकर वह क्रोधसे आगवबूला हो गया। अवरुद्ध हो वह आकाशमें किलकारी भरकर स्थित हो गया। (बादमें) उसने हम लोगोंके ऊपर अपना उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। वह नाना रूपोंसे आकाशमें विस्मय दिखाने लगा। तब उस घोर संकटके समय गुरुओंपर भारी उपसर्ग देखकर तुम्हारे प्रभावसे राक्षस अब त्रस्त हो गये और धनुषकी टंकार सुनते ही भाग खड़े हुए। कालान्तरमें मरणको प्राप्त हुए हमारे पिताजी भी गरुड़ हुए यहाँ दिखाई दे रहे हैं ॥१-१३॥

[१४] तब तत्काल प्रसन्न होकर—गरुड़देवने उन्हें दो विद्याएँ प्रदान कीं। राघवको प्रवर सिंहवाहिनी और लक्ष्मणको प्रवर गरुड़वाहिनी। पहली सातसौ और दूसरी तीनसौ शक्तियोंसे

पहिलारी सत्त-सएँहिँ सहिय । अणुपच्छिम तिहिँ सएँहिँ अहिय ॥३॥
तो कोसल-सुएँण सु-दुल्लहेँण । वुच्चइ वइदेही- वल्लहेँण ॥४॥
'अच्छन्तु ताव तुम्हहुँ जं घरेँ । अवसरेँ पडिवण्णेँ पसाउ करेँ ॥५॥
सहुँ गरुडेँ संभासणु करेँवि । गुरु पुच्छिउ पुणु चलणेँहिँ धरेँवि ॥६॥
'अम्हहुँ हिण्डन्तहुँ धरणि-वहेँ । जं जिम होसइ तं तेम कहेँ ॥७॥
कुलभूसणु अक्खइ हलहरहोँ । 'जलु लङ्घेँवि दाहिण-सायरहोँ ॥८॥

घत्ता

संगाम-सयाइँ विहि मि जिणेवाइँ ।
महि-खण्डइँ तिण्णि स इँ भुञ्जेवाइँ ॥९॥



[३४. चउतीसमो संधि]

केवलेँ केवलीहेँ उप्पण्णएँ चउविह-देव-णिकाय-पवण्णएँ ।
पुच्छइ रामु महावय-धारा 'धम्म-पाव-फलु कहहि भडारा ॥

[१]

काइँ फलु पञ्च-महव्वयहुँ । अणुवय-गुणवय - सिक्खावयहुँ ॥१॥
काइँ फलु लइएँ अणत्थमिएँ । उववास-पोसवएँ संथविएँ ॥२॥
फलु कइँ जीव सम्भीसियएँ । परहणेँ परदारेँ अहिंसियएँ ॥३॥
काइँ फलु सच्चेँ वोल्लिएँण । अलिअक्खरेण आमेल्लिएँण ॥४॥
काइँ फलु जिणवर-अञ्चियएँ । वर-विउलेँ घरासणेँ वञ्चियएँ ॥५॥
काइँ फलु मासेँ छण्डिएँण । रत्तिदिउ देहेँ दण्डिएँण ॥६॥
काइँ फलु जिण-संमज्जणेँण । वलि- दीवङ्गार- विलेवणेँण ॥७॥

घत्ता

किं चारित्तेँ णाणेँ वएँ दंसणेँ अण्णु पसंसिएँ जिणवर-सासणेँ ।
जं फलु होइ अणङ्ग-वियारा तं विण्णासेँवि कहहि भण्डारा ॥८॥

सहित थी। तब कौशल पुत्र सीतापति, दुर्लभ रामने (गरुड़से) कहा, "तबतकआप घरपर रहें और अवसर आनेपर प्रसाद करें।" इस प्रकार गरुड़से सम्भाषणकर और फिर गुरुके चरण छूकर रामने पूछा, "धरतीपर घूमते हुए हम लोगोंको क्या-क्या होगा ? बताइए ?" यह सुनकर कुलभूषणने कहा, "दक्षिण समुद्रको लांघकर तुम लोग शत युद्धोंसे जीतकर तीनों लोकोंकी धरतीका उपभोग करोगे" ॥१-६॥



चौंतीसवाँ संधि

[१] चारों देव-निकायोंको जाननेवाला केवलज्ञान जब कुल-भूषण महाराजको उत्पन्न हो गया तो रामने उनसे पूछा,—"हे भट्टारक, धर्म और पापका फल बताइए। पाँच महाव्रत, अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतका क्या फल है ? अनर्थदण्ड व्रत ग्रहण करनेका क्या फल होता है ? उपवास और प्रोषधोपवासका क्या फल है ? जीवोंको अभयदान करने, और परस्त्री तथा परधनमें अभिलाषा न करनेका क्या फल है ? सच बोलने और झूठ छोड़नेका क्या फल है ? जिनवर पूजाके अनुष्ठान तथा गृहस्थाश्रमके प्रपञ्चसे बचनेमें क्या फल है ? मांस छोड़ने और दिन-रात संयमके पालनमें क्या फल प्राप्त होता है ? जिनका अभिषेक करने और नैवेद्य तथा दीप धूप और विलेपन करनेका क्या फल है ? चारित्र व्रत ज्ञान दर्शन आदिका जिन-शासनमें जो फल वर्णित हों उसे बताइये। हे जित-काम ! केवलज्ञानसे उसे जानकर प्रकट करें" ॥१-८॥

[२]

पुणु पुणु वि पडीवउ भणइ बलु । 'कहेँ सुकिय-दुक्किय-कम्म-फलु ॥१॥
कम्मेण केण रिउ-डमर-कर । सयरायर महि भुञ्जन्ति णर ॥२॥
कम्मेण केण पर-चक्क-धर । रह-तुरय-गएँहिँ वुज्झन्ति णर ॥३॥
परियरिय सु-णारिहिँ णरवरेँहिँ । विज्जिज्जमाण वर-चामरेँहिँ ॥४॥
सुन्दर सच्छन्द मइन्द जिह । जोहेँहिँ जोह वुज्झन्ति किह ॥५॥
कम्मेण केण किय पङ्गुलय । णर कुण्ट मण्ट वहिरन्धलय ॥६॥
काणीण दीण-मुह-काय-सर । वाहिल्ल भिल्ल णाहल सवर ॥७॥
दालिद्दिय पर-पेसणइँ कर । कें कम्मे उप्पज्जन्ति णर ॥८॥

घत्ता

धीर-सरीर वीर तव-सूरा सव्वहुँ जीवहुँ आसाऊरा ।
इन्दिय-पसवण पर-उवयारा ते कहिँ णर पावन्ति भडारा ॥९॥

[३]

के वि अण्ण णर दुह-परिचत्ता । देवलोएँ देवत्तणु पत्ता ॥१॥
चन्दाइच्च- राहु- अङ्गारा । अण्णहोँ अण्ण होन्ति कम्मारा ॥१॥
हंस-स-मेस-महिस-विस-कुञ्जर । मोर- तुरङ्ग- रिच्छ- मिग- सम्वर ॥२॥
जइ देवहुँ जें मज्झेँ संभूआ । तो किं कज्जें वाहण हूआ ॥४॥
एँहु जो दीसइ कुलिस-प्पहरणु । सहसणयणु अइरावय-वाहणु ॥५॥
गिज्जइ किण्णर-मिहुण-सहासेँहिँ । सुरवर जय भणन्ति चउपासेँहिँ ॥६॥
हाहा- हूहू- तुम्बुरु- णारा । तेज्जा-तेण्णा जसु चच्चारा ॥७॥
चित्तङ्गो वि सुरव पडिपेल्लइ । रम्भ तिलोत्तिम सइ उव्वेल्लइ ॥८॥

[२] रामने दुवारा उनसे पूछा—"पुण्य-पापका फल भी वतलाइए। शत्रुके लिए भयंकर और चराचर धरतीका उपभोग करनेवाला किस कर्मके उदयसे जीव वनता है? किस कर्मसे दूसरेके चक्रको ग्रहण करता है? रथ, अश्व और गजसे युद्ध होता है। किस कर्मसे वह सुन्दर स्त्रियों और उत्तम मनुष्योंसे घिरा रहता है और उसपर उत्तम चँवर डुलाये जाते हैं और योधा-गण उसे स्वच्छन्द मत्त गजकी भाँति समझते हैं? किस कर्मसे मनुष्य पंगु, कुवड़ा, वहरा और अंधा वनता है? किस कर्मके उदयसे वह कुँवारा तथा मुख-स्वर और शरीरसे दीन-हीन और रोगी वनता है? भील, नाहर व्याध, शवर, दरिद्र और दूसरोंका सेवक किस कर्मसे वनता है? दृढ़शरीर तपःसूर सब जीवोंके आशापूरक जितेन्द्रिय और परोपकारी कौनसी गति प्राप्त करते हैं? हे भट्टारक, बताइए॥ १-६॥

[३] और भी मनुष्य, दूसरे-दूसरे दुखोंसे मुक्ति पाकर स्वर्ग कैसे जाते हैं? चन्द्र, सूर्य, मङ्गल, राहु आदि एक दूसरेसे भिन्न कर्म करनेवाले क्यों हैं? हंस, मेष, महिष, वैल, गज, मयूर, तुरङ्ग, रीछ, मृग, सांभर आदि देवोंके बीच उत्पन्न होकर उनके वाहन कैसे वनते हैं? और जो यह वज्रसे प्रहार करनेवाले, ऐरावत गजपर आरूढ़ इन्द्र है, जिसकी सहस्रों किन्नर-दम्पति और बड़े-बड़े देव चारों ओरसे जय वोलते हैं, हा हा, हू हू नारे वोलते हुए तुम्बुरु तेज्ज और तेण्ण जिसके चाकर हैं। चित्राङ्ग जिसके लिए मृदङ्ग वादक है। स्वयं तिलोत्तमा अप्सरा जिसके लिए प्रकट होती है। आखिर यह सब किस कर्मके फलसे होता है? जो स्वयं

घत्ता

अप्पणु असुर-सुरहुँ अब्भन्तरें मोक्खु जेण थिउ सव्वहुँ उप्परें ।
होसइ जसु पुव्वहु पहुत्तणु पच्चु फलेण केण इन्दत्तणु ॥९॥

[४]

तं वयणु सुणेँवि कुलभूसणेँण । कन्दप्प- दप्प- विद्धंसणेँण ॥१॥
सुणु अक्खमि बुज्झइ जेण बलु । आयण्णहि धम्महों तणउ फलु ॥२॥
महु मज्जु मंसु जो परिहरइ । छज्जीव-णिकायहों दय करइ ॥३॥
पुणु पच्छइ सल्लेहणेँ मरइ । सो मोक्ख-महापुरेँ पइसरइ ॥४॥
जो वइँ दरिसावइ पाणिवह । अण्णु वि महु-मंसहों तणिय कह ॥५॥
सो जोणी जोणि परिब्भमइ । चउरासी लक्ख जाम कमइ ॥६॥
एँउ सुकिय-दुक्किय कम्म-फलु । सुणु एवहिँ सच्चहों तणउ फलु ॥७॥
तुल-तोलिय महि स-महीहरिय । स-सुरासुर स-वण स-सायरिय ॥८॥

घत्ता

वरुणु कुबेरु मेरु कइलासु वि तुलएँ तोलिउ तइलोक्कु असेसु वि ।
तो वि ण सच्चङ्गउ पमाणिउ सच्चु स-उत्तरु सव्वहँ पालिउ ॥९॥

[५]

जो मुक्खउ ण चवइ कापुरिसु । सो जीवइ जणवएँ तिण-सरिसु ॥१॥
जो णरु पर-दव्वु ण अहिलसइ । सो उत्तिम-सग्ग-लोएँ वसइ ॥२॥
जो वइँ रयणिहिँ कूड-मणु । चोरन्तु ण थक्कइ एक्कु खणु ॥३॥
सो हम्मइ छिज्जइ भिज्जइ वि । कप्पिज्जइ सूलेँ मारिज्जइ वि ॥४॥
जो दुद्धरु बम्भचेरु धरइ । तहों जसु आखण्डलु किं करइ ॥५॥
जो वइँ तं जोणि चारु रमइ । सो पच्छएँ णरए चेव सरइ ॥६॥
जो करइ णिवित्ति परिग्गहहों । सो सोक्खहों जाइ सुहावहहों ॥७॥
जो वइँ अणियत्तु परिग्गहहों । सो जाइ दुहहों तमतमपहहों ॥८॥

असुरों और देवोंके बीच मोक्षकी तरह सबसे ऊपर रहता है, और जिसकी इतनी प्रभुता दीख पड़ती है, वह इन्द्रत्व किस फल से मिलता है" ॥ १-६ ॥

[४] रामके वचन सुनकर, कामका भी मान खण्डित करने वाले कुलभूषण मुनिने कहा—"सुनो, राम बताता हूँ। धर्मका फल सुनो। मधु, मद्य और मांसका जो त्याग करता है, छह निकायके जीवोंपर दया करता है और (अन्तमें) संल्लेखनापूर्वक मरण करता है, वह तो मोक्षरूपी महानगरमें प्रवेश करता है। परन्तु जो मधु-मांसका भक्षण करता है, प्राणियोंका वध करता है वह योनि-योनिमें घूमता हुआ चौरासी लाख योनियोंमें भटका करता है, यह पुण्य-पापका फल है, अब सत्यका फल सुनो। महीधर, सुर, असुर, धन और समुद्र पर्यन्त यथेच्छ धरती है, तथा वरुण, कुबेर, मेरु, कैलाश प्रभृति जितना भी त्रिभुवन है वह भी सत्यका गौरव व्यक्त करनेमें असमर्थ है। सत्य सबसे उत्तम महान् है ॥ १-६ ॥

[५] जो मनुष्य सत्यवादी नहीं, वह समाजमें मृगकी तरह नगण्य होकर जीता है। और जो दूसरेके धनकी इच्छा नहीं करता है वह स्वर्ग लोकमें जाता है। जो मूढ़बुद्धि दिन-रात एक क्षण भी चोरीसे बाज नहीं आता वह मारा जाता है और नरक-निकाय में छेदा-भेदा-काटा जाता है। परन्तु जो दुर्धर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है उसका यम रूठकर भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जो व्यक्ति स्त्री-योनिमें खूब रमण करता है कमलमें भौंरेकी तरह उसकी मृत्यु हो जाती है। जो परिग्रहसे निवृत्त होता है वह मोक्षके सुखद पथपर अग्रसर होता है। और जो सदैव परिग्रह से अतृप्त होता है वह महातमप्रभ नरकमें वास करता है। अथवा कितना वर्णन किया जाय। जब एक-एक व्रत पालन करनेमें इतना फल

घत्ता

अहवइ णिव्वण्णिज्जइ केत्तिउ एक्केक्कहों वयहों फलु एत्तिउ ।
जो पइँ पञ्च वि धरइ वयाइँ तासु मोक्खु पुच्छिज्जइ काइँ ॥६॥

[६]

फलु एत्तिउ पञ्च-महव्वयहों । सुणु एवहिँ पञ्चाणुव्वयहों ॥१॥
जो करइ णिरन्तर जीव-दया । पविरलु असच्चु सच्चउ मि सया ॥२॥
किस हिंस अहिंस सउत्तरिय । ते णरय-महाणइ-उत्तरिय ॥३॥
जे णर स-दार-संतुट्ठ-मण । परहण- परणारी- परिहरण ॥४॥
अपरिग्गह-दाण-करण पुरिस । ते होन्ति पुरन्दर-समसरिस ॥५॥
फलु एत्तिउ पञ्चाणुव्वयहुँ । सुणु एवहिँ तिहि मि गुणव्वयहुँ ॥६॥
दिस-पच्चक्खाणु पमाण-वउ । खल-संगहु जासु ण वड्ढियउ ॥७॥

घत्ता

इय तिहिँ गुणवएहिँ गुणवन्तउ अच्छइ सग्गेँ सुहइँ भुञ्जन्तउ ।
जासु ण तिहि मि मज्झेँ एक्कु वि गुणु तहों संसारहों छेउ कहिँ पुणु ॥८

[७]

फलु एत्तिउ तिहि मि गुणव्वयहुँ । सुणु एवहिँ चउ-सिक्खावयहुँ ॥१॥
जो पहिलउ सिक्खावउ धरइ । जिणवरेँ तिकाल-वन्दण करइ ॥२॥
सो णरु उप्पज्जइ जहिँ जेँ जहिँ । वन्दिज्जइ लोएँहिँ तहिँ जेँ तहिँ ॥३॥
जो पइँ पुणु विसयासत्त-मणु । परिसहों वि ण पेच्छइ जिण-भवणु ॥४॥
सो सावउ मज्झेँ ण सावयहुँ । अणुहरइ णवर वण-सावयहुँ ॥५॥
जो बीयउ सिक्खावउ धरइ । पोसह-उववास-सयइँ करइ ॥६॥

प्राप्त होता है तो पाँचों व्रतोंके धारण करने पर 'जीव' के मोक्षका क्या पूछना ॥१-६॥

[६] पांच महाव्रतोंका यह फल है अपरं च—अणुव्रतों का फल सुनिए। जो सदैव जीव दया करता है, तथा झूठ थोड़ा और सच बहुत बोलता है, हिंसा थोड़ी और अहिंसा अधिक करता है, वह नरक रूपी महानदीका संतरण कर लेता है। जो मनुष्य अपनी स्त्रीमें संतुष्ट रहकर परस्त्री और परधनका त्याग करता है और परिग्रहसे रहित होकर दान करनेमें समर्थ है, वह इन्द्रके समान हो जाता है। पॉच अणुव्रतोंका यह फल है। अब तीन गुणव्रतोंका फल सुनिए। जिसने दिग्व्रत और भोगोपभोग परिमाणव्रत लिया है, और जो दुष्ट जीव, मुर्गा, बिल्ली आदिका संग्रह नहीं करता, वह इन तीन गुणोंसे अन्वित होकर स्वर्गलोकमें सुखका भोग करता है, और जिसके इन तीनोंमेंसे एक भी नहीं है, कहो उसके संसारका नाश कैसे हो सकता है ॥१-८॥

[७] इस प्रकार तीन गुणव्रतोंका इतना फल है। अब चार शिक्षा व्रतोंका फल सुनो। जो पहला शिक्षा व्रत धारण करता है और जो तीन समय जिनकी वन्दना करता है। वह मनुष्य फिर कहीं भी उत्पन्न हो, लोकमें वन्दनीय हो उठता है। परन्तु जिसका मन विषयासक्त है, जो वर्षभरमें एक भी वार जिन-भवनके दर्शन करने नहीं जाता, वह श्रावकोंके बीचमें (रहकर) भी श्रावक नहीं है। प्रत्युत वह शृगालकी भाँति है। जो दूसरा शिक्षाव्रत धारण करता है। वह सैकड़ों प्रोषधोपवास करता है, वह मनुष्य देवत्वकी कामना करता है और सौधर्म स्वर्गमें अप्सराओं के बीचमें रमण करता है। जो तीसरा शिक्षाव्रत धारण करता है, तपस्वियोंको आहारदान देता है और सम्यक्त्व धारण करता

सो णरु देवत्तणु अहिलसइ। सोहम्मेँ वहुव-मज्झेँ रमइ ॥७॥
जो तइयउ सिक्खावउ धरइ। तवसिहिँ आहार-दाणु करइ ॥८॥
अण्णु वि सम्मत्त-भारु वहइ। देवत्तणु देवलोएँ लहइ ॥९॥
जो चउथउ सिक्खावउ धरइ। सण्णासु करेप्पिणु पुणु मरइ ॥१०॥
सो होइ तिलोयहोँ वड्डियउ। णउ जम्मण-मरण-विओअ-भउ ॥११॥

घत्ता

सामाइउ उववासु स-भोयणु पच्छिम-कालेँ अण्णु सल्लेहणु।
चउ सिक्खावयाइँ जो पालइ सो इन्दहोँ इन्दत्तणु टालइ ॥१२॥

[८]

एँउ फलु सिक्खावएँ संथविएँ। सुणु एवहिँ कहमि अणत्थमिएँ ॥१॥
वरि खद्धु मंसु वरि मज्जु महु। वरि अलिउ वयणु हिंसाएँ महुँ ॥२॥
वरि जीविउ गउ सरीरु दहसिउ। णउ रयणिहिँ भोयणु अहिलसिउ ॥३॥
पुव्वण्णउ गण-गन्धव्वयहुँ। मज्झण्हउ सव्वहुँ देवयहुँ ॥४॥
अवरण्हउ पियर-पियामहहुँ। णिसि रक्खस-भूय-पेय-गहहुँ ॥५॥
णिसि-भोयणु-जेण ण परिहरिउ। भणु तेण काइँ ण समायरिउ ॥६॥
किमि-कीड-पयङ्ग-सयइँ असइ। कुसरीर-कुजोणिहिँ सो वसइ ॥७॥
जो घइँ णिसि-भोयणु उम्महइ। विमलत्तणु विमल-गोत्तु लहइ ॥८॥

घत्ता

सुअउ ण सुणइ ण दिट्ठउ देक्खइ केण वि वोल्लिउ कहोँ वि ण अक्खइ।
भोअणेँ मउणु चउत्थउ पालइ सो सिव-सासय-गमणु णिहालइ ॥९॥

[९]

परमेसरु सुद्दु एम कहइ। जो जं मग्गइ सो तं लहइ ॥१॥
सम्मत्तइँ को वि को वि वयइँ। को वि गुण-गण-वयण-रयण-सयइँ ॥२॥
तवचरणु लइज्जइ पत्थिवेँण। वंसत्थल-णयर-णराहिवेँण ॥३॥

है, वह देवलोकमें देवत्वको पाता है। जो चौथा शिक्षाव्रत धारण करता है और संन्यासपूर्वक मरण धारण करता है वह त्रैलोक्य में भी वृद्धिको पाता है। उसे जन्म मरण और वियोगका भय नहीं होता। इस प्रकार सामायिक, उपवास, आहारदान और मरण-कालमें संलेखना इन चार शिक्षाव्रतोंका जो पालन करता है, वह इन्द्रका इन्द्रपन टालनेमें भी समर्थ है ॥१-१२॥

[८] शिक्षाव्रतका फल यह है। अब अनर्थदंडव्रतका फल सुनो। मांस खाना, मद्य और मधु पान करना, हिंसा करना, झूठ बोलना, किसीका जीव अपहरण कर लेना अच्छा, पर रात्रिभोजन करना ठीक नहीं, चाहे शरीर स्खलित हो जाय। गंधर्व देव दिनके पूर्वमें, सभी देव दिनके मध्यमें, पिता पितामह दिनके अंतमें तथा राक्षस भूत पिशाच और ग्रह रातमें खाते हैं। इसलिए जिसने रात्रिभोजन नहीं छोड़ा बताओ उसने कौनसा आचरण नहीं किया (अर्थात् सभी कुछ किया)। वह सैकड़ों कृमि पतंगों और कीड़ों का भक्षण करता है और कुयोनियोंमें वास करता है। (इसके विपरीत) जो रात्रिभोजनका त्याग करता है वह विमल शरीर और उत्तम गोत्रमें उत्पन्न होता है। जो भोजन करनेमें मौनका पालन करता है, सुनकर भी नहीं सुनता, देखकर भी नहीं देखता, किसीके बुलाने पर भी नहीं बोलता वह शाश्वत मोक्षको पाता है ॥१-९॥

[९] जब परमेश्वर कुलभूषणने इस प्रकार (धर्मका) सुंदर प्रतिपादन किया और जिसने जो व्रत माँगा उसे यह व्रत मिल गया। किसीने सम्यक्त्व ग्रहण किया तो किसीने किसी और व्रत को। किसीने गुणसमूहसे भरे वचन रूपी रत्नोंको ग्रहण किया। वंशस्थलके राजाने तपस्या अंगीकार कर ली। देवता लोग उनकी

गय वन्दणहत्ति करेवि सुर। जाणइऍं धरिज्जइ धम्म-धुर ॥४॥
राहवेंण वि वयइँ समिच्छियइँ। गुरु-दिण्णइँ सिरेंण पडिच्छियइँ ॥५॥
वउ णवर ण थक्कइ लक्खणहों। वालुअपह - णरय - णिरिक्खणहों ॥६॥
तहिँ तिण्णि वि कइ वि दिवस थियइँ। जिण-पुज्जउ जिण-ण्हवणइँ कियइँ ॥७॥
णिग्गन्थ-सयइँ भुञ्जावियइँ। दीणहँ दाणइँ देवावियइँ ॥८॥

घत्ता

तिहुअण-जण-मण-णयणाणन्दहों वन्दणहत्ति करेवि जिणिन्दहों।
जाणइ-हरि-हलहरइँ पहिट्ठइँ तिण्णि वि दण्डारण्णु पइट्ठइँ ॥९॥

[१०]

दिट्ठ महाडइ णाइँ विलासिणि। गिरिवर-थणहर-सिहर-पगासिणि ॥१॥
पञ्चाणण - णह - णियर - वियारिय। दीहर-सर - लोयण - विप्फारिय ॥२॥
कन्दर-दरि-मुह - कुहर - विहूसिय। तरुवर - रोमावलि - उद्धूसिय ॥३॥
चन्दण-अगरु-गन्ध - डिविडिक्किय। इन्दगोव - कुङ्कुम - चच्चिक्किय ॥४॥
अहवइ किं वहुणा वित्थारें। णं णच्चइ गय-पय-संचारें ॥५॥
उज्झर - मुरवप्फालिय - सद्दें। वरहिण - थिर-सुपरिट्ठिय-छन्दें ॥६॥
महुअरि-तिय - उवगीय - वमालें। अहिणव - पल्लव - कर - संचालें ॥७॥
साहोरालि - समुट्ठिय - कलयलु। णाइँ पढइ मुणि-सुव्वय-मङ्गलु ॥८॥

घत्ता

तहों अब्भन्तरें अमर-मणोहरु णयण-कडक्खिउ एक्कु लयाहरु।
तहिँ रइ करें वि थियइँ सच्छन्दइँ जोगु लएविणु जेम मुणिन्दइँ ॥९॥

[११]

तेहिँ तेहएँ वणेँ रिउ-डमर-करु। परिभमइ समुद्दावत्त-धरु ॥१॥
आरण्ण-गइन्दें समारुहइ। वण-गोवउ वण-महिसिउ दुहइ ॥२॥

वंदना-भक्ति करके चले गये। तब सीतादेवीने भी धर्मकी (धुरा) शीलव्रतको ग्रहण किया। रामने भी व्रत ग्रहण किया। परंतु वालुक-प्रभ नरकमें जानेवाले लक्ष्मणने एक भी व्रत ग्रहण नहीं किया। कितने ही दिनों तक वे लोग वहीं रहे। वहाँ उन्होंने जिन-पूजा और जिनका अभिषेक किया। दीनोंको दान दिलवाया। सैकड़ों निर्ग्रंथ साधुओंको आहारदान दिया। उसके बाद, त्रिभुवनानंद-दायक जिनवरकी वंदना-भक्ति करके उनलोगोंने बड़े हर्षके साथ दंडक वनकी ओर प्रस्थान किया ॥१–९॥

[१०] दंडकवनकी वह अटवी उन्हें विलासिनी स्त्रीकी तरह दिखाई पड़ी। वह सिंहोंके नखसमूहसे विदारित, चोटियोंके रूपमें अपने स्तन प्रकट कर रही थी। बड़े-बड़े सरोवर रूपी नेत्रोंसे विस्फारित, कंदरा और घाटियोंके मुखकुहरोंसे विभूषित, वृक्ष रूपी रोमराजिसे अलकृंत, चंदन और अगरु (इस नामके वृक्ष) से अनुलिप्त, तथा वीरवहूटी रूपी केशरसे अंचित थी। अथवा अधिक विस्तारसे क्या, मानो वह दंडक अटवी गजोंके पदसंचार के बहाने नृत्य कर रही थी। निर्झरोंके स्वरोंमें मृदंगकी ध्वनि थी, मयूरोंके स्वर ही प्रतिष्ठित छंद थे। मधुकरियोंकी सुंदर कल-कल ध्वनि गीत थे। नव पल्लवोंके से वह अपने हाथ मटका रही थी। सीहोरालीसे उठा हुआ कल-कल स्वर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वह अटवी मुनिसुव्रत (भगवान्) का मंगल पाठ गान कर रही हो। उसके भीतर उन्हें, अमरोंकी भाँति सुन्दर एक लतागृह दिखाई दिया। स्वच्छंद क्रीड़ा करते हुए वे लोग उसमें उसीप्रकार रहने लगे जिस प्रकार मुनींद्र योग ग्रहण कर रहने लगते हैं ॥१–१०॥

[११] शत्रुभयङ्कर लक्ष्मण उस वनमें अपना समुद्रावर्त धनुष लेकर घूमने लगे। कभी वह वनगजपर जा चढ़ते और

तं खीरु वि चिरिढिहिल्लु महिउ । जाणइहेँ समप्पइ घिय-सहिउ ॥३॥
स वि पक्कावइ घण-हण्डियहिँ । वण-धण्णन्दुलेँहिँ सुकण्डिएँहिँ ॥४॥
णाणाविह - फल-रस - तिम्मणेँहिँ । करवन्द-करीरेँहिँ सालणेँहिँ ॥५॥
इय विविह-भक्ख भुञ्जन्ताहुँ । वण-वासेँ तिहि मि अच्छन्ताहुँ ॥६॥
मुणि गुत्त-सुगुत्त ताव अइय । असुदाणिय दोइ-महव्वइय ॥७॥
कालामुह-कावालिय भगव । मुणि संकर तवण तवसि गुरव ॥८॥

घत्ता

वन्दाइरिय भोय पव्वइया हवि जिह भूइ-पुञ्ज-पच्छविया ।
ते णर-जम्मण-मरण-वियारा वण-चरियएँ पइसन्ति भडारा ॥९॥

[१२]

जं पइसन्त पर्दासिय मुणिवर । सावय जिह विहपणविय तरुवर ॥१॥
अलि-मुहलिय खर-पवणायम्पिय । 'थाहु थाहु' णं एम पजम्पिय ॥२॥
के वि कुसुम-पब्भारु मुअन्ति । पाय-पुज्ज णं विहि मि करन्ति ॥३॥
तो वि ण थक्क महव्वय-धारा । रामासमें पइसन्ति भडारा ॥४॥
रिसि पेक्खेप्पिणु सीय विणिग्गय । णं पच्चक्ख महा-वणदेवय ॥५॥
'राहव पेक्खु पेक्खु अच्छरियउ । साहु-जुअलु चरियएँ णीसरियउ' ॥६॥
वलु वयणेण तेण गम्जोल्लिउ । 'थाहु थाहु' सिरु णवेँ वि पवोल्लिउ ॥७॥
विणयङ्कुसेंण साहु-गय वालिय । किउ सम्मज्जणु पाय पखालिय ॥८॥

कभी वनकी गायों और भैसोंका दूध दुहने लगते। कभी दूध, दही और घी सहित मट्ठा (मही) लाकर जानकीको देते और सीता उनसे भोजन बनातीं। इस प्रकार घन-हंडिय, वनधान्य, तन्दुल, सुकंड, तरह तरहके फलरस कढ़ी, करवंद, करीर, सालन आदिका विविध भोजन करते हुए वे तीनों अपना समय यापन करने लगे। एक दिन जीवदयाके दानी, गुप्त और सुगुप्त नामके महाव्रती दो महामुनि आये। वे काला मुख (एक सम्प्रदाय और त्रिकाल भोगी) कापालिक (सम्प्रदाय विशेष और कामकषायसे दूर) भगवा (भगवा वस्त्र धारी और पूज्य शंकर) शंकर (शिव और सुख देनेवाले) तपन शील (आदित्य और ऋद्धिसे युक्त) वनवासी (एक सम्प्रदाय और वनमें रहनेवाले) गरु महान्, वन्दनीय सेवनीय, संन्यासी और यज्ञकी तरह धूलिसे आच्छादित थे। जरा जन्म मरणका नाश करनेवाले वे दोनों (महामुनि) चर्याके लिए निकले ॥१–६॥

[१२] आते हुए उन यतियोंको देखकर मानो वृक्ष श्रावकोंकी भाँति नत हो गये। भ्रमरोंसे गुञ्जित और पवनसे कंपित वे मानो कह रहे थे, "ठहरिए ठहरिए"। कोई वृक्ष फूलोंकी वर्षा कर रहे थे मानो विधाता ही उनकी फूलोंसे पादपूजा कर रहा था। तब भी महाव्रत धारी वे ठहरे नहीं। चलकर वे दोनों भट्टारक रामके आश्रमके निकट पहुँचे। मुनियोंको देखते ही सीता देवी बाहर निकलीं मानो साक्षात् वनदेवी ही बाहर आई हों। वह बोलीं 'राम देखो देखो' अचरजकी बात है दो यति चर्याके लिए निकले हैं।' यह सुनकर राम एकदम पुलकित हो उठे। और माथा झुकाकर, आह्वान करते हुए उन्होंने कहा—"ठहरिए ठहरिए"। तब विनयरूपी अङ्कुशसे वे दोनों साधुरूपी महागज रुक गये। रामने

दिण्ण ति-वार धार सलिलेण वि । कम चच्चिय गोसीर-रसेण वि ॥९॥
पुप्फक्खय - वलि - दीवङ्गारेँ हिँ । एम पयच्चेँ वि अट्ठ-पयारेँ हिँ ॥१०॥

घत्ता

वन्दिय गुरु गुरु भत्ति करेवि लग्ग परीसवि सीयाएवि ।
सुह-पिय अच्छ पच्छ मण-भाविणि भुत्त पेज्ज कामुएँ हिँ व कामिणि ॥११॥

[१२]

दिण्णु पाणु पुणु सुहहोँ पियारउ । चारण-भोग्गु जेम हलुवारउ ॥१॥
सिद्धउ सिद्धु जेम सिद्धीहउ । जिणवर-आउ जेम अहदीहउ ॥२॥
पुणु अग्गिमउ दिण्णु हियइच्छिउ । जिह सु-कलत्तु सु णेहु-स-इच्छिउ ॥३॥
सुद्धइँ पुणु सालणइँ विचित्तइँ । तिक्खइँ णाइँ विलासिणि-चित्तइँ ॥४॥
दिण्णइँ पुणु तिम्मणइँ मणिट्ठइँ । अहिणव-कइ-वयणा इव मिट्ठइँ ॥५॥
पच्छइ सिसिरु स-मच्छरु सुद्धउ । दुट्ठ-कलत्तु जेम अइ-थद्धउ ॥६॥
पुणु मय-सलिलु दिण्णु सीयालउ । णं जिण-वयणु पाव-पक्खालउ ॥७॥
लीलएँ जिमिय भडारा जावेँहिँ । पञ्चच्छरिउ पदरिसिउ तावेँहिँ ॥८॥

घत्ता

दुन्दुहि गन्धवाउ रयणावलि साहुक्कारु अण्णु कुसुमञ्जलि ।
पुण्ण-पवित्तइँ सासय-दूअइँ पञ्च वि अच्छरियइँ स इँ भू अइँ ॥९॥

उनके चरण साफकर, तीन बार जलकी धारा छोड़कर उनका प्रक्षालन किया। उसके अनन्तर, चंदन रसका लेपकर आठ प्रकारके द्रव्य (पुष्प, अक्षत, नैवेद्य, दीप धूपादि) से पूजा की। खूब वन्दना-भक्तिके अनन्तर सीता देवीने आहार देना शुरू किया। कामुकके लिए कामिनीकी तरह मनभाविनी सीता देवीने बादमें मुखमधुर भोजन और पेय दिया॥१-११॥

[१३] फिर उसने मुखको प्रिय लगनेवाला स्वादिष्ट, तपस्वीके योग्य हलका भोजन दिया। वह भोजन सिद्धिके लिए अभिलापी सिद्धकी तरह सिद्ध था, जिनवरकी आयुकी तरह सुदीर्घ था। फिर सीताने उन्हें सुन्दर दाल वगैरह दी। वह दाल, सुकलत्रकी तरह सस्नेह (प्रेम और घी से युक्त) और वांछनीय थी। फिर उन्हें विलासिनियोंके चित्तकी भाँति शुद्ध विचित्र शालन परसा गया। उसके अनन्तर अभिनव कवि-वचनोंकी तरह मीठी मनप्रिय कढ़ी दी। दुष्ट कलत्रकी भाँति थद्ध (गाढ़ी और ढीठ) दही मलाई दी। उसके अनन्तर, पाप धोनेवाले जिन-वचनोंकी तरह, अत्यन्त शीतल और सुगन्धित जल दिया। इस प्रकार जब लीला-पूर्वक उन परम भट्टारकोंने भोजन समाप्त किया तो पाँच आश्चर्य प्रकट हुए। दुंदुभिका बज उठना, सुगन्धित पवनका बहना, रत्नोंकी वृष्टि, आकाशमें देवोंका जय-जय कार, और पुष्पोंकी वर्षा। पुण्यसे पवित्र शासन दूतोंकी तरह ये आश्चर्य प्रकट हुए॥१-६॥

[३५. पञ्चतीसमो संधि]

गुत्त-सुगुत्तहँ तणॅण पहावें रामु स-सीय परम-सब्भावें।
देवेँहिँ दाण-रिद्धि खणेँ दरिसिय वल-मन्दिरेँ वसुहार पवरिसिय॥

[१]

जाय महग्घ रयण सु-पगासइँ। लक्खहँ तिण्णि सयइँ पञ्चासइँ॥१॥
वरिसेँवि रयण-वरिसु सइँ हत्थेँ। रामु पसंसिउ सुरवर-सत्थेँ॥२॥
'तिहुवणेँ णवर एक्कु वलु धण्णउ। दिव्वाहारु जेण वणेँ दिण्णउ'॥३॥
मणेँ परितुट्ठइँ अमर-सयाइँ। 'अण्णेँ दाणेँ किज्जइ काइँ॥४॥
अण्णेँ धरिउ भुवणु सयरायरु। अण्णेँ धम्मु कम्मु पुरिसायरु॥५॥
अण्णेँ रिद्धि-विद्धि वंसुब्भउ। अण्णेँ पेम्मु विलासु स-विब्भमु॥६॥
अण्णेँ गेउ वेउ सिद्धक्खरु। अण्णेँ जाणु झाणु परमक्खरु॥७॥
अण्णु मुएवि अण्णु किं दिज्जइ। जेण महन्तु भोगु पाविज्जइ॥८॥

घत्ता

अण्ण-सुवण्ण-कण्ण-गोदाणहुँ मेइणि-मणि-सिद्धन्त-पुराणहुँ।
सव्वहुँ अण्ण-दाणु उब्भासणु पर-सासणहुँ जेम जिण-सासणु'॥९॥

[२]

दाण-रिद्धि पेक्खेवि खगेसरु। णवर जडाइ जाउ जाईसरु॥१॥
गग्गर-वयणउ मुणि-अणुराएं। पडउ णाइँ सिरेँ मोग्गर-घाएं॥२॥
जिह जिह सुमरइ णियय-भवन्तरु। तिह तिह मेल्लइ अंसु णिरन्तरु॥३॥
'मइँ पावेण तिलोयाणन्दहुँ। पञ्च-सयइँ पीलियइँ मुणिन्दहुँ'॥४॥

पैतीसवीं संधि

गुप्त सुगुप्त मुनिके प्रभाव तथा राम और सीताके सद्भावसे, देवोंने दानका प्रभाव दिखानेके लिए रामके आश्रममें (तत्काल) रत्नोंकी वृष्टि की।

[१] उन्होंने साढ़े तीन लाख बहुमूल्य रत्नोंकी वृष्टि की। इस प्रकार अपने हाथों रत्नोंकी वर्षा करके देवोंने रामकी प्रशंसा की, "तीनों लोकोंमें एक राम ही धन्य हैं जिन्होंने वनमें भी मुनियोंके लिए आहार दान दिया। उन्होंने आपसमें चर्चा की कि अन्नदान ही उत्तम है, दूसरे दानसे क्या? अन्नसे चराचर विश्व पलता है। अन्नसे ही धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ हैं। अन्नसे ही ऋद्धि वृद्धि और वंशकी समुत्पत्ति होती है। अन्नसे ही हाव-भाव सहित प्रेम और विलास उत्पन्न होते हैं। अन्नसे ही गेय वाद्य और सिद्धाचर होते हैं। अन्नसे ही ज्ञान, ध्यान और परमाक्षरपद (सिद्धपद) प्राप्त होता है। अतः अन्नको छोड़कर और क्या दान किया जाय। अन्नदानसे बड़े भोग प्राप्त होते हैं। अन्नदान सुवर्ण, कन्या, गौ, धरती, मणि, शास्त्र और पुराणोंके दानसे महत्त्व-पूर्ण है। उनमें उसका स्थान वैसे ही ऊँचा है जैसे दूसरे शासनोंमें जिन शासनका स्थान ऊँचा है॥१-६॥

[२] दानकी ऋद्धि देखकर पक्षिराज जटायुको अपना जाति-स्मरण हो आया। मुनिके प्रति भक्तिसे वह गद्गद हो उठा। उसे लगा जैसे उसके सिरपर वज्रका झटका लगा हो। ज्यों-ज्यों वह अपने जन्मान्तरोंकी याद करता त्यों-त्यों उसे अश्रु वेगसे वहने लगते। वह बार-बार पश्चात्ताप करता कि "मुझ पापीने त्रिभुवना-नंददायक पाँच सौ मुनियोंको पीड़ित किया था।" इस प्रकार

एम पहाउ करन्तु विहङ्गउ । गुरु-चलणेहिँ पडिउ मुच्छंगउ ॥५॥
पय-पक्खालण - जलेंणासासिउ । राहवचन्दें पुणु उवयासिउ ॥६॥
सीयएँ वुत्तु 'पुत्तु महु एवहिँ । छुड्डु वड्ढउ छुड्डु धरउ सुखेवँहिँ' ॥७॥
ताव रयण-उज्जोवें भिण्णा । जाय पक्ख चामीयर-वण्णा ॥८॥

घत्ता

विद्दुम-चञ्चु णील-णिह-कण्ठउ पय-वेरुलिय-वण्ण मणि-पट्टउ ।
तक्खणें पञ्च-वण्णु णिव्वडियउ वीयउ रयण-पुञ्जु णं पडियउ ॥९॥

[३]

भावें विहि मि पयाहिण देहन्तउ । णट्टु जिह हरिस-विसाएँहिँ जन्तउ ॥१॥
दिट्ठु पक्खि जं णयणाणन्दणु । भणइ णवेप्पिणु दसरह-णन्दणु ॥२॥
'हे मुणिवर गयणङ्गण-गामिय । चउगइ-दुक्ख- महाणइ - णामिय ॥३॥
कहि कज्जेण केण सच्छायउ । पक्खि सुवण्ण-वण्णु जं जायउ' ॥४॥
तं णिसुणेवि वुत्तु णीसङ्गें । 'सयलु वि उत्तिम-पुरिस-पसङ्गें ॥५॥
णरु हलुवो वि होइ गरुआरउ । रुक्खु वि सेल-सिहरें वड्डारउ ॥६॥
मेरु-णियम्बें तिणु वि हेमुज्जलु । सिप्पिउडेसु जलु वि मुत्ताहलु ॥७॥
तिह विहङ्गु मणि-रयणुज्जोएं । जाउ सुवण्ण-वण्णु मुणि-तोएं ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेवि वयणु असगाहें पुच्छिउ पुणु वि णाहु णरणाहें ।
'विहलङ्घलु घुम्मन्तु विहङ्गउ कवणें कारणेण मुच्छंगउ' ॥९॥

[४]

भणइ ति-णाण - पिण्ड - परमेसरु । 'एहु विहङ्गु आसि रज्जेसरु ॥१॥
पट्टणु दण्डाउरु भुञ्जन्तउ । दण्डउ णामु वउद्धहँ भत्तउ ॥२॥
एक्क-दिवसें वारद्धिएँ चलियउ । ताव तिकाल-जोगि मुणि मिलियउ ॥३॥

प्रलाप करता हुआ वह मुनिके निकट गया। उनके चरणोंपर गिरते ही वह मूर्छित हो गया। तब रामने चरणोंके प्रक्षालनका जल छिड़ककर उसकी मूर्च्छा दूर की। यह सब देखकर सीता देवीने कहा—"इस समयसे यह मेरा पुत्र है।" और उसे उठाकर सुखसे रख दिया। रत्नोंकी आभासे उस पक्षीके पंख सोनेके हो गये। चोंच मूँगेकी, कंठ नीलमका, पीठ मणिकी, चरण वैदूर्य मणिके। इस प्रकार तत्काल उसके पाँच रंग हो गये। वह ऐसा जान पड़ रहा था मानो दूसरी पंच रत्न-वृष्टि हुई हो ॥१-६॥

[३] हर्ष और विषादसे भरे हुए नटकी भाँति उस पक्षि-राजने दोनों मुनियोंकी भावसहित प्रदक्षिणा दी। उस आनंद-दायक पक्षीको देखकर, दशरथ-पुत्र रामने प्रणामपूर्वक मुनिसे पूछा, 'हे आकाशगामी और दुखरूपी महानदीके लिए नौका तुल्य, (कृपया) बताइए, यह सुन्दर कान्तिवाला पक्षी सोनेके रंगका कैसे हो गया?' यह सुनकर वह अनासंग मुनि बोले, "उत्तम नरकी संगतिसे सब कुछ संभव है। संगतिसे छोटा आदमी भी बड़ा आदमी बन जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पेड़ पर्वत की चोटीपर बड़ा हो जाता है और सुमेरु पर्वतपर तिनका भी सोनेके रंगका दिखाई देता है। सीपीमें पड़ा हुआ पानी मोती बन जाता है। इसी प्रकार यह पक्षी भी मणि-रत्नोंकी आभा और गंधोदकके (प्रभावसे) स्वर्णिम रंगका हो गया।" यह सुनकर रामने बिना किसी बाधाके पूछा—"विकलांग यह पक्षी, घूमता हुआ, किस कारणसे मूर्छित हो गया?" ॥१-६॥

[४] तब त्रिज्ञानपिंडके धारक परमेश्वर बोले, "पहले यह पक्षी दंडपुरमें दंडक नामका राजा था। वह बौद्ध धर्मका अनुयायी था। एक दिन वह आखेटके लिए वनमें गया। वहाँ

थिउ अत्तावणें लम्बिय-बाहउ। अविचलु मेरु जेम दुग्गाहउ ॥४॥
तं पेक्खेंवि आरुट्ठु महब्बलु। "अवसु अज्जु अवसवणु अमङ्गलु" ॥५॥
एम चवन्तें विसहरु घाएँवि। रोसें मुणिवर कण्ठें लाएँवि ॥६॥
गउ णिय-णयरु णराहिउ जावेंहिं। थिउ णीसङ्कु णिरोहें तावेंहिं ॥७॥
"एउ को वि फेडेसइ जइयहुँ। लम्बिय हत्थुच्चायमि तइयहुँ" ॥८॥

घत्ता

जावण्णेक्क-दिवसें पहु आवइ तं जें भडारउ तहिं जें विहावइ।
गलएँ भुअङ्गम-मडउ णिवद्धउ कण्ठाहरणु णाइँ आइद्धउ ॥९॥

[५]

जं अविचलु वि दिट्ठु मुणि-केसरि। फेडेंवि विसहर-कण्ठा-मञ्जरि ॥१॥
बोल्लाविउ "बोल्लहि परमेसर। तव-चरणेण काइँ तवणेसर ॥२॥
खणिउ सरीरु जीउ खण-मेत्तउ। जो झायहि सो गयउ अतीतउ ॥३॥
तुहु मि खणिउ णऽज्ज वि सिद्धत्तणु। आयहों किं पमाणु किं लक्खणु" ॥४॥
सयलु णिरत्थु वुत्तु जं राएं। मुणिवरु चवेंवि लग्गु णयवाएं ॥५॥
"जइ पुणु सो जें पक्खु बोल्लेवउ। ता खण-सद्दु ण उच्चारेवउ ॥६॥
खणिउ खयारु णयारु वि होसइ। खण-सद्दहों उच्चारु ण दीसइ ॥७॥

घत्ता

अघडिउ अघडमाणु अघणन्तउ खणिएं खणिउ खणन्तर-मेत्तउ।
सुण्णें सुण्ण-वयणु सुण्णासणु सव्वु णिरत्थु वउद्धहुँ सासणु" ॥८॥

उसे त्रिकालज्ञ मुनि दिखे। वह आतापिनी शिलापर बैठे, हाथ ऊपर उठाये, ध्यानमें अवस्थित थे। सुमेरु पर्वतकी तरह अचल और दुर्ग्राह्य उन्हें देखते ही वह आगबबूला हो उठा। "आज अवश्य कोई न कोई अमंगल अपशकुन होगा"—यह सोचकर एक साँप मारा और उसे मुनिके गलेमें डाल दिया। राजा अपने नगर वापस आ गया। मुनि उस विरोधमें अनासंग रहे। उन्होंने अपने मनमें यह बात जान ली कि जब तक कोई (अपने आप) इस साँपको अलग नहीं करेगा, तबतक मैं अपने हाथ ऊपर ही उठाये रहूँगा। दूसरे दिन जब वह दंडक राजा फिर वहाँ गया तो उसने भट्टारकको वहीं देखा। उनके गलेमें पड़ा हुआ वह साँप कंठहारकी तरह शोभित था ॥१–६॥

[५] उन मुनिसिंहको (पहलेकी तरह) अविचल देखकर, उसने सर्पकी वह कंठ-मञ्जरी दूर कर दी। फिर उसने कहा—"बताइये परमेश्वर, इस तपके अनुष्ठानसे क्या होगा ? यह शरीर क्षणिक है। जीव भी क्षण भर ठहरता है। जिसका ध्यान करते हो वह अतीत हो चुका है। तुम भी क्षणिक हो, और सिद्धत्व आज भी प्राप्त नहीं है, और फिर इस मोक्षका क्या प्रमाण है। उसका लक्षण क्या है ?" परन्तु इस प्रकार राजाने जो कुछ कहा वह सब निरर्थक ही था क्योंकि मुनिने नयवादसे उसका उत्तर दे दिया। (उन्होंने कहा) "यदि क्षणिक पक्ष कहते हो, तो 'क्षण' शब्दका उच्चारण भी नहीं हो सकता। फिर तो 'क्ष' और 'ण' भी क्षणिक हो जायेंगे। तब क्षणिक शब्दका उच्चारण नहीं होगा। अघटित, अघटमान और अघटंत, क्षणिक, क्षणांतमात्र, शून्यसे शून्यासन कैसे सम्भव है। अतः बौद्धोंका सब शासन व्यर्थ है ॥१–८॥

[६]

खण-सद्देण णिरुत्तरु जायउ । पुणु वि पवोल्लिउ दण्डय-रायउ ॥१॥
"तो घइँ सव्वु अत्थि जं दीसइ । पुणु तवचरणु कासु किज्जेसइ" ॥२॥
तं णिसुणेप्पिणु भणइ मुणीसरु । जो कइ-गवय वाइ वाईसरु ॥३॥
"अम्हइँ राय ण वोल्लहुँ एवं । णेआइएँहिँ हसिज्जहुँ जेवं ॥४॥
अत्थि णत्थि दोण्णि वि पडिवज्जहुँ । तुहुँ जिह णउ खणवायं भज्जहुँ" ॥५॥
तं णिसुणेवि भणइ दणुदारउ । "जाणिउ परम-पक्खु तुम्हारउ ॥६॥
अत्थि ण अत्थि णिच्च-संदेहो । पुणु धवलउ पुणु सामल-देहो ॥७॥
पुणु वि मत्त-करि पुणु पञ्चाणणु । खत्तिउ वइसु सुद्दु पुणु वम्भणु" ॥८॥

घत्ता

भणिउ भडारउ "किं वित्थारेँ एक्कु चोरु चिरु धरिउ तलारेँ ।
गीवा-मुह-णासच्छि गविट्ठउ सासु लएन्तहुँ कहि मि ण दिट्ठउ ॥९॥

[७]

अहवइ एण काइँ संदेहेँ । अत्थि वि णत्थि वि णीसंदेहेँ ॥१॥
जेत्थु अत्थि तहिँ अत्थि भणेवउ । जहिँ ण अत्थि तहिँ णत्थि भणेवउ" ॥२॥
सच्छन्देण णराहिउ भाविउ । लइउ धम्मु पुणु मुणि पाराविउ ॥३॥
साहुहुँ पञ्च सयइँ धरियाइं । णिसुणइँ तेसट्ठि वि चरियाइं ॥४॥
तो एत्थन्तरेँ जण-मण-भाविणि । कुइय खणद्धेँ दुण्णय-सामिणि ॥५॥
पुणु मयवद्धणु पुत्तु महन्तउ । "णरवइ जाउ जिणेसर-भत्तउ ॥६॥

घत्ता

तो वरि मन्तु किं पि मन्तिज्जइ जिणहरेँ सव्वु दव्वु पुञ्जिज्जइ ।
जेण गवेसण पहु कारावइ साहुहुँ पञ्च-सयइँ मारावइ" ॥७॥

[६] इस प्रकार क्षणिक शब्दसे निरुत्तर होकर राजा दंडकने फिर कहा, "जब सब अस्ति दिखाई देता है, तो फिर तप किसके लिए किया जाय।" यह सुनकर कवियों और वादियोंके वाग्मी वह मुनि बोले, "जैसे नैयायिकोंकी हँसी उड़ाई जाती है वैसे हमसे नहीं कह सकते। हम अस्ति और नास्ति दोनों पक्षोंको मानते हैं। अतः तुम्हारे क्षणवादको तरह हमारे (मतका) खण्डन नहीं हो सकता।" यह सुनकर दंडकराजने कहा, "तुम्हारा परम पक्ष मैंने जान लिया। अस्ति और नास्तिमें नित्य संदेह है। क्योंकि यह जीव कभी धवल होता है और कभी श्याम। फिर कभी मत्तगज तो कभी सिंह। फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र।" इसपर भट्टारकने उत्तर दिया, "एक चोरको चिरकालसे तलार (कोतवाल) ने पकड़ रखा है। गर्दन, मुख, नाक, आँखसे रचित, श्वास लेता हुआ भी वह किसीको दिखाई नहीं देता। अधिक विस्तारसे क्या ॥१-६॥

[७] अथवा इस प्रकार सन्देह करना व्यर्थ है। अस्ति और नास्ति दोनों पक्ष सन्देहसे परे हैं। जहाँ अस्ति हो वहाँ अस्ति कहना चाहिए और जहाँ नास्ति हो वहाँ नास्ति कहना चाहिए। स्वच्छन्दतासे इस प्रकार विचार करनेपर राजा दण्डकने जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया। उसने मुनिको घर आनेका आमंत्रण दिया। त्रेसठ प्रकारके चारित्रमें पारङ्गत, पाँच सौ साधुओंके साथ वह मुनि राजाके घर पहुँचे। यह देखकर जनमनको प्रिय लगनेवाली दुर्नयस्वामिनी उसकी पत्नी आधे ही पलमें आगबबूला हो उठी। वह अपने पुत्र भयवर्धनसे बोली, "राजेश्वर जिनका भक्त हो गया है। अच्छा हो कोई मन्त्र उपाय सोचा जाय। सब पूँजी इकट्ठी करके मन्दिरमें रख दो। राजा उसे खोजता हुआ वहाँ जायगा, और उन पाँच सौ मुनियोंको मरवा देगा ॥१-६॥

[८]

एक्क-दिवसेँ तं तेम कराविउ । जिणहरेँ सव्वु दव्वु पुञ्जाविउ ॥१॥
मयवन्दुर्णेण णिवहों वज्जरियउ । "तुम भण्डारु मुणिन्देँहिँ हरियउ" ॥२॥
तं आलावें दण्डयराएं । हसियउ पुणु पुणु सीह-णिणाएं ॥३॥
"पत्तिय सेल-सिहरेँ सयवत्तइँ । पत्तिय महियलेँ गह-णक्खत्तइँ ॥४॥
पत्तिय विवरिय चन्द-दिवायर । पत्तिय परिभमन्ति रयणायर ॥५॥
पत्तिय णहेँ हवन्ति कुलपव्वय । पत्तिय एक्कहिँ मिलिय दिसा-गय ॥६॥
पत्तिय णउ चउवीस वि जिणवर । पत्तिय णउ चक्कवइ ण कुलयर ॥७॥
पत्तिय णउ तेसट्ठि पुराणइँ । पञ्चेन्दियइँ ण पञ्च वि णाणइँ ॥८॥
सोलह सग्ग भग्गइँ उप्पत्तिय । मुणि चोरन्ति मन्ति मं पत्तिय" ॥९॥

घत्ता

जं णरवइ वोल्लिउ कइवारें मन्तिउ मन्तु पुणु वि परिवारें ।
"लहु रिसि-रूउ एक्कु दरिसावहुँ पुणु महएवि-पासु वइसारहुँ ॥१०॥

[९]

अवसें रोसें पुर-परमेसरु । मुणिवर घल्लेसइ रज्जेसरु" ॥१॥
एम भणेवि पुणु वि कोक्काविउ । तक्खणें मुणिवर-वेसु धराविउ ॥२॥
तेण समाणउ जण-मण-भाविणि । लग्ग वियारेँहिँ दुण्णय-सामिणि ॥३॥
तो एत्थन्तरेँ गओलिय-तणु । गउ णिय-णिवहों पासु मयवन्दणु ॥४॥
णरवइ पेक्खु पेक्खु मुणि-कम्मइँ । ढुक्कु पमाणहों वोल्लिउ जं मइँ ॥५॥
मूढा अवुह ण वुज्झहि अज्ज वि । हिउ भण्डारु जाव हिय भज्ज वि" ॥६॥

[८] एक दिन उसने वैसा ही करवा दिया। सारा खजाना जिन-मन्दिरमें रख दिया गया। मयवर्धनने राजासे कहा कि तुम्हारा भण्डार मुनियोंने चुरा लिया है। कुमारके इस प्रलापपर राजा सिंहनादमें अट्टहास करके बोला, "विश्वास करलो कि शैल शिखर-पर कमलपत्र हो सकते हैं, विश्वास कर लो कि ग्रह नक्षत्र धरतीपर आ सकते हैं। विश्वास कर लो कि सूर्य और चन्द्र पूर्वकी अपेक्षा पश्चिममें उग सकते हैं। विश्वास कर लो कि समुद्र घूम सकता है, विश्वास कर लो कि कुल पर्वत आकाशमें होते हैं, विश्वास कर लो कि चारों दिग्गज एक हो सकते हैं, विश्वास कर लो कि चौवीस तीर्थङ्कर नहीं हुए, विश्वास कर लो कि चक्रवर्ती और कुलधर नहीं हुए, विश्वास कर लो कि त्रेसठ पुराणपुरुष, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच ज्ञान, सोलह स्वर्ग तथा जन्म और मरण नहीं होते, पर यह विश्वास कभी मत करो कि जैन मुनि चोरी करते हैं।" जब राजाने आदर पूर्वक ऐसा कहा तो फिर रानीने अपने परिवारके लोगोंके साथ मन्त्रणा की। और यह निश्चय किया कि किसी एकको मुनिका रूप बनाकर रानीके निकट बैठा दिया जाय ॥१–१०॥

[९] तब अवश्य राजा क्रोधमें आकर इन मुनिवरोंको मरवा देगा।" यह विचारकर तत्काल किसीको मुनिरूपमें वहाँ बैठा दिया तथा जनमनभाविनी रानी दुर्नयस्वामिनी उसके साथ विकार चेष्टाका प्रदर्शन करने लगी। तब इसी बीचमें पुलकित-शरीर पुत्र मयवर्द्धन दौड़ा-दौड़ा राजाके पास गया और बोला— "राजन्, देखो देखो, मुनियोंका कर्म, जो कुछ मैंने निवेदन किया था उसका प्रमाण मिल गया। मूर्ख अज्ञानी तुम आज भी नहीं समझ सकते। भण्डारका तो उसने हरण किया ही था और आज स्त्रीका भी हरण कर लिया है। तुम जानबूझकर अपने मनमें मूर्ख बनते

घत्ता

जाणन्तो वि तो वि मणेँ मूढउ णरवइ कोव-गइन्दारूढउ ।
दिण्णाणत्ती णरवर-विन्दहुँ धरियइँ पञ्च वि सयइँ मुणिन्दहुँ ॥७॥

[१०]

पहु-आएसें धरिय भडारा । जे पञ्चेन्द्रिय - पसर-णिवारा ॥१॥
जे कलि-कलुस-कसाय-वियारा । जे संसार - घोर - उत्तारा ॥२॥
जे चारित्त-पुरहोँ पागारा । जे कमट्ठ - दुट्ठ - दणु - दारा ॥३॥
जे णीसङ्ग अणङ्ग-वियारा । जे भवियायण - अब्भुद्धारा ॥४॥
जे सिव-सासय-सुह - हक्कारा । जे गारव - पमाय - विणिवारा ॥५॥
जे दालिद्द-दुक्ख - खयकारा । सिद्धि - वरङ्गण - पाण - पियारा ॥६॥
जे वायरण-पुराणइँ जाणा । सिद्धन्तिय एक्केक्क-पहाणा ॥७॥
तें तेहा रिसि जन्तें छुहाविय । रसमसकसमसन्त पीलाविय ॥८॥

घत्ता

पञ्च वि सय पीलाविय जावँहिँ मुणिवर वेण्णि पराविय तावँहिँ ।
घोर-वीर-तवचरणु चरेप्पिणु आतावणेँ तव-तवणु तवेप्पिणु ॥९॥

[११]

केण वि ताम वुत्तु "मं पइसहोँ । वेण्णि वि पाण लएप्पिणु णासहोँ ॥१॥
गुरु तुम्हारा आवइ पाविय । राएं जन्तें छुहेँवि पीलाविय" ॥२॥
तं णिसुणेवि एक्कु मुणि कुद्धउ । णं खय-कालें कियन्तु विरुद्धउ ॥३॥
घोरु रउद्दु झाणु आऊरिउ । वउ सम्मत्तु सयलु संचूरिउ ॥४॥
अप्पाणेणप्पाणु विहत्तिउ । तक्खणेँ छार-पुञ्जु परिअत्तिउ ॥५॥
जो कोवाणलु तेण विमुक्कउ । गउ णयरहोँ सवडम्मुहु ढुक्कउ ॥६॥

हो।" यह सुनते ही राजा दण्डक क्रोधरूपी महागज पर आसीन हो बैठा। उसने तुरन्त अपने आदमियोंको आदेश दिया कि इन पाँच सौ मुनियोंको पकड़ लो" ॥९–८॥

[१०] राजाके आदेशसे वे पाँचसौ मुनि बन्दी बना लिये गये। वे पञ्चेन्द्रियोंके प्रसारका निवारण करनेवाले, कलयुगके पाप और कषायोंको नष्ट करनेवाले, घोर संसारसे पार जानेवाले, चारित्ररूप नगरके प्राचीर, अष्ट दुष्ट कर्मोंको चूरनेवाले जितकाम, अनासक्त, भविकजनोंके उद्धारक, शाश्वत शिव सुखके उद्धारक, गर्हा और प्रमादके निवारक, दारिद्र्य और दुखके नाशक, सिद्धिरूपी नववधूके लिए प्राणप्रिय, व्याकरण और पुराणोंमें पारङ्गत, सिद्धान्त प्रवीण उनमें प्रत्येक अपनेमें प्रधान था। उस वैसे मुनि-समूहको, यन्त्रोंसे क्षुब्ध कर कसमसाता हुआ वह राजा पीड़ित करने लगा। जिस समय पाँच सौ ही साधु इस प्रकार पीड़ित हो रहे थे उसी समय आतापिनी शिलापर तप करके दो मुनिवर नगरकी ओर आ रहे थे ॥१–९॥

[११] उन्हें आते हुए देखकर किसीने कहा, "तुम दोनों नगरके भीतर प्रवेश मत करो, नहीं तो प्राणोंसहित समाप्त कर दिये जा सकते हो। तुम्हारा गुरु आपत्तिमें है। राजा उन्हें यन्त्रसे पीड़ा दे रहा है।" यह सुनते ही उनमेंसे एक मुनि एकदम क्रुद्ध हो उठा। मानो क्षयकालमें यम ही विरुद्ध हो उठा हो। वह घोर रौद्रध्यानमें उतर आया। उसका समस्त व्रत और चारित्र नष्ट-भ्रष्ट हो गया। आत्मा आत्मासे विभक्त हो गई। उसी समय उसने अग्निपुंज छोड़ा। इस प्रकार उसने जो क्रोध-ज्वाला मुक्त की वह शीघ्र ही नगरके सम्मुख चली, चारों ओरसे वह नगर जलने लगा।

घत्ता

पट्टणु चाउद्दिसु संदीविउ स-धरु स-राउलु जालालीविउ ।
जं जं कुम्भ-सहसेंहिं विप्पइ विहि-परिणामें जलु वि पलिप्पइ ॥७॥

[१२]

पट्टणु दड्ढु असेसु वि जावेंहिं । खल जम-जोह पराविय तावेंहिं ॥१॥
ते वइलोक्कु वि जिणेंवि समत्था । असि-वण-सङ्कल-णियल-विहत्था ॥२॥
कक्कड-कविल-केस भीसावण । काल-कियन्त - लील-दरिसावण ॥३॥
कसण-सरीर वीर फुरियाधर । पिङ्गल-णयण फसर-मोग्गर-धर ॥४॥
जीह-ललन्त दन्त-उद्दन्तुर । उब्भड-वियड-दाढ भय-भासुर ॥५॥
जम-दूएहिं तेहिं कन्दन्तउ । णरवइ णिउ स-मन्ति स-कलत्तउ ॥६॥
गम्पिणु जमरायहों जाणाविउ । "एण मुणिन्द-णिवहु पीलाविउ" ॥७॥
तं णिसुणेप्पिणु कुइउ पयावइ । "तोहि मि दरिसावहों गरुयावइ" ॥८॥

घत्ता

पहु-आएसें दुण्णय-सामिणि घत्तिय छट्ठहिं पुढविहिं पाविणि ।
जहिं दुक्खइँ अइ-घोर-रउद्दइँ णवराउसु बावीस-समुद्दइँ ॥९॥

[१३]

अण्णोण्णेण जेत्थु हक्कारिउ । अण्णोण्णेण पहर-णिद्दारिउ ॥१॥
अण्णोण्णेण दलेंवि दलवट्टिउ । अण्णोण्णेण हणेंवि णिव्वट्टिउ ॥२॥
अण्णोण्णेण तिसूलें भिण्णउ । अण्णोण्णेण सिला-वलि दिण्णउ ॥३॥
अण्णोण्णेण कढाहें पमेल्लिउ । अण्णोण्णेण हुआसणें पेल्लिउ ॥४॥
अण्णोण्णेण वइतरणिहें वत्तिउ । अण्णोण्णेण धरेंवि णिजन्तिउ ॥५॥
अण्णोण्णेण सिलहु अप्फालिउ । अण्णोण्णेण दुहाएँहिं फालिउ ॥६॥
अण्णोण्णेण धरेंवि आवीलिउ । अण्णोण्णेण वत्थु जिह पीलिउ ॥७॥
अण्णोण्णेण घरट्टएँ दलियउ । अण्णोण्णेण पयरु जिह मिलियउ ॥८॥
अण्णोण्णेण वि कूवें पमुक्कउ । अण्णोण्णेण धरेप्पिणु रुक्कउ ॥९॥

सारी धरती और राजकुल आगकी लपटोंमें घिर गये। उसपर जो सहस्रों घड़े जल डाला जाता वह भी भाग्यके परिणामसे जल उठता था ॥११-८॥

[१२] इस प्रकार सम्पूर्ण नगरके जलकर राख हो जानेपर यमके योधा आ पहुँचे। तलवार, मजबूत सांकलें और निगड उनके हाथमें थे। रूखे और कपिल रंगके बाणोंसे वे अत्यन्त भयानक थे। वे तरह-तरहकी लीलाएँ करने लगे। कंपित अधर पीतनेत्र और श्याम शरीर वे वीर झसर और मुद्गर लिये हुए थे। उनकी जीभ लपलपाती, दाँत लम्बे, और दाढ़ें निकली हुई थीं। भयङ्कर वे यमदूत पत्नी सहित बिलखते हुए राजाको वहाँसे ले गये। आकर उन्होंने यमराजसे कहा, "इन्होंने मुनिसमूहको पीड़ा दी है"। यह सुनकर प्रजापति यम एकदम क्रुद्ध होकर बोला, "इन घम-ण्डियोंको भी वही पीड़ा दो।" प्रभु यमके आदेशसे उन्होंने दुर्नय-स्वामिनी को छठे नरकमें डाल दिया। उसमें घोर दारुण दुःख थे और आयु बाईस सागर प्रमाण थी ॥११-६॥

[१३] वहाँ एक दूसरेको ललकारकर प्रहार करते, एक दूसरे पर आक्रमणकर चकनाचूर करते, मार-मारकर, एक दूसरेको भगा देते। एक दूसरेका त्रिशूलसे भेदन करते, एक दूसरेको दिशा बलि देते, एक दूसरेको कड़ाहीमें डाल देते, एक दूसरेको आगमें झोक देते, एक दूसरेको वैतरणीमें डाल देते, एक दूसरेको पकड़ कर पराजित कर देते, एक दूसरेको चट्टानपर पटकते, एक दूसरेको दुहागसे खंडित करते। एक दूसरेको पकड़कर पीड़ा देते। एक दूसरेको (जड़) वस्तुओंकी तरह चपेटते, एक दूसरेको चक्की में पीस देते। एक दूसरेको बाणोंसे वेध देते, एक दूसरेको पकड़कर रोक लेते। एक दूसरेको कुँएमें फेंक देते, एक दूसरेको रोक लेते।

घत्ता

अण्णोण्णेण पलोट्टउ रागें अण्णोण्णेण वियारिउ खग्गें ।
अण्णोण्णेण गिलिज्जइ जेत्थु दुण्णय-सामिणि पत्तिय तेत्थु ॥१०॥

[१४]

अण्णु वि कियउ जेण मन्तित्तणु । घत्तिउ असिपत्तवणें अलक्खणु ॥१॥
जहिं तं तिणु मि सिलीमुह-सरिसउ । अण्णु वि अग्गि-वण्णु णिप्फरिसउ ॥२॥
जहिँ तेलोह-रुक्ख कण्टाला । असि-पत्तल असराल विसाला ॥३॥
दुग्गम दुण्णिरिक्ख दुल्ललिया । णाणाविह - पहरण - फल-भरिया ॥४॥
जहिं णिवडन्ति ताइँ फल-पत्तइँ । तहिँ छिन्दन्ति णिरन्तर गत्तइँ ॥५॥
तं तेहउ वणु मुएँ वि पणट्ठउ । पुणु वइतरणिहिँ गम्पि पइट्ठउ ॥६॥
जहिं तं सलिलु वहइ दुग्गन्धउ । रस-वस-सोणिय-मंस - समिद्धउ ॥७॥
उण्हउ खारु तोरु अइ विरसउ । मण्ड पियाविउ पूय-विमिस्सउ ॥८॥

घत्ता

इय संताव-दुक्ख-संतत्तउ खणेँ खणेँ उप्पज्जन्तु मरन्तउ ।
थिउ सत्तमएँ णरएँ मयवद्धणु मेइणि जाम मेरु गयणङ्गणु ॥९॥

[१५]

ताव विरुद्धएहिँ हक्कारिउ । णरवइ णारएहिँ पच्चारिउ ॥१॥
"भरु भरु संभरु दुच्चरियाइं । जाइँ आसि पइँ संचरियाइं ॥२॥
पञ्चसयइँ मुणिवरहुँ हयाइं । लइ अणुहुञ्जहि ताइँ दुहाइं" ॥३॥
एम भणेप्पिणु खग्गेँहिँ छिण्णउ । पुणु वाणेँहिँ भल्लेहिँ भिण्णउ ॥४॥
पुणु तिलु तिलु करवत्तेँहिँ कप्पिउ । पुणु गिद्धहुँ सिव-साणहुँ अप्पिउ ॥५॥
पुणु पेल्लाविउ मग्ग-गइन्देँहिं । पुणु वेढाविउ पण्णय-विन्देँहिं ॥६॥
पुणु खण्डिउ पुणु जन्तेँ छुहाविउ । अद्धु सहासु वार पीलाविउ ॥७॥
दुक्खु दुक्खु पुणु कह वि किलेसेँहिं । परिभमन्तु भव-जोणि-सहासेँहिं ॥८॥

एक दूसरेको रागसे देखकर, फिर कृपाणसे टुकड़े-टुकड़े कर देते। एक दूसरेको लील जाते। दुर्नयस्वामिनी इसी नरकमें पहुँची ॥१-१०॥

[१४] और भी जिसने मंत्रणा की थी, गुणहीन उसे असिपत्रवन नरक में डाल दिया गया। वहाँके तिनके तक बाणोंके समान हैं। और पेड़ आगके रंगके हैं वहाँ तेलोहके कटीले झाड़ हैं। तलवारकी तरह उसके पत्ते हैं। वह बड़ा विकराल, दुर्गम और दुर्दर्शनीय है तथा दुर्ललित है। तरह-तरहके अस्त्रोंके समान फलोंसे लदा हुआ है। जहाँ भी उसके पत्ते गिरते हैं उनसे शरीर निरन्तर छिन्न-भिन्न होता रहता है। उनसे नष्ट होकर, फिर वह वैतरणी नदीमें जा गिरता है जो अत्यन्त दुर्गन्धित पानी, पीव तथा मांस और रक्तसे भरी हुई है। उसका जल उष्ण, खारा और अत्यन्त-विरस है। पीपमिश्रित जल जबर्दस्ती वहाँ पिलाया जाता है। इस तरह सन्ताप और दुखोंको सहन करता हुआ जीव उसमें क्षण-क्षण जन्मता और मरता रहता है। मयवर्द्धन भी तब-तकके लिए सातवें नरकमें गया है कि जब-तक धरती, सुमेरु पर्वत और आकाश विद्यमान रहेंगे ॥॥१-६॥

[१५] इसके अनन्तर उन विरुद्ध नारकीयोंने राजाको भी ललकारा, "तूने जो-जो खोटे आचरण किये हैं, उन्हें याद कर। तूने पाँचसौ मुनियोंको मारा, अब इसका दुःख भोग।" यह कहकर उन्होंने उसे तलवारसे काट-कूट दिया। फिर बाणों और भालोंसे भेदा। उसके बाद करपत्रसे तिल-तिल काटकर उसे गीध, कुत्तों और शृगालोंको दे दिया। हाथीके पाँवके नीचे दबोचकर साँपोंसे लपेट दिया। फिर खण्डितकर, पाँचसौ-पाँचसौ बार उसे यन्त्रसे पीड़ित किया। इस प्रकार कष्ट पूर्वक हजारों यातनाओंको सहन करता हुआ वह नाना योनियोंमें भटकता फिरा। वही अब इस वनमें

एत्थु विहङ्गु जाउ णिय-काणणें । एवहिँ अच्छइ तुम्ह-घरङ्गणें ॥९॥

घत्ता

ताव पक्खि मणें पच्छुत्ताविउ 'किह मइँ सवण-सङ्घु संताविउ ।
एत्तिय-मत्तें अब्भुद्धरणउ महु मुयहों वि जिणवरु सरणउ' ॥१०॥

[१६]

जं आयण्णिउ पक्खि-भवन्तरु । जाणइ-कन्तें पभणिउ मुणिवरु ॥१॥
'तो वरि अम्हहुँ वयइँ चडावहु । पक्खिहेँ सुहय-पन्थु दरिसावहु' ॥२॥
तं वलएवहों वयणु सुणेप्पिणु । पञ्चाणुव्वय उच्चारेप्पिणु ॥३॥
दिण्ण पडिच्छिय तिहि मि जणेहिँ । पुणु अहिणन्दिय एक्क-मणेहिं ॥४॥
मुणिवर गय आयासहों जावेंहिँ । लक्खणु भवणु पराइउ तावेंहिँ ॥५॥
'राहव एउ काइँ अच्छरियउ । ज मन्दिरु णिय-रयणेंहिँ भरियउ' ॥६॥
तेण वि कहिउ सव्वु जं वित्तउ । 'मइँ आहार-दाण-फलु पत्तउ' ॥७॥
तक्खणें पञ्चच्छरिउ पदरिसिउ । मेहेंहिँ जिह अणवरउ पवरिसिउ ॥८॥

घत्ता

रामहों वयणु सुणेवि अणन्तें गेण्हवि मणि-रयणइँ वलवन्तें ।
वड-पारोह-कमेहिँ पचण्डेंहिँ रहवरु घडिउ सयंभु व-दण्डेंहिँ ॥९॥

[३६. छत्तीसमो संधि]

रहु कोड्डावणउ मणि-रयण-सहासेंहिँ घडियउ ।
गयणहों उच्छलेंवि णं दिणयर-सन्दणु पडियउ ॥

[१]

तहिँ तेहएँ सुन्दरेँ सुप्पवहेँ । आरण्ण - महागय - जुत्त - रहेँ ॥१॥
धुरेँ लक्खणु रहवरेँ दासरहि । सुर-लीलएँ पुणु विहरन्ति महि ॥२॥

(जटायु नामका) पक्षी हुआ है। और इस समय तुम्हारे आश्रमके आँगनमें उपस्थित है।" यह सुनकर वह पक्षी अपने मनमें बहुत पछताया। मैंने नाहक श्रमणसंघको यातना दी। इतने मात्रसे मेरा उद्धार हो गया। अब तो मैं बार-बार जिनकी शरणमें हूँ ॥१-१०॥

[१६] पक्षिराज जटायुके जन्मान्तर सुनकर राम और सीताने पूछा, "तो फिर अच्छा हो आप हमें भी कुछ व्रत दें और इस पक्षीको भी सुपथ दिखावें।" बलभद्र रामके वचन सुनकर मुनिवरने पाँच अणुव्रतोंका नाम लेकर उन्हें दीक्षा प्रदान की। उन तीनोंने मुनिका अभिनन्दन किया। मुनियोंके आकाश-मार्गसे प्रस्थान करनेपर जब लक्ष्मण घर लौटकर आया तो उसने कहा, "अचरज है यह सब क्या। घर रत्नोंसे भर गया है।" तब रामने कहा कि यह सब हमें अपने आहार-दानका फल प्राप्त हुआ है। तत्क्षण उन्होंने वे पाँच आश्चर्य रत्न दिखाये कि जिनकी निरन्तर वर्षा हुई थी। तब बलवान् लक्ष्मणने रामके वचन सुनकर उन (बहुमूल्य) मणियोंको इकट्ठा कर लिया। फिर वटप्ररोह की तरह प्रबल अपने भुजदण्डोंसे लक्ष्मणने रत्नविजडित उत्तम रथ बनाकर तैयार किया ॥१-६॥

०

छत्तीसवीं संधि

हजारों मणियों और रत्नोंसे रचित कुतूहल-जनक वह रथ ऐसा लगता था मानो सूर्यका ही रथ आकाशसे उछलकर धरती-पर आ गिरा हो ॥१-६॥

[१] सुन्दर और कान्तिपूर्ण, तथा वनगजोंसे जुते हुए उस रथकी धुरापर लक्ष्मण बैठे हुए थे, और भीतर राम और सीता। इस प्रकार वे धरती पर लीलापूर्वक विहार कर रहे

तं कण्हवण्ण-णइ मुएँवि गय । वणेँ कहि मि णिहालिय मत्त गय ॥३॥
कत्थ वि पञ्चाणण गिरि-गुहेँहिँ । मुत्तावलि विक्खिरन्ति णहेँहिँ ॥४॥
कत्थ वि उड्डाविय सउण-सय । णं अडविहेँ उड्डेँवि पाण गय ॥५॥
कत्थ वि कलाव णच्चन्ति वणेँ । णावइ णट्टावा जुवइ-जणेँ ॥६॥
कत्थ इ हरिणइँ भय-भीयाइँ । संसारहोँ जिह पव्वइयाइँ ॥७॥
कत्थ वि णाणाविह-रुक्ख-राइ । णं महि-कुलवहुअहेँ रोम-राइ ॥८॥

घत्ता

तहोँ दण्डयवणहोँ अग्गएँ दीसइ जलवाहिणि ।
णामेँ कोञ्चणइ थिर-गमण णाइँ वर-कामिणि ॥९॥

[२]

कोञ्चणइहेँ तीरेँण संठियइँ । लय-मण्डवेँ गम्पि परिट्ठियइँ ॥१॥
छुडु जेँ छुडु जेँ सरयहोँ आगमणेँ । सच्छाय महादुम जाय वणेँ ॥२॥
णव-णलिणिहेँ कमलइँ विहसियइँ । णं कामिणि-वयणइँ पहसियइँ ॥३॥
धवलेण णिरन्तर-णिग्गएँण । घण-कलसेँहिँ गयण-महग्गएँण ॥४॥
अहिसिञ्चेँवि तक्खणेँ वसुह-सिरि । णं थविय अवाहिणि कुम्भइरि ॥५॥
तहिँ तेहएँ सरएँ सुहावणएँ । परिभमइ जणद्दणु काणणएँ ॥६॥
कोवण्ड - सिलीमुह - गहिय-करु । गज्जन्त - मत्त - मायङ्ग - धरु ॥७॥
वणेँ ताम सुअन्धु वाउ अइउ । जो पारियाय-कुसुमब्भहिउ ॥८॥

घत्ता

कड्ढिउ भमरु जिह तेँ वाएँ सुट्ठु सुअन्धेँ ।
धाइउ महुमहणु जिह गउ गणियारिहेँ गन्धेँ ॥९॥

[३]

थोवन्तरेँ परिओसिय-मणेँण । वंसत्थलु लक्खिउ लक्खणेँण ॥१॥
णं सयण-विन्दु आवासियउ । णं मयउलु वाहेँ तासियउ ॥२॥

थे। कृष्णा नदी पार करने पर कहीं उन्हें मद झरते वनगज दिखाई पड़े और कहीं सिंह जो गिरि-गुहाओंमें अपने नखोंसे मोती बखेर रहे थे। कहीं पर सैकड़ों पक्षी इस भाँति उड़ रहे थे मानो अटवीके प्राण उड़कर जा रहे हों। कहींपर वनमोर इस प्रकार नृत्य कर रहे थे मानो युवतीजन ही नाच रहा हो। कहींपर भयभीत हरिन इस प्रकार खड़े थे मानो संसारसे भीत संन्यासी ही हों। कहींपर नाना प्रकारकी वृक्ष-मालाएँ थीं जो मानो धरारूपी वधूकी रोम-राजी ही हो। ऐसे उस दण्डक वनके आगे उन्हें क्रौंच नामकी नदी मिली वह सुन्दर कामिनीकी मन्थर-गतिसे वह रही थी ॥१–६॥

[२] क्रौंचके तटपर जाकर वे एक लतागृहमें वैठ गये। (इतनेमें) शरद्के आगमनसे वनवृक्षोंकी कान्ति और छाया (सहसा) सुन्दर हो उठी। नई नलिनियोंके कमल ऐसी हँसी बखेर रहे थे मानो कामिनीजनोंके मुख ही स्मयमान हों। (और वह दृश्य ऐसा लगता था) मानो अपने निरन्तर निकलनेवाले घनरूपी धवल कलशोंसे आकाशरूपी महागजने (शरद्कालीन) वसुधाकी सौन्दर्य लक्ष्मीका अभिषेककर उस अबोधिनीको कुंभ-कार पर्वतपर अधिष्ठित कर दिया हो। ऐसी उस सुहावनी शरद्ऋतु में, मत्तगजोंको पकड़नेवाले लक्ष्मण, अपना धनुपबाण लिये हुए घूम रहे थे। (इतनेमें अचानक) पारिजात कुसुमोंके परागसे मिश्रित सुगन्धित पवनका झोंका आया। उस सुगन्धित पवनसे, भ्रमरकी तरह आकृष्ट होकर कुमार लक्ष्मण उसी तरह दौड़े जिस प्रकार हाथी हथिनीकी वांछासे (आकृष्ट होकर) दौड़ पड़ता है ॥१–६॥

[३] थोड़ी दूर चलनेपर सन्तुष्ट मन लक्ष्मणको एक वंश-स्थल नामक स्थान दीख पड़ा। वह ऐसा जान पड़ा मानो स्वजन-

अण्णेक्क-पासें कोड्डावणउ । जम-जीह जेम भीसावणउ ॥३॥
गयणङ्गणें खग्गु णिहाफियउ । णाणाविह कुसुमोमालियउ ॥४॥
लक्खणहों णाइँ अब्भुद्धरणु । णं सम्बुकुमारहों जमकरणु ॥५॥
तं सूरहासु णामेण असि । जसु तेएं णिय पह मुअइ ससि ॥६॥
जसु धारहों काल-दिट्ठि वसइ । जसु कालु कियन्तु वि जमु तसइ ॥७॥
तें हत्थु पसारें वि लइउ किह । पर-णर-णिप्पसरु कलत्तु जिह ॥८॥

घत्ता

पुणु कीलन्तएं ण असिवत्तें हउ वंसत्थलु ।
ताव समुच्छलेंवि सिरु पडिउ स-मउडु स-कुण्डलु ॥९॥

[४]

जं दिट्ठु विवाइउ सिर-कमलु । सिरिवच्छें विहुणिउ भुय-जुअलु ॥१॥
'धिम्मइँ णिक्कारणु वहिउ णरु । बत्तीस वि लक्खण-लक्ख-धरु' ॥२॥
पुणु जाम णिहालइ वंस-वणु । णर-रुण्डु दिट्ठु फन्दन्त-तणु ॥३॥
तं पेक्खेंवि चिन्तइ खग्गधरु । 'थिउ माया-रूवें को वि णरु' ॥४॥
गउ एम भणेप्पिणु महुमहणु । णिव्विसेण परायउ णिय-भवणु ॥५॥
राहवेंण वुत्तु 'भो सुहड-ससि । कहिँ लद्धु खग्गु कहिँ गयउ असि ॥६॥
तेण वि तं सयलु वि अक्खियउ । वंसत्थलु जिह वणें लक्खियउ ॥७॥
जिह लद्धु खग्गु तं अतुल-बलु । जिह खुडिउ कुमारहों सिर-कमलु ॥८॥

घत्ता

घुच्चइ राहवेंण 'मं एत्तिय मुहिवएं साडिय ।
असि सावण्णु णवि पइँ जमहों जीह उप्पाडिय' ॥९॥

[५]

जं एहिय भीसण वत्त सुय । वेवन्ति पजम्पिय जणय - सुय ॥१॥

समूह ही ठहरा हो, या व्याधसे पीड़ित मदगज ही हो। तब अत्यन्त निकट जाकर, उसने आकाशमें लटका हुआ एक खड्ग देखा। यमकी जीभकी तरह भयानक वह, पुष्पमालाओंसे लदा हुआ था। वह मानो, लक्ष्मणका उद्धारक और शम्बूक कुमारके लिए जमकरण था। यह वह सूर्यहास खड्ग था जिसके तेजसे चन्द्रमा भी अपनी आभा छोड़ देता है, जिसकी पैनी धारमें कालदृष्टि बसती है, यम कृतान्त भी जिससे सन्त्रस्त हो उठते हैं। लक्ष्मणने हाथ फैलाकर उस खड्गको उसी प्रकार झेल लिया जिस प्रकार कोई विट परपुरुषगामी स्त्रीको पकड़ ले। जब खेल-खेलमें कुमार लक्ष्मणने उस खड्गसे वंशस्थलपर चोट की तो उसमेंसे मुकुट और कुंडल सहित एक सिर उछल पड़ा ॥१-९॥

[४] उस मूक सिरकमलको देखकर, लक्ष्मण दोनों हाथसे अपना सिर धुनकर पछताने लगा, "मुझे धिक्कार है कि व्यर्थ ही मैंने बत्तीस लक्षणोंसे युक्त एक आदमीका वध कर दिया है।" जब उसने उस वंश-समूहको देखा, उसमें एक तड़फड़ाते मनुष्यका धड़ दिखाई दिया। उसे देखकर खड्गधर लक्ष्मणने सोचा शायद कोई मायाका रूप धारणकर इसमें बैठा था। यह विचारकर वह पलभरमें अपने डेरेमें पहुँच गया। तब रामने पूछा, "हे शुभ, यह खड्ग तुमने कहाँ पाया, तुम कहा गये थे।" तब लक्ष्मणने जिस तरह वंशस्थल देखा था और कुमारका सिर काटकर वह खड्ग प्राप्त किया था वह सब हाल कह सुनाया। इसपर राम बोले, "अरे तुमने इस तरह (उसे) काट डाला, निश्चय ही तुमने यमकी डाढ़ उखाड़ ली है। वह कोई मामूली व्यक्ति नहीं था" ॥१-९॥

[५] यह बात सुनते ही सीतादेवी काँप-सी गई। वह बोलीं, "चल, लतामंडपमें घुस चले। इस वनमें प्रवेश करना शुभ

'लय-मण्डवें विउलें णिविट्टाहुँ । सुहु णाहि वणें वि पइट्ठाहुँ ॥२॥
परिभमइ जणद्दणु जहिँ जें जहिँ । दिवेंदिवें कडमद्दणु तहिँ जें तहिँ ॥३॥
कर-चलण-देह-सिर - खण्डणहुँ । णिव्विण्ण माएँ हउँ भण्डणहुँ ॥४॥
हउँ ताएँ दिण्णी केहाहुँ । कलि - काल - कियन्तहुँ जेहाहुँ' ॥५॥
तं वयणु सुणेप्पिणु भणइ हरि । 'जइ राजु ण पोरिसु होइ वरि ॥६॥
जिम दाणें जेंम सुकइत्तणेंण । जिम आउहेण जिम कित्तणेंण ॥७॥
परिभमइ कित्ति सव्वहों णरहों । धवलन्ति भुवणु जिह जिणवरहों ॥८॥

घत्ता

आयहुँ एत्तियहुँ जसु एक्कु वि चित्तें ण भावइ ।
सो जाउ ज्जि मुउ परिमिसु जं जमु णेवावइ' ॥९॥

[६]

एत्थन्तरें सुर - संतावणहों । लहु वहिणि सहोयर रावणहों ।
पायाललङ्क - लङ्केसरहों । धण पाण-पियारी तहों खरहों ॥२॥
चन्दणहि णाम रहसुच्छलिय । णिय - पुत्तहो पासु समुच्चलिय ॥३॥
'लइ वारह-वरिसइँ भरियाइँ । चउ-दिवसेंहिँ पुणु सोत्तरियाइँ ॥४॥
अण्णहिँ तहिँ दिवसहिँ करें चडइ । तं खग्गु अज्जु णहें णिव्वडइ' ॥५॥
सो एव चवन्ती महुर - सर । वलि - दीवङ्गारय - गहिय - कर ॥६॥
सज्जण - मण - णयणाणन्दणहों । गय पासु पत्त णिय-णन्दणहों ॥७॥
ताणन्तरें असि - दलवट्टियउ । वंसत्थलु दिट्ठु णिवट्टियउ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठु कुमार-सिरु स-मउडु मणि-कुण्डल-मण्डिउ ।
जन्तेंहिँ किण्णरेंहिँ वर-कणय-कमलु णं छण्डिउ ॥९॥

[७]

सिर-कमलु णिएप्पिणु गीढ-भय । रोमन्ती महियलें मुच्छ - गय ॥१॥
कन्दन्ति रुवन्ति स - वेयणिय । णिज्जीव जाय णिच्चेयणिय ॥२॥
पुणु दुक्खु दुक्खु संवरिय-मण । मुह-कायर दर-मउलिय - णयण ॥३॥

नहीं है। कुमार लक्ष्मण तो दिनोंदिन वहीं घूमते रहते हैं जहाँ युद्ध और विनाश (की सम्भावना) रहती है। हाथ, पैर, सिर और शरीरका नाश करनेवाले इन युद्धोंसे मुझे बहुत विरक्ति हो उठी है। इससे मुझे उतना ही सन्ताप होता है जितना कलिकाल और कृतान्तसे।" यह सुनकर कुमार लक्ष्मणने कहा—"जिसमें पुरुषार्थ नहीं वह राजा कैसा ? मनुष्यकी कीर्ति दान, सुकवित्व, आयुध और कीर्तनसे ही फैलती है वैसे ही जैसे जिनवरसे यह यह संसार धवल बनता है। इनमेंसे जिसके मनको एक भी अच्छा नहीं लगता वह मर क्यों नहीं जाता, वह व्यर्थ ही यमका भोजन बनता है ॥१-६॥

[६] इसी बीच चन्द्रनखा हर्षसे उछलती हुई, वहाँ आई। वह रावणकी सगी छोटी बहन और पाताललंकाके राजा खरकी पत्नी थी। "चार दिन ऊपर बारह वर्ष हो चुके हैं, दूसरे ही दिन खड्ग आकाशसे गिरकर मेरे पुत्रके हाथमें आ जायगा," मधुर स्वरमें यह गुनगुनाती हुई, नैवेद्य, दीप, धूप वगैरह पूजाका सामान हाथमें लिये जैसे ही वह सज्जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्ददायक अपने पुत्रके निकट पहुँची वैसे ही उसने खड्गसे छिन्न उस वंश-स्थलको गिरा हुआ देखा। कुमारका मुकुट-कुंडलसे सहित कटा हुआ सिर देखकर उसे ऐसा जान पड़ा, मानो किन्नरोंने आते-जाते वन-कमलको तोड़कर फेंक दिया हो ॥१-६॥

[७] (छिन्न) सिरकमलको देखकर वह भयभीत हो उठी। रोती हुई वह, मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। क्रन्दन करती, रोती और वेदनासे भरी हुई वह एकदम निर्जीव और निश्चेतन हो उठी। फिर बड़े कष्टसे उसने अपना मन सम्हाला। उसका मुख कमल कातर हो रहा था, आखें भयसे मुकुलित थीं।

णं मुच्छए किउ सहियत्तणउ । जं रक्खिउ जीवु गवणमणउ ॥४॥
पुणु उट्ठेंवि विहुणइ भुअजुअलु । पुणु सिरु पुणु पहणइ वच्छयलु ॥५॥
पुणु कोक्कइ पुणु धाहहिँ रडइ । पुणु दीसउ णिहालइ पुणु पडइ ॥६॥
पुणु उट्ठइ पुणु कन्दइ कणइ । पुणुरुत्तेंहिँ अप्पउ आहणइ ॥७॥
पुणु सिरु अप्फालइ धरणिवहेँ । रोवन्तिहेँ सुर रोवन्ति णहेँ ॥८॥

घत्ता

जे चउदिसेँहिँ थिय णिय डाल पसारेँवि तरुवर ।
'मा रुव चन्दणहि' णं साहारन्ति सहोयर ॥९॥

[८]

अप्पाणउ तो वि ण संथवइ । रोवन्ति पुणु वि पुणु उट्ठवइ ॥१॥
'हा पुत्त विउज्झहि लुहहि मुहु । हा विरुअएँ णिद्दएँ सुत्तु तुहुँ ॥२॥
हा किण्णालावहि पुत्त मइँ । हा किं दरिसाविय माय पइँ ॥३॥
हा उवसंहारहि रूवु लहु । हा पुत्त देहि पिय-वयणु महु ॥४॥
हा पुत्त काइँ किउ रुहिर-वहु । हा पुत्त एहि उच्छङ्गेँ चडु ॥५॥
हा पुत्त लाइ मुहेँ मुह-कमलु । हा पुत्त एहि पिउ थण-जुअलु ॥६॥
हा पुत्त देहि आलिङ्गणउ । जें णच्चमि वर्णे वद्धावणउ ॥७॥
णव-मासु छुद्धु जं मइँ उअँर । तं सहल मणोरह अज्जु जर्णे ॥८॥

घत्ता

हा हा दइ विहि कहिँ णियउ पुत्तु कहों लग्गमि ।
काइँ कियन्त किउ हा दइव कवण दिस लग्गमि ॥९॥

[९]

हा अज्जु अमङ्गलु विहिँ पुरहँ । पायाललङ्क - लङ्काउरहँ ॥१॥
हा अज्जु दुक्खु वन्धव-जणहों । हा अज्जु पडिय भुअ रावणहों ॥२॥
हा अज्जु खरहों रोवावणउ । हा अज्जु रिउहुँ वद्धावणउ ॥३॥

मूर्छाने एक प्रकारसे उसकी बहुत बड़ी सहायता की जो उसके गमनशील प्राणोंको बचा लिया। उठकर वह फिर दोनों हाथ पीटने लगी। कभी वह सिर पीटती और कभी छाती। कभी वह (अपने पुत्रको) पुकार उठती और कभी डाढ़ मारकर रोने लगती। देखती, गिरती पड़ती, उठती और फिर वह क्रन्दन करने लगती। इस तरह बार-बार, अपनेको प्रताड़ित करती, और कभी धरतीपर सिर पटक देती। उसके रोदनका स्वर आकाशमें गूँज रहा था। चारों ओर लगे हुए वृक्ष, मानो अपनी डालोंसे यह संकेत कर रहे थे कि "चन्द्रनखा रो मत" और भाईकी तरह उसे सहारा दे रहे थे ॥१-६॥

[८] तो भी वह, किसी भी प्रकार अपने आपको ढाढ़स नहीं दे पा रही थी। रोती हुई वह बार-बार कह उठती," हे पुत्र! तुम चिद्रूप महानिद्रामें क्यों निमग्न हो, हे पुत्र! मुझसे क्यों नहीं बोलते, हे पुत्र! तुमने माँको यह सब क्या दिखाया, अहा! अपने रूपको तुम फिरसे खोल दो, हे पुत्र! मुझसे मीठी बातें करो। हे पुत्र! तुम्हारे वस्त्र रक्तरञ्जित क्यों हैं? हे पुत्र आ, और मेरी गोदमें चढ़। हे पुत्र अपना मुखकमल मेरे मुँहसे लगा। हे पुत्र! आ और मेरा दूध पी, हे पुत्र, मुझे आलिंगन दे, जिससे मैं वनमें बधावा नाच सकूँ, मैंने जिसके लिए, तुझे नौ माह पेटमें रखा, मेरे उस मनोरथको सफल कर। हा हा, हे रूठे हुए दैव, तूने मेरे पुत्रको कहाँ ले जाकर रख दिया। मैं उसे कहाँ खोजूँ? कृतान्तने यह सब क्या किया, हे दैव! मैं किस दिशामें जाऊँ? ॥१-६॥

[९] आज सचमुच विधाताने पाताललंका नगरका बहुत बड़ा अमंगल किया है। आज बाँधवजनोंको घोर दुख है, आज रावणकी मानो एक भुजा टूट गई है। आज खरको रोदन आ

हा अज्जु फुट्टु कि ण जमहों सिरु। हा पुत्त णिवारिउ मइ मि चिरु ॥४॥
तं खग्गु ण लावण्णहों णरहों। पर होइ अद्ध-चक्केसरहों ॥५॥
किं तेण जि पाडिउ सिर-कमलु। मणि-कुण्डल - मण्डिय-गण्डयलु' ॥६॥
पुणु पुणु दरिसावइ सुरयणहों। रवि-हुअवह - वरुण - पहञ्जणहों ॥७॥
,अहों देवहों बालु ण रक्खियउ। सव्वेंहिं मिलेवि उवेक्खियउ ॥८॥

घत्ता

तुम्हइँ दोसु णवि महु दोसु जाहें मणु ताविउ।
मच्छुडु अण्ण-भवें मइँ अण्णु को वि संताविउ' ॥९॥

[१०]

एत्थन्तरें सोएं परियरिय। णाडि जिह तिह पुणु मच्छर-भरिय ॥१॥
णिट्ठुरिय-णयण विप्फुरिय-मुह। विकराल णाइँ खय-काल-छुह ॥२॥
परिवड्ढिय रवि-मण्डलें मिलिय। जम-जीह जेम णहें किलिगिलिय ॥३॥
'जें घाइउ पुत्तु महु-त्तणउ। खर-णन्दणु रावण-भायणउ ॥४॥
तहों जीविउ जइ ण अज्जु हरमि। तो हुयवह-पुञ्जें पइसरमि' ॥५॥
इय पइज्ज करेप्पिणु चन्दणहि। किर वलेंवि पलोवइ जाम महि ॥६॥
लय-मण्डवें लक्खिय वे वि णर। णं धरणिहें उब्भिय उभय कर ॥७॥
तहिं एक्कु दिट्ठु करवाल-भुउ। 'लइ एण जि हउ महु तणउ सुउ ॥८॥

घत्ता

एण जि असिवरेंण णियमन्थहों कुल-पायारहों।
सहुँ वंसत्थलेंण सिरु पाडिउ सम्बुकुमारहों ॥९॥

[११]

जं दिट्ठ वणन्तरें वे वि णर। गउ पुत्त-विओउ कोउ णवर ॥१॥
आयामिय विरह-महाभडेंण। णच्चाविय मयरद्धय-णडेंण ॥२॥

गया, आज सचमुच शत्रुओंकी बढ़ती होगी, हा आज उस यमका सिर क्यों न फूट गया जिसने मेरे पुत्रका हमेशाके लिए अपलाप कर दिया। वह खड्ग किसी मामूली आदमीके लिए नहीं था, किसी अर्ध चक्रवर्तीके लिए था, क्या उसीने मणिमय कुण्डलोंसे मण्डित गण्डस्थलवाला उसका सिरकमल काटकर गिरा दिया है। वह बार-बार रवि, अग्नि, वरुण और पवन आदि देवोंको उसे दिखाकर कह रही थी, "अरे तुम लोग मेरे लालको नहीं बचा सके। तुम सबने मिलकर इसकी उपेक्षा की। परन्तु इसमें तुम्हारा दोष नहीं। दोष है मेरा, शायद दूसरे जन्ममें मैंने किसी दूसरेको सताया होगा" ॥१-९॥

[१०] इस प्रकार शोकातुर वह, जिस किसी प्रकार ईर्ष्यासे भरी हुई नटीकी तरह जान पड़ती थी। उसकी आँखें डरावनी, मुख खुला हुआ, और रूक्ष। वह क्षयकालकी भाँति विकराल थी। बढ़कर वह सूर्य-मंडलमें जा मिली और यमकी जिह्वाकी तरह किलकिलाती हुई वह बोली—"जिसने आज, खरके नन्दन, रावणके भानजे और मेरे पुत्रकी हत्या की है, उसके जीवनका यदि मैं हरण नहीं करूँ तो आगकी लपटोंमें प्रवेश कर लूँगी।" यह प्रतिज्ञा करके वह ज्यों-ही धरतीकी ओर मुड़ी त्यों-ही उसे लता-मंडपमें दो आदमी ऐसे दिखाई दिये मानो वे धरतीके ही उठे हुए दो हाथ हों? उनमेंसे एक, हाथमें तलवार लिये हुए दिखाई दिया। उसने सोचा, शायद इसीने मेरे पुत्रको मारा है। इस तलवारसे इसने मेरे कुलकी प्राचीरको तोड़ दिया है, वंशस्थलके साथ ही मेरे कुमारका सिर भी काटकर गिरा दिया है ॥१-९॥

[११] वनके बीचमें जैसे ही उसने उन दोनों नरोंको देखा वैसे ही उसका पुत्रवियोगका क्रोध चला गया। और अब वियोग

पुलइज्जइ पासेइज्जइ वि । परितप्पइ जर-खेइज्जइ वि ॥३॥
मुच्छिज्जइ उम्मुच्छिज्जइ वि । रुणुरुणइ वियारहिँ भज्जइ वि ॥४॥
'वरि एउ रूउ उवसंघरमि । सुर-सुन्दरु कण्ण-वेसु करमि ॥५॥
पुणु जामि एत्थु उम्बर-भवणु । परिणेसइ अवसें एक्कु जणु' ॥६॥
हियइच्छिउ तक्खणें रूउ किउ । णं कामहों कोड्डु(?) जँ ति विहिउ ॥७॥
गय तहिँ जहिँ तिण्णि वि जणइँ वणेँ । पुणु धाहहिँ रुअणहिँ लग्ग खणें ॥८॥

घत्ता

पभणइ जणय-सुय 'वल पेक्खु कण्ण किह रोवइ ।
जं कालन्तरिउ तं दुक्खु णाइँ उक्कोवइ' ॥९॥

[१२]

रोवन्ती वड्डें मलहरेँण । हक्कारेँवि पुच्छिय हलहरेँण ॥१॥
'कहि सुन्दरि रोवहि काइँ तुहुँ । किं पडिउ किं पि णिय-सयण-दुहु ॥२॥
किं केण वि कहिँ वि परिब्भविय' । तं वयणु सुणेवि वाल चविय ॥३॥
हउँ पाविणि दीण दयावणिय । णिब्वन्धव रुवमि वराय णिय ॥४॥
वणेँ भुल्ली णउ जाणमि दिसउ । णउ जाणमि कवणु देसु विसउ ॥५॥
कहिँ गच्छमि चक्कवूहेँ पडिय । महु पुण्णेहिँ तुम्ह समावडिय ॥६॥
जइ अम्हहुँ उप्परि अत्थि मणु । तो परिणउ विण्हु वि एक्कु जणु ॥७॥
तं वयणु सुणेवि हलाउहेँण । किय णक्खच्छोडी राहवेँण ॥८॥

महाभटने उसपर धावा बोल दिया। कामदेव उसे नचाने लगा। वह सहसा पुलकित हो उठी। वह पसीना-पसीना हो गई। वह सन्तप्त होने लगी, उसके ज्वरकी पीड़ा बढ़ गई। कभी वह मूर्छित होती तो कभी उच्छ्वास छोड़ती। कभी रुन-झुन कर उठती। इस प्रकार वह विकारसे भग्न हो उठी। उसने मनमें सोचा, "अच्छा मैं अब अपने इस रूपको छिपा लूँ और सुर-सुन्दरीका नया रूप ग्रहण कर लूँ तब इस, उत्तम लताभवनमें प्रवेश करूँ। इनमेंसे एक-न-एक अवश्य मुझसे विवाह करेगा।" यह विचारकर उसने तत्काल यथेच्छ सुन्दर रूप बना लिया। वह अब ऐसी लगने लगी मानो कामदेवने ही साक्षात् कोई कौतुक किया हो। कुछ दूरीपर जाकर वह ढाढ़ मारकर रोने लगी, उसके क्रन्दनको सुनकर सीतादेवीने रामसे कहा,—" आर्य, देखो तो वह लड़की क्यों रो रही है, जान पड़ता है जो दुःख कालसे अन्तरित था, वही अब इसपर प्रकट हो रहा है" ॥१-६॥

[१२] तब बलभद्र रामने ऊँचे स्वरमें पुकारकर रोती हुई उस बालासे पूछा "सुन्दरी, बताओ तुम क्यों रो रही हो? क्या किसी स्वजनका दुख आ पड़ा है या कहीं किसीने तुम्हारा पराभव कर दिया है।" यह वचन सुनकर वह बाला बोली—"मैं पापिनी, दैवसे दयनीय, भाई-बन्धुओंसे हीन एक दम अनाथ हूँ। इसी लिए रो रही हूँ। इस वनमें भूल गई हूँ। दिशा मैं जानती नहीं, और न ही मैं यह जानती हूँ कि कौन मेरा देश या प्रान्त है। कहाँ जाऊँ समझमें नहीं आता। मैं जैसे चक्रव्यूहमें पड़ गई हूँ। अब मेरे पुण्यसे तुम अच्छे आ गये हो, यदि मेरे ऊपर आपका मन हो तो दोमेंसे कोई एक मेरा वरण कर ले।" यह वचन सुनते ही

घत्ता

करयलु दिण्णु मुहेँ किय वङ्क भउँहइ सिरु चालिउ ।
'सुन्दर ण होइ वहु' सोमित्तिहेँ वयणु णिहालिउ ॥९॥

[१३]

जो णरवइ अइ - सम्माण-करु । सो पत्तिय अत्थ - समत्थ - हरु ॥१॥
जो होइ उवायणें वच्छलउ । सो पत्तिय विसहरु केवलउ ॥२॥
जो मित्तु अकारणें एइ घरु । सो पत्तिय दुट्ठु कलत्त - हरु ॥३॥
जो पन्थिउ अलिय-सणेहियउ । सो पत्तिय चोरु अणेहियउ ॥४॥
जो णरु अत्थक्कऍ लल्लि - करु । सो सत्तु णिरुत्तउ जीव - हरु ॥५॥
जा कामिणि कवड-चाडु कुणइ । सा पत्तिय सिर-कमलु वि लुणइ ॥६॥
जा कुलवहु सवहेँहिँ ववहरइ । सा पत्तिय विरुय - सयइँ करइ ॥७॥
जा कण्ण होवि पर-णरु वरइ । सा किं ण वड्डन्ती परिहरइ ॥८॥

घत्ता

आयहुँ अट्ठहु मि जो णरु मूढउ वीसम्भइ ।
लोइउ धम्मु जिह छुडु विप्पउ पऍ पऍ लब्भइ ॥९॥

[१४]

चिन्तेप्पिणु थेरासण - मुहेँण । सोमित्ति वुत्तु सीराउहेँण ॥१॥
'महु अत्थि भज्ज सुमणोहरिय । लइ लक्खण वहु लक्खण-भरिय' ॥२॥
जं एव समासऍ अक्खियउ । कण्हेण वि मणें उवलक्खियउ ॥३॥
हउँ लेमि कुमारि स-लक्खणिय । जा आगमेँ सामुद्दऍ भणिय ॥४॥
जङ्घोरु - अहङ्कय वट्ट - थण । दीहर - कर - णक्खङ्गुलि - णयण ॥५॥
रत्तंहि गइन्द - णिरिक्खणिय । चामीयर - वरण सपुज्जणिय ॥६॥
जा उण्णय णासेँ णिलाडेँ तिय । सा होइ ति - पुत्तहुँ मायरिय ॥७॥

रामने फौरन छुट्टी कर ली। मुँहपर दोनों हाथ रखकर, भौहें टेढ़ीकर, उन्होंने अपना मुख फेर लिया और कहा—"वधू, यह सुन्दर न होगा। तुम लक्ष्मणका मुख जोहो" ॥१–६॥

[१३] राम सोचने लगे—"जो राजा अत्यन्त सम्मान करने वाला होता है उसे अवश्य अर्थ और सामर्थ्यका हरण करनेवाला होना चाहिए। जो दान देनेमें अधिक ममत्व रखता है उसे अवश्य ही विषधर जानो। जो मित्र अकारण घर आता है उसे अवश्य स्त्री हरण करनेवाला दुष्ट समझो। जो पथिक मार्गमें झूठा स्नेह जताता है उसे अवश्य ही अहितकारी चोर समझो। जो नर जल्दी-जल्दी चापलूसी करता है उसे अवश्य जीवहरण करने-वाला समझो। जो स्त्री कपटसे भरी हुई चाटुता करती है वह निश्चय ही सिरकमल काटेगी। जो कुल-वधू बार-बार शपथ करती है वह अवश्य सैकड़ों बुराइयाँ करनेवाली है, जो कन्या होकर भी पर-पुरुषको वरण करती है क्या वह बड़ी होनेपर ऐसा करना छोड़ देगी। लौकिक धर्मकी भाँति, जो मूढ़ इन बातोंमें विश्वास नहीं करता, वह अवश्य ही पग-पगमें अप्रिय पाता है ॥१–६॥

[१४] तब कमल-मुख रामने सोच-विचारकर लक्ष्मणसे कहा—"मेरे पास एक सुन्दर स्त्री है, तुम अनेक लक्षणोंसे युक्त हो, चाहो तो इसे ले लो।" जब रामने अत्यन्त संक्षेपमें यह कहा तो लक्ष्मणने भी तुरन्त बात ताड़ ली। उन्होंने कहा—"नहीं, मैं तो सुलक्षणा स्त्री लूँगा जिसका सामुद्रिक-शास्त्रोंमें उल्लेख है। जिसकी जाँघें, उर, अभङ्ग हों। हाथ, नख, अंगुली, आँखें लम्बी हों। जिसके पद आरक्त हों और (गति) गजेन्द्रकी भाँति दर्शनीय हो जो सुनहले रङ्गकी सम्माननीय हो। जिसका भाल और नाक उन्नत

कायहिँ स - गग्गर तावसिय । सम - चलणङ्गुलि अचिराउसिय ॥८॥
जा हंस - वंस - वरवीण - सर । मडु - वण्ण महा - घण-छाय-धर ॥९॥
सुह-भमर-णाहि-सिर-भमर-थण(?)। सा वहु-सुय वहु-धण वहु-सयण ॥१०॥
जहेँ वामएँ करयलेँ होन्ति सय । मीणारविन्द - विस - दाम-धय ॥११॥
गोउरु घरु गिरिवरु अहव सिल । सु-पसत्थ स-लक्खण सा महिल ॥१२॥
चक्कङ्कुस - कुण्डल - उद्धरिह । रोमावलि वलिय भुयङ्ग जिह ॥१३॥
अद्धेन्दु - णिडालेँ सुन्दरेँण । मुत्ताहल - सम - दन्तन्तरेँण ॥१४॥

घत्ता

आएँहिँ लक्खणेँहिँ सामुद्दएँ वणि [य] सुणिज्जइ ।
चक्काहिवहोँ तिय चक्कवइ पुत्तु उप्पज्जइ ॥१५॥

[१५]

वहु राहव गृह अलक्खणिय । हउँ भणमि ण लक्खणेण भणिय ॥१॥
जङ्घोरु - करेहिँ समंसलिय । चल - लोयण गमणुत्तावलिय ॥२॥
कुम्मुण्णय - पय विसमङ्गुलिय । धुय-कविल-केसि खरि पङ्गुलिय(?) ॥३॥
सव्वङ्ग - समुट्ठिय - रोम-रइ । तहेँ पुत्तु वि भत्तारु वि मरइ ॥४॥
कडि-लञ्छण भउँहावलि-मिलिय । सा देव णिरुत्तउ भेन्दुलिय ॥५॥
दालिद्दिणि तित्तिर - लोयणिय । पारेवयच्छि जण - भोजणिय ॥६॥
विरसउह - दिट्ठि विरसउह-सर । सा दुक्खहुँ भायण होइ पर ॥७॥
णासग्गेँ थोरेँ मन्थरेँण । सा लक्खिय किं वहु-वित्थरेण ॥८॥
कडि-चिहुर-णाहि(?)मुह-भासुरिय । सा रक्खसि वहु-भय-भासुरिय ॥९॥
कद्दु-अक्खिय मत्त-गइन्द-छवि । हउँ एहिय परिणमि कण्ण णवि' ॥१०॥

हो, वह तीन-तीन पुत्रोंकी माता होती है। जिसके पैर और स्वर काककी तरह हों और पैरकी अंगुलियाँ बराबर हों, और शोभा क्षणिक हो वह तापसी होती है। जो हंस-वंश, और वीणाके उत्तम स्वरवाली हो। मेरे रङ्गकी भाँति अत्यन्त कांतिमती हो तथा जिसकी नाभि, सिर और स्तन सुन्दर तथा सुडौल हों वह बहुपुत्रवती, धनवती और कुटुम्बवाली होती है। जिसकी बाईं हथेलीमें चक्र, अङ्कुश और कुण्डल उभरे हों, रोमराजि साँपकी तरह मुड़ी हुई हो, ललाट अर्धचन्द्रकी तरह सुन्दर हो, दाँत मोतीकी तरह चमकते हों; इन लक्षणोंसे युक्त वनिताके विषयमें यह कहा जाता है (सामुद्रिक-शास्त्रमें) कि वह चक्रवर्तीकी पत्नी होती है और उसका पुत्र भी चक्रवर्ती होता है ॥१-६॥

[१५] परन्तु राघव, यह वधू कुलक्षणी है। यह मैं नहीं, सामुद्रिक शास्त्र कह रहा है। जिसकी जंघा और पिंडली स्थूल हों, आँखें चञ्चल, और जो चलनेमें उतावली करती है, जिसके पैर कछुएके समान ऊँचे हों, अंगुलियाँ विरल और [illegible] वर्णके चंचल हों, सारे शरीरमें रोमराजी उगी हुई हो उसके पुत्र और पति दोनों मर जायेंगे। जिसके ऊपर [illegible] और भौंहें मिली हुई हों, हे देव! वह निश्चय ही दुश्चरित्र होती है; दरिद्र, तीतर या कबूतर-सी आँखवाली तो निश्चय ही [illegible] होती है। काकके समान दृष्टि और स्वरवाली जो हो वह अवश्य ही दुखकी पात्र है। जिसकी नाक आगे कुछ चिपटी या लटकती होती है, बहुत विस्तारसे क्या, जिसके दाँत ऊपर तक नहीं होते और जो मसाली होती वह बहुत [illegible] होती है। जिसकी कमर पतली और छवि [illegible] की भाँति हो, ऐसी कन्यासे मैं विवाह नहीं कर सकता।" यह सुनकर चन्द्रनखाने उसे

घत्ता

पभणइ चन्दणहि 'किं णियय-सहावें लज्जमि ।
जइ हउँ णिसियरिअ तो पइ मि अज्जु स इँ भु ञ्जमि' ॥११॥

[३७. सत्ततीसमो संधि]

चन्दणहि अलज्जिय गुम्र पगज्जिय 'मरु मरु भूयहुँ देमि बलि' ।
णिय-रूवें वड्ढिय रण-रसें अड्ढिय रावण-रामहुँ णाइँ कलि ॥

[१]

पुणु णु पुवि पवड्ढिय किलिकिलन्ति । जालावलि-जाला-सय मुअन्ति ॥१॥
भय-भीसण कोवाणल-सणाह । णं धरएँ समुब्भिय पवर वाह ॥२॥
णह-सरि-रवि-कमलहों कारणत्थि । अहवइ णं अब्भुद्धारणत्थि ॥३॥
णं घुसलइ अब्भ-चिरिड्डिहिल्लु । तारा– बुब्बुव– सय– विड्डिरिल्लु ॥४॥
ससि-लोणिय-पिण्डउ लेवि धाइ । गह-डिम्भहों पीहउ देइ णाइँ ॥५॥
अहवइ किं बहुणा वित्थरेण । णं णहयल-सिल गेण्हइ सिरेण ॥६॥
णं हरि-बल-मोत्तिय-कारणेण । महि-गयण-सिप्पि फोडइ खणेण ॥७॥
बलएवें वुच्चइ 'वच्छ वच्छ । तुहुँ बहुयहेँ चरियइँ पेच्छ पेच्छ ॥८॥

घत्ता

चन्दणहि पजम्पिय तिणु वि ण कम्पिय 'लइउ खग्गु हउ पुत्तु जिह ।
तिण्णि वि खज्जन्तइँ मारिज्जन्तइँ रक्खेज्जहों अप्पाणु तिह ॥

रामने फौरन खुट्टी कर ली। मुँहपर दोनों हाथ रखकर, भौहें टेढ़ीकर, उन्होंने अपना मुख फेर लिया और कहा—"वधू, यह सुन्दर न होगा। तुम लक्ष्मणका मुख जोहो" ॥१-६॥

[१३] राम सोचने लगे—"जो राजा अत्यन्त सम्मान करनेवाला होता है उसे अवश्य अर्थ और सामर्थ्यका हरण करनेवाला होना चाहिए। जो दान देनेमें अधिक ममत्व रखता है उसे अवश्य ही विषधर जानो। जो मित्र अकारण घर आता है उसे अवश्य स्त्री हरण करनेवाला दुष्ट समझो। जो पथिक मार्गमें झूठा स्नेह जताता है उसे अवश्य ही अहितकारी चोर समझो। जो नर जल्दी-जल्दी चापलूसी करता है उसे अवश्य जीवहरण करनेवाला समझो। जो स्त्री कपटसे भरी हुई चाटुता करती है वह निश्चय ही सिरकमल काटेगी। जो कुल-वधू बार-बार शपथ करती है वह अवश्य सैकड़ों बुराइयाँ करनेवाली है, जो कन्या होकर भी पर-पुरुषको वरण करती है क्या वह बड़ी होनेपर ऐसा करना छोड़ देगी। लौकिक धर्मकी भाँति, जो मूढ़ इन बातोंमें विश्वास नहीं करता, वह अवश्य ही पग-पगमें अप्रिय पाता है ॥१-६॥

[१४] तब कमल-मुख रामने सोच-विचारकर लक्ष्मणसे कहा—"मेरे पास एक सुन्दर स्त्री है, तुम अनेक लक्षणोंसे युक्त हो, चाहो तो इसे ले लो।" जब रामने अत्यन्त संक्षेपमें यह कहा तो लक्ष्मणने भी तुरन्त बात ताड़ ली। उन्होंने कहा—"नहीं, मैं तो सुलक्षणा स्त्री लूँगा जिसका सामुद्रिक-शास्त्रोंमें उल्लेख है। जिसकी जाँघें, उर, अभङ्ग हों। हाथ, नख, अंगुली, आँखें लम्बी हों। जिसके पद आरक्त हों और (गति) गजेन्द्रकी भाँति दर्शनीय हो जो सुनहले रङ्गकी सम्माननीय हो। जिसका भाल और नाक उन्नत

[११]

तं णिसुणेंवि णिय-कुल-भूसणेण । लहु लेहु विसज्जिउ दूसणेण ॥१॥
सण्णद्धु खरु वि वहु-समर-सूरु । अप्फालेंवि वलें संगाम-तूरु ॥२॥
विहडप्फड भड सण्णद्ध के वि । सम्माण - दाणु रिणु संभरेवि ॥३॥
केण वि करेण करवालु गहिउ । केण वि धणुहरु तोणीर-सहिउ ॥४॥
केण वि मुसण्ढि मोग्गरु पचण्डु । केण वि हुलि केण वि चित्तदण्डु ॥५॥
णाणाविह - पहरण-गहिय-हत्थ । सण्णद्ध सुहड रण - भर-समत्थ ॥६॥
णीसरिउ सेण्णु परिहरेंवि सङ्क । णं वमेवि लग्ग पायाल - लङ्क ॥७॥
रह - तुरय -गइन्द-णरिन्द-विन्द । णं सु-कइ-मुहहों णिग्गन्ति सद्द ॥८॥

घत्ता

खर-दूसण-साहणु हरिस-पसाहणु अमरिस-कुद्धउ धाइयउ ।
गयणङ्गणें लीयउ णावइ वीयउ जोइस-चक्कु पराइयउ ॥९॥

[१२]

जं दिट्ठु णहङ्गणें दणु-णिहाउ । वलएवें वुत्त सुमित्ति - जाउ ॥१॥
'एँउ दीसइ काइँ णहग्ग-मग्गें । किं किण्णर-णिवहु व चलिउ सग्गें ॥२॥
किं पवर पक्खि किं घण विसट्ट । किं वन्दण-हत्तिएँ सुर पयट्ट' ॥३॥
तं वयणु सुणेप्पिणु भणइ विण्हु । 'वल दीसइ वइरिहिँ तणउ चिण्हु ॥४॥
खग्गेण विवाइउ सीसु जासु । कुढें लग्गउ मच्छुडु को वि तासु' ॥५॥
अवरोप्परु ए आलाव जाव । हक्कारिउ लक्खणु खरेंण ताव ॥६॥
'जिह सम्बुकुमारहों लइय पाण । तिह पाव पडिच्छहि एन्त वाण ॥७॥
जिह लइउ खग्गु पर-णारि भुत्त । तिह पहरु पहरु पुण्णालि-पुत्त' ॥८॥

[२] तब उसके असुहावने वचन सुनकर दृढ़ कठोर कठिन और सन्तापकारी लक्ष्मणने अँगुली और अँगूठेसे दबाकर उसे तलवार दिखाई। उसका मण्डलाग्र थर-थर काँप रहा था, मानो पतिके भयसे सुकलत्र ही थर-थर काँप रही हो। अनवरत मदजल झरते नरनाशक गजोंके कुम्भस्थलोंको विदीर्ण करनेसे उस खड्गकी धारमें जो मोती समूह लग गया था मानो वही उसके प्रस्वेदकण रूपी चिनगारियाँ थीं। उस वैसे खड्गको लेकर लक्ष्मणने विद्याधरीसे कहा, "यह वही सूर्यहास खड्ग है जिसने तुम्हारे पुत्रके प्राण हरण किये, यदि कोई (तुम्हारा) मनुष्य रण-भार उठानेमें समर्थ हो तो उसके लिए यह धर्मका हाथ बढ़ा हुआ है।" यह सुन खर-पत्नी चन्द्रनखा बोली, "यह काम क्या नहीं हो सकता। देखूँ आज कौन मुझे मार या हटा सकता है" यह कहकर गरजती हुई और पैरोंसे धरतीको चपाती हुई, विलपती वह, अतुल देह खर और दूषणके निकट पहुँची ॥१-१०॥

[३] जब वह उनके पास पहुँची तो उसका मुख दीन था, वह रो रही थी और आँखोंसे मेघधाराकी तरह अश्रुधारा प्रवाहित थी। अपनी लम्बी केशराशि उसने कटिभाग तक ऐसी फैला रक्खी थी मानो सर्पसमूह चन्दनलतासे लिपट गये हों। दोजके चन्द्रकी तरह अपने नखोंसे उसने अपने आपको विदीर्ण कर लिया था। रक्त-रञ्जित उसके लाल स्तन ऐसे लगते थे मानो कुंकुममण्डित स्वर्णिम कलश हों। या मानो रामलक्ष्मणकी कीर्ति चमक उठी हो या मानो खर, दूषण और रावणकी भवितव्यता ही हो, मानो निशाचरके लिए दुखकी खान हो, मानो मन्दोदरीके पतिकी हानि हो, या मानो लङ्कामें प्रवेश करती हुई आशङ्का ही हो। वह पलभर में पाताललङ्का जा पहुँची और अपने भवनमें ढाढ़ मारकर ऐसे

घत्ता

कूवारु सुणेप्पिणु धण पेक्खेप्पिणु राएं वलें वि पलोइयउ ।
तिहुयणु संघारें वि पलउ समारें वि णाइँ कियन्तें जोइयउ ॥६

[४]

कूवारु सुणेंवि कुल-भूसणेण । चन्दणहि पपुच्छिय दूसणेण ॥१॥
कहें केणुप्पाडिउ जमहों णयणु । कहें केण पजोइउ काल-वयणु ॥२॥
कहि केण कियन्तहों कियउ मरणु । कहि केण कियउ विस-कन्द-चरणु ॥३॥
कहि केण वद्ध पवणेण पवणु । कहि केण दड्ढु जलणेण जलणु ॥४॥
कहि केण भिण्णु वज्जेण वज्जु । कहि केण धरिउ जलु जलेंण अज्जु ॥५॥
कहि केण भाणु उण्हेण तविउ । कहि केण समुद्दु तिसाएँ खविउ ॥६॥
कहि केण खुडिउ फणि-मणि-णिहाउ । कहें केण सहिउ सुर-कुलिस-घाउ ॥७॥
कहि केण हुआसणें झम्प दिण्ण । कहें केण दसाणण-पाय छिण्ण ॥८॥

घत्ता

चन्दणहि पवोल्लिय अंसुजलोल्लिय 'जण-वल्लहु महु तणउ सुउ ।
ओलग्गइ पाणेंहिं विणय-समाणेंहिं णरवइ सम्वुकुमारु मुउ ॥९॥

[५]

आयण्णें वि सम्वुकुमार - मरणु । संतावण - सोय-विओय - करणु ॥१॥
पविरल-मुह वाह-भरन्त-णयणु । दुक्खाउरु दर - ओहुल्ल-वयणु ॥२॥
खरु रुयइ स-दुक्खइ 'अतुल-पिण्डु । हा अज्जु पडिउ महु वाहु-दण्डु ॥३॥
हा अज्जु जाय मणें गरुअ सङ्क । हा अज्जु सुण्ण पायाललङ्क ॥४॥
हा णन्दण सुर - पञ्चाणणासु । कवणुत्तरु देसि दसाणणासु ॥५॥
एत्थन्तरें ताम तिमुण्ड-धारि । वहु -वुद्धि पजम्पिउ वम्भयारि ॥६॥

रोने लगी जैसे खर-दूषणके लिए मारी ही घुस पड़ी हो। विलाप सुनकर, अपनी धन्याको देखनेके लिए खर इस तरह मुड़ा जिस तरह संहार और प्रलय करनेके विचारसे कृतान्त मुड़कर देखता है ॥१-६॥

[४] उसका क्रन्दन सुनकर कुलभूषण दूषणने चन्द्रनखासे पूछा, "कहो किसने (आज) यमके नेत्र उखाड़े, कहो किसने कालका मुख देखा है ? कहो किसने कृतान्तका वध किया, कहो बैलके स्कन्धको किसने चपेटा ? कहो पवनसे पवनको किसने बाँधा, बताओ आगसे आगको कौन जला सका ? कहो वज्रसे वज्रका भेदन किसने किया ? जलसे जलको धारण, आजतक किसने किया। सूर्यकी उष्णताको आजतक कौन तपा सका ? कहो समुद्रकी प्यास किसने शान्त की ? साँपके फनसमूहको किसने तोड़ा ? इन्द्रके वज्रका आघात कौन सहन कर सका ? कहो वनकी आगको कौन बुझा सका है ? कहो रावणके प्राण कौन छीन सकता है ?" (यह सुनकर) आँखोंमें आँसू भरकर चन्द्रनखाने कहा ! "राजन् मेरा जनप्रिय सुन्दर पुत्र कुमार शम्बूक, विनयके समान अपने प्राणोंको लेकर मर गया" ॥१-६॥

[५] अपने पुत्रकी, सन्ताप, शोक और वियोग उत्पन्न करने-वाली मृत्युकी बात सुनकर, म्लानमुख गलिताश्रु दुःखातुर और भयकातर खर रो पड़ा। (वह विलाप करने लगा) हे अतुल शरीर, आज मेरा बाहुदण्ड ही टूट गया है, आज मेरे मनमें बड़ी भारी आशंका उत्पन्न हो गई है। आज पाताललंका सूनी-सूनी लग रही है। हे पुत्र, देवसिंह रावणके लिए मैं अब क्या उत्तर दूँगा।" इसी बीचमें एक त्रिपुण्डधारी बहुबुद्धि ब्रह्मचारीने

'हे णरवइ मूढा रुअहि काइँ । संसारें अमन्तहुँ सुअ - सयाइँ ॥७॥
आयाइँ मुआइँ गयाइँ जाइँ । को सक्कइ राय गणेवि ताइँ ॥८॥

घत्ता

कहोँ घरु कहोँ परियणु कहोँ सम्पय-धणु माय वप्पु कहोँ पुत्तु तिय ।
कें कज्जें रोवहि अप्पउ सोयहि भव - संसारहोँ एह किय' ॥९॥

[६]

जं दुक्खु दुक्खु संथविउ राउ । पडिवोल्लिउ णिय-घरिणिएँ सहाउ ॥१॥
'कहेँ केण वहिउ महु तणउ पुत्तु' । तं वयणु सुणेंवि धणिआएँ वुत्तु ॥२॥
'सुणु णरवइ दुग्गमेँ दुप्पवेसेँ । दुग्घोट्ट - थट्ट - घट्टण - पवेसेँ ॥३॥
पञ्चाणण - रुक्खुक्खय - करालेँ । तहिँ वेहएँ दण्डय-वणेँ विसालेँ ॥४॥
वे मणुस दिट्ठ सोण्डीर वीर । मेहारविन्द - सण्णिह - सरीर ॥५॥
कोवण्ड-सिलीमुह - गहिय-हत्थ । पर - वल-वल-उत्थल्लण - समत्थ ॥६॥
तहिँ एक्कु दिट्ठु तियसहुँ असज्झु । तें लइउ खग्गु हउ पुत्तु मज्झु ॥७॥
अण्णु वि अवलोवहि देव देव । कक्खोरु वियारिउ पेक्खु केव ॥८॥

घत्ता

वणेँ धरेँ वि रुयन्तो धाह मुअन्तो कह वि ण भुत्त तेण णरेँण ।
णिय-पुण्णेँहिँ चुक्की णह-मुह-लुक्की णलिणि जेम सरेँ कुञ्जरेँण' ॥९॥

[७]

तं वयणु सुणेंवि वहु-जाणएहिँ । उवलक्खिय अण्णेंहिँ राणएहिँ ॥१॥
'मालूर - पवर - पीवर - थणाएँ । पर एयइँ कम्मइँ अडयणाएँ ॥२॥
मज्झुड्डु ण समिच्छिय सुपुरिसेण । अप्पउ विद्दंसेंवि आय तेण' ॥३॥
एत्थन्तरेँ णिवइ णिएइ जाव । णह - णियर-वियारिय दिट्ठ ताव ॥४॥

कहा, "हे मूर्ख राजन् ! तुम रोते क्यों हो, संसारमें तुम्हारे सैकड़ों पुत्र घूम रहे हैं इनमें जो मर गये हैं उनको कौन गिन सकता है। किसका घर, किसके परिजन, किसकी सम्पत्ति और धन, आखिर तुम रोते किस लिए हो, अपनेको शोकमें मत डालो, संसारका यही क्रम है ॥१-६॥

[६] बहुत कठिनाईसे सचेत होनेपर खर अपनी पत्नीसे कहा, "मेरे पुत्रको किसने मारा ?" यह सुनकर वह बोली, "दुर्गम और दुःप्रवेश्य गज-संघर्षसे आकुल प्रदेश, तथा लाखों सिंहोंसे विकराल उस वनमें मैंने दो प्रचण्ड वीर देखे हैं। उनमेंसे एकके शरीरका रंग मेघवर्ण है और दूसरेका कमलके रंगका। धनुषबाण हाथमें लिये हुए वे दोनों शत्रुसेनाको परास्त करनेमें समर्थ हैं। उनमेंसे एकके पास सुन्दर कृपाण थी; उसीने उस खड्गको लिया है और मेरे पुत्रका वध भी किया है और हे देव ! यह भी तो सुनिए। उसने किस तरह मेरा वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया है। वनमें रोती और ढाढ़ मारती हुई भी मुझे पकड़कर किसी तरह वे मेरा भोग भर नहीं कर पाये। नखाग्रसे विदीर्ण होने पर भी मैं किसी प्रकार अपने पुण्योदयसे उसी प्रकार बच सकी जिस तरह सरोवरमें कमलिनी हाथीसे बच जाय ॥१-६॥

[७] चन्द्रनखाके वचन सुनकर, सयानी और जानकार दूसरी-दूसरी रानियोंको यह ताड़ते देर नहीं लगी, कि यह सब इसी (वेलके समान स्थूलस्तनी) कुलटाका कर्म है। शायद उस पुरुषने इसे नहीं चाहा होगा, इसी कारण अपनी ऐसी गत बनाकर, यह यहाँ आ गई। नखोंसे क्षत-विक्षत चन्द्रनखा खरको ऐसी लगी कि मानो लाल पलाशलता हो, या भ्रमरोंसे आच्छन्न

किंसुय-लय व्व आरत्त-वण्ण । रत्तुप्पल-माल व भमर-छुण्ण ॥५॥
तहिँ अहरु दिट्ठ दसणग्ग-भिण्णु । णं वाल-तवणु फग्गुणेँ उइण्णु ॥६॥
तं णयण-कडक्खवि खरु विरुद्धु । णं केसरि मयगल-गन्ध-लुद्धु ॥७॥
भउ भिउडि-भयङ्करु मुह-करालु । णं जगहोँ समुट्ठिउ पलय-कालु ॥८॥

घत्ता

अमर वि आकम्पिय एम पजम्पिय 'कहोँ उप्परि आरुट्ठु खरु' ।
रहु खञ्चिउ अरुणें सहुँ ससि-वरुणें 'मइँ वि गिलेसइ णवर णरु' ॥९॥

[८]

उट्ठन्तें उट्ठिउ भड-णिहाउ । अत्थाण-खोहु णिविसेण जाउ ॥१॥
चूरन्त परोप्परु सुहड ढुक्क । णं जलणिहि णिय-मज्जाय-चुक्क ॥२॥
सीसेण सीसु पट्टेण पट्टु । चलणेण चलणु करु कर-णिहट्टु ॥३॥
मउडेण मउडु तुट्टेवि लग्गु । मेहलु मेहल-णिवहेण भग्गु ॥४॥
उट्ठन्ति के वि तिण-समु गणन्ति । ओहावण-माणें ण वि णमन्ति ॥५॥
अह णमइ को वि किवणत्तणेण । पडिओ वि ण उट्ठइ भडु भरेण ॥६॥
दूसणेण णिवारिय वद्ध-कोह । विहडप्फड सण्णज्झन्ति जोह ॥७॥
'जइ पउ वि देहु आरूसमाण । तो होसइ रायहोँ तणिय आण ॥८॥

घत्ता

मं कज्जु विणासहोँ ताम वईसहोँ जो असि-रयणु मण्ड हरइ ।
सिरु खुडइ कुमारहोँ विज्जा-धारहोँ सो किं तुम्हहिँ ओसरइ ॥९॥

[९]

तो वरि किज्जउ महु तणिय वुद्धि । णरवइ असहायहोँ णत्थि सिद्धि ॥१॥
णाव वि ण वहइ विणु तारएण । जलणु वि ण जलइ विणु मारुएण ॥२॥
एक्कल्लउ गम्पिणु काइँ करहि । रयणायरेँ सन्तेँ तिसाएँ मरहि ॥३॥

रक्तकमलोंकी माला हो। दन्ताग्र भागसे कटे हुए उसके अधर ऐसे लगते थे मानो फागके महीनेमें सूर्योदय हुआ हो।" यह सब देख सुनकर खर उसी तरह भड़क उठा जिस तरह गजकी गन्ध पाकर सिंह भड़क उठता है। उस योधाकी भृकुटि भयंकर और आरक्त हो उठी। मानो जगमें प्रलय ही आना चाहता हो। देवता काँपकर आपसमें कहने लगे "अरे, खर आज किसपर कुपित हुआ है!" तदनन्तर शशि और वरुणके साथ रथमें चढ़कर खरने कहा कि मैं भी उस पामरको कवलित करूँगा ॥१–६॥

[८] इस प्रकार उसके उठते ही भट-समूह उठ खड़ा हुआ। पल-भरमें उसके दरवारमें खलबली मच गई। एक दूसरेको चपेटते और चूर-चूर करते हुए योधा वहाँ पहुँचने लगे मानो समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी हो। सिरसे सिर, पट्टसे पट्ट, पैरसे पैर और हाथसे हाथ टकराने लगे। मुकुटसे मुकुट और मेखलासे मेखला भग्न हो उठी। कितने ही योधा तृणके बराबर परवाह न करते हुए उठे। दीनता या मानके कारण वे नमस्कार तक नहीं कर रहे थे, यदि कृपणतावश कोई झुकता भी तो गिरकर सेनाके भारके कारण उठ ही नहीं पाता। इस प्रकार अहङ्कारसे भरे, क्रुद्ध तैयार होते हुए योधाओंको रोककर दूषण बोला, "यदि तुम क्रुद्ध होकर एक भी पैर रखोगे तो राजाकी अवज्ञा होगी, अपना विनाश मत करो। तुम लोग बैठ जाओ। जिसने बल पूर्वक तलवार (सूर्यहास) को हरण किया, और शम्बूक कुमारका सिरकमल तोड़ा है, विद्यामें पारङ्गत क्या तुम लोगोंसे हटेगा ॥१–६॥

[६] इसलिए अच्छा यह हो कि तुम लोग हमारी बुद्धिके अनुसार चलो, देखो बिना तारकके नाव बह जाती है। बिना पवनके आग तक नहीं जलती। इसलिए तुम अकेले गमन क्यों

सन्ते वि महग्गएँ विसहँ चडहि । जिणें अच्छिए वि संसारें पडहि ॥४॥
जसु सारहि फुडु भुवणेक्कवीरु । सुरवर-पहरण-चड्डिय सरीरु ॥५॥
जग-केसरि अरि-कुल-पलय-कालु । पर-वल-वगलामुहु भुअ-विसालु ॥६॥
दुद्दम- दाणव- दुग्गाह- गाहु । सुरकरि- कर- सम-थिर-थोर-वाहु ॥७॥
तेलोक्क- भुवग्गल- भड- तडक्क । दुद्दरिसण भीसण जम-फडक्क ॥८॥

घत्ता

तहाँ तिहुअण-मल्लहाँ सुर-मण-सल्लहाँ तियस-विन्द-संतावणहाँ ।
गउ सम्बु सुहग्गइ पइँ ओलग्गइ गम्पि कहिज्जइ रावणहाँ ॥९॥

[१०]

आयण्णेवि तं दूसणहाँ वयणु । खरु खरउ पवोल्लिउ गुञ्ज-णयणु ॥१॥
'धिद्धिं लज्जिज्जइ सुपुरिसाहुँ । पर एयइँ कम्मइँ कुपुरिसाहुँ ॥२॥
साहीणु जीउ देहत्थु जाव । किह गम्मइ अण्णहाँ पासु ताव ॥३॥
जाएं जीवें मरिएव्वउं जें । तो वरि पहरिउ वर-वइरि-पुञ्जें ॥४॥
जें लब्भइ साहुक्कारु लोएँ । अजरामरु को वि ण मच्च-लोएँ ॥५॥
जिम भिडिउ अज्जु अरि-वर-समुहें । जिम जणिय मणोरह सयण-विन्दें ॥६॥
जिम असि-सव्वल-कोन्तेहिँ भिण्णु । जिम जस-पडहउ तइलोक्के दिण्णु ॥७॥
जिम णहें तोसाविउ सुर-णिहाउ । जिम महु मि अज्जु खय-कालु आउ ॥८॥

घत्ता

जिम सत्तु-सिलायलें वहु-सोणिय-जलें भुउ परिहव-पङ्कु अप्पणउ ।
जिम स-धउ स-साहणु स-भडु स-पहरणु गउ णिय-पुत्तहाँ पाहुणउ ॥९॥

करते हो। (अरे) समुद्र पास होते हुए भी प्यासे क्यों मरते हो ? महागजके होनेपर भी बैलपर क्यों बैठते हो ? जिनेन्द्रकी पूजा करके भी संसारचक्रमें पड़ते हो ? जिसका सारथि भुवनमें अद्वितीय वीर है, जिसका शरीर वज्रसे भी बढ़कर दृढ़ है जो विश्वसिंह अरिकुलके लिए प्रलयकाल है, शत्रु सेनाके लिए बड़वानल है, विशालबाहु दुर्दम-दानव ग्राहोंको पकड़नेवाला ऐरावतकी सूँड़की तरह स्थूलबाहु त्रिलोककी भटशृङ्खलाको तोड़नेवाला दुर्दर्शनीय भीषण, और यमकी तरह चपेटनेवाला है ऐसे उस, देवोंके लिए शल्य स्वरूप और सुरसंतापक रावणसे जाकर कहो कि शम्बूक कुमार मारा गया है। आप (उसके हत्यारेका) पीछा करें ॥१-६॥

[१०] खर कड़ककर बोला, "धिक्कार धिक्कार तुम्हें, तुम सुपुरुषोंको लजा रहे हो, यह कापुरुषोंका कर्म हो सकता है। साहसी पुरुषके जब तक देहमें प्राण रहते हैं तब तक क्या वह दूसरेके पास जाता है। जो उत्पन्न हुआ है उसे जब मरना ही है तो अच्छा यही है कि शत्रु-समूह पर प्रहार किया जाय। उससे लोकमें साधुकार (शाबाशी) तो मिलेगा, फिर इस मर्त्यलोकमें अजर-अमर कौन है ? आज मैं अरिसमुद्रसे अवश्य भिड़ूँगा जिससे स्वजनोंका मनोरथ पूरा हो, असि, सव्वल और कोंतसे इस तरह भिड़ूँगा, इस तरह तीनों लोकोंमें यशका डङ्का बजाऊँगा, आकाश लोकमें सुरसमूहको इस तरह सन्तुष्ट करूँगा, भले ही इस तरह मेरा क्षयकाल आ जाय। आज मैं, बहु रक्तरञ्जित शत्रुरूपी शिलातलपर, अपने पराभवके पटको इस तरह धोऊँगा कि जिससे अपने पुत्रकी ही तरह उसे अतिथि (परलोक) का अतिथि बना सकूँ ॥१-६॥

[११]

तं णिसुणेंवि णिय-कुल-भूसणेण । लहु लेहु विसज्जिउ दूसणेण ॥१॥
सण्णद्ध खरु वि बहु-समर-सूरु । अप्फालेँवि वलेँ संगाम-तूरु ॥२॥
विहडप्फड भड सण्णद्ध के वि । सम्माण-दाणु रिणु संभरेवि ॥३॥
केण वि करेण करवालु गहिउ । केण वि धणुहरु तोणीर-सहिउ ॥४॥
केण वि मुसण्ढि मोग्गरु पचण्डु । केण वि हुलि केण वि चित्तदण्डु ॥५॥
णाणाविह-पहरण-गहिय-हत्थ । सण्णद्ध सुहड रण-भर-समत्थ ॥६॥
णीसरिउ सेण्णु परिहरेँवि सङ्क । णं वमेवि लग्ग पायाल-लङ्क ॥७॥
रह-तुरय-गइन्द-णरिन्द-विन्द । णं सु-कइ-मुहहोँ णिग्गन्ति सद्द ॥८॥

घत्ता

खर-दूसण-साहणु हरिस-पसाहणु अमरिस-कुद्धउ धाइयउ ।
गयणङ्गणेँ जोयउ णावइ वीयउ जोइस-चक्कु पराइयउ ॥९॥

[१२]

जं दिट्ठु णहङ्गणेँ दणु-णिहाउ । वलएवें वुत्तु सुमित्ति-जाउ ॥१॥
'एँउ दीसइ काइँ णहग्ग-मग्गेँ । किं किण्णर-णिवहु व चलिउ सग्गेँ ॥२॥
किं पवर पक्खि किं घण विसट्ट । किं वन्दण-हत्तिएँ सुर पयट्ट' ॥३॥
तं वयणु सुणेप्पिणु भणइ विण्हु । 'वल दीसइ वइरिहिँ तणउ चिण्हु ॥४॥
खग्गेण विवाइउ सीसु जासु । कुढेँ लग्गउ मच्छुडु को वि तासु' ॥५॥
अवरोप्परु ए आलाव जाव । हक्कारिउ लक्खणु खरेँण ताव ॥६॥
'जिह सम्वुकुमारहोँ लइय पाण । तिह पाव पडिच्छहि एन्त वाण ॥७॥
जिह लइउ खग्गु पर-णारि भुत्त । तिह पहरु पहरु पुण्णालि-पुत्त' ॥८॥

[११] यह सुनकर निजकुलभूषण दूषणने शीघ्र रावणके पास लेख भेजा। उधर, अनेक युद्धोंमें वीर खरने भी तैयार होकर रण-भेरी बजवा दी। अभिमानी कितने ही योधा, अपने प्रभुके सम्मान दान और ऋणकी याद करके तैयारी करने लगे। किसीने अपने हाथमें तलवार ली। किसीने तूणीर सहित धनुष ले लिया। किसीने प्रचण्ड भुसुंडि और मुद्गर, किसीने हुलि, किसीने चित्रदंड, इस तरह नाना अस्त्रोंको हाथमें लेकर, युद्धभार उठानेमें समर्थ आशंका छोड़कर सेना निकल पड़ी। पाताललंकामें कल-कल शब्द होने लगा। रथ, घोड़े, गजेन्द्र, और नरेन्द्र ऐसे निकल पड़े मानो कविके मुखसे शब्द ही निकल पड़े हों। खर दूषणकी सेना हर्षसे सन्नद्ध होकर, अमर्ष और क्रोधसे भरकर, आकाशसे जा लगी। उस समय ऐसा लगता था मानो आकाशमें दूसरा ही ग्रहचक्र आ पहुँचा हो ॥१-६॥

[१२] आकाशमें निशाचरोंका समूह देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा, "देखो यह क्या दीख रहा है, क्या कोई किन्नर-समूह स्वर्गको जा रहा है, या ये बड़े-बड़े पक्षी हैं, या विशेष महामेघ हैं, या कि यह देवसमूह है जो जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए जा रहा है।" यह सुनकर लक्ष्मणने कहा, "यह तो शत्रुकी सेना दिखलाई पड़ रही है, पहचानिए। मैंने तलवारसे जिसका सिर काटा था शायद उसीका कोई आत्मीयजन क्रुद्ध गया है।" इस तरह उनकी आपसमें बातें हो ही रहीं थीं कि खरने लक्ष्मणको ललकारा—"तुमने जैसे शम्बूक कुमारके प्राण लिये हैं! पाप, अब वैसे ही, आते हुए मेरे बाणोंकी प्रतीक्षा कर। तूने यह खड्ग क्या लिया दूसरेकी स्त्रीका ही भोग किया है। हे पुंश्चलीपुत्र! बचा-बचा

घत्ता

एक्केक्क-पहाणहुँ खरेंण समाणहुँ चउदह सहस समावडिय।
गय जेम मइन्दहों रिउ गोविन्दहों हक्कारेप्पिणु अब्भिडिय ॥९॥

[१३]

एत्थन्तरें भड-कडमद्दणेण। जोक्कारिउ रामु जणद्दणेण ॥१॥
'तुहुँ सीय पयत्तें रक्खु देव। हउँ धरमि सेण्णु मिग-जूहु जेम ॥२॥
जव्वेल करेसमि सीह-णाउ। तव्वेल एज्ज धणुहर-सहाउ' ॥३॥
तं वयणु सुणेंवि विहसिय-मुहेण। आसीस दिण्ण सीराउहेण ॥४॥
'जसवन्तु चिराउसु होहि वच्छ। करें लग्गउ जय-सिरि-वहुअ सच्छ' ॥५॥
तं सेवि णिमित्तु जणद्दणेण। वइदेहि णमिय रिउ-मद्दणेण ॥६॥
तं णिसुणेंवि सीयएँ वुत्तु एम। 'पञ्चिन्दिय भग्ग जिणेण जेम ॥७॥
वावीस परीसह चउ कसाय। जर-जम्म- मरण मण-काय-वाया ॥८॥

घत्ता

जिह भग्गु परम्मुहु रणें कुसुमाउहु लोहु मोहु मउ माणु खलु।
तिह तुहुँ भञ्जेज्जहि समरें जिणेज्जहि सयलु वि वइरिहिँ तणउ वलु' ॥९

[१४]

आसीस-वयणु तं लेवि तेण। अप्फालिउ धणुहरु महुमहेण ॥१॥
तें सद्दें वहिरिउ जगु असेसु। थरहरिय वसुन्धरि डरिउ सेसु ॥२॥
खरलक्खण वे वि भिडन्ति जाव। हक्कारिउ हरि तिसिरेण ताव ॥३॥
ते भिडिय परोप्पर हणु भणन्त। णं मत्त महागय गुलुगुलन्त ॥४॥
णं केसरि घोरोरालि देन्त। वाणेहिँ वाण छिन्दन्ति एन्त ॥५॥
मोग्गर-खुरुप्प-कणिणय पडन्ति। जीवेहिँ जीव णं खयहों जन्ति ॥६॥
एत्थन्तेंर अतुल परक्कमेणं। अद्धेन्दु मुक्कु पुरिसोत्तमेण ॥७॥
तहोँ तिसिरउ खुक्कु ण कह वि भिण्णु। धणुहरु पाडिउ धय-दण्डु छिण्णु ॥८॥

अपनेको।" इस प्रकार खरके समान एक-से-एक प्रमुख योधाओंने लक्ष्मणको घेर लिया तब वह भी हुंकार भरकर युद्धमें जाकर भिड़ गया ॥१-६॥

[१३] इसी बीच शत्रुसेनाका संहार करते हुए लक्ष्मणने रामसे कहा, "देव ! आप सीताकी रक्षा प्रयत्नपूर्वक कीजिये। मैं इन शत्रु-सैन्यको मृगझुंडकी तरह अभी पकड़ता हूँ। आप धनुष लेकर मेरी सहायताके लिए तब आयें जब मैं सिंहनाद करूँ।" यह सुनकर रामने लक्ष्मणको आशीर्वाद दिया और यह कहा, "वत्स तुम चिरायु बनो, यशस्वी हो, जयश्री वधू तुम्हारे हाथ लगे।" यह बात सुनकर रिपुसंहारक लक्ष्मणने सीतादेवीको प्रणाम किया। तब सीता बोली "जिस प्रकार जिनने पाँचों इन्द्रियोंको भङ्ग किया, बाईस परीषह, चार कषाय—जरा, जन्म, मरण, मन, वचन, कायको वशमें किया, तथा रणमुखमें कामदेवको पराजित किया, लोभ, मोह, मद, मानको जीता उसी प्रकार तुम भी युद्धमें जीतो और समस्त शत्रुसेनाका नाश करो" ॥१-६॥

[१४] इस आशीर्वादको लेकर धनुर्धारी लक्ष्मणने अपना धनुष चढ़ाया। उसकी ध्वनिसे ही सारा जग बहरा हो गया। धरती काँप उठी और शेष नाग डर गये। खर और लक्ष्मण भिड़ने ही वाले थे कि वीर त्रिशिराने लक्ष्मणको ललकारा। मानो सिंह ही दहाड़ उठा हो, या मदगज ही चिग्घाड़ा हो। मुद्गर, खुरपा, कर्णिक इस तरह पड़ने लगे मानो जीवसे जीव ही नाशको प्राप्त हो रहा हो। इतनेमें पुरुषोत्तम अतुल पराक्रमी लक्ष्मणने अर्धचन्द्र छोड़ा, उससे त्रिशिराका शिर किसी प्रकार बच गया। वह भग्न नहीं हुआ। उसका धनुष और ध्वजदण्ड छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़े।

अण्णुण्णु पुणुप्पुणु समरेँ वहुगुणु जं जं तिसिरउ लेवि धणु ।
तं तं उक्कण्ठइ खणु वि ण संठइ दइव-विहूणहोँ जेम धणु ॥९॥

[१५]

धणुहरु सरु सारहि छत्त-दण्डु । जं वाणहिँ किउ सय-खण्ड-खण्डु ॥१॥
तं अमरिस-कुद्धें दुद्धरेण । संभरिय विज्ज विज्जाहरेण ॥२॥
अप्पाणु पदरिसिउ वद्धमाणु । तिहिँ वयणेँहिँ तिहिँ सीसेँहिँ समाणु ॥३॥
पहिलउ सिरु कक्कड-कविल-केसु । पिङ्गल-लोयणु किय-वाल-वेसु ॥४॥
वीयउ सिरु वयणु वि णव-जुवाणु । उब्भिण्ण-वियड-मासुरि - समाणु ॥५॥
तइयउ सिरु धवलउ धवल-वयणु । फुरिआहरु दर-णिट्ठुरिय-णयणु ॥६॥
दुद्दरिसणु भीसणु वियड-दाढु । जिण-भत्तउ जिणवर-धम्म-गाढु ॥७॥
एत्थन्तरेँ पर-वल-मद्दणेण । वच्छत्थलेँ विद्धु जणद्दणेण ॥८॥

घत्ता

णाराएँहिँ भिन्देँ वि सीसइँ छिन्देँ वि रिउ महि-मण्डलेँ पाडियउ ।
सुरवरेँहिँ पचण्डेँहिँ स इँ भु व-दण्डेँहिँ कुसुम-वासु सिरेँ पाडियउ ॥९॥

[३८. अट्ठतीसमो संधि]

तिसिरउ लक्खणेण समरङ्गणेँ घाइउ जावँहिँ ।
तिहुअण-डमर-करु दहवयणु पराइउ तावँहिँ ॥

[१]

लेहु विसज्जिउ जो सुर-सीहहोँ । अग्गएँ पडिउ गम्पि दसगीवहोँ ॥१॥
पडिउ णाइँ वहु-दुक्खहँ भारु । णाइँ णिसायर-कुल-संघारु ॥२॥

बहुगुणी त्रिशिरा बार-बार युद्धमें दूसरा धनुष लेता पर वह भग्न होकर गिर पड़ता। वह वैसे ही क्षणभर भी नहीं ठहरता जैसे भाग्यसे आहत व्यक्तिका धन ॥१-६॥

[१५] धनुष बाण-सारथि छत्र दण्ड सभीको बाणोंसे जब लक्ष्मणने सौ-सौ टुकड़े कर दिये तब विद्याधर त्रिशिरा अमर्ष और क्रोधसे भर उठा। तब उसने अपनी विद्याका स्मरण किया। तत्काल वह तीन मुख और तीन सिरका हो गया। उसका आकार बढ़ गया। उनमें पहले सिरपर कठोर और कपिल केश थे। वह छोटा (बालरूप) था। आँखें पीली थीं। दूसरा मुख और सिर नवयुवकका था। उद्भिन्न और विकट मासुरिके सदृश। तीसरेके मुख और सिर, दोनों सफेद ही सफेद थे। अधर काँप रहे थे और आँखे अत्यन्त भयावनी थीं। अति दुदर्शनीय भीषण विकराल डाढ़ थी। जिनधर्मकी तरह प्रगाढ़ और जिन भक्त। परन्तु परबलसंहारक लक्ष्मणने उसे वक्षस्थलमें वेध दिया। लक्ष्मणके बाणोंसे उसके तीनों सिर कट गये और शत्रु धरणी-मण्डलपर गिर पड़ा। यह देखकर सुरवरोंने अपने प्रचण्ड बाहुओंसे उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा की ॥१-६॥



अड़तीसवीं संधि

जब तक लक्ष्मणने समराङ्गणमें त्रिशिराको मारा, तब तक त्रिभुवन भयंकर रावण भी वहाँ आ पहुँचा।

[२] सुरसिंह रावणके पास दूषणने जो लेखपत्र भेजा था, वह उसके सम्मुख ऐसे पड़ा था मानो रावणपर दुखका (भार) पहाड़ ही टूट पड़ा हो, मानो राक्षसकुलका संहार हो, या मानो

णाइँ भयङ्करु कलहहों मूलु । णाइँ दसाणण-मत्था-सूलु ॥३॥
लेँहँ कहिउ सव्वु अहिणाणेँहिँ । 'सम्बुकुमारु दलगइ पाणेँहिँ ॥४॥
अण्णु वि खग्ग-रयणु उद्दालिउ । खर-घरिणिहेँ हियवउ विद्दारिउ ॥५॥
तं णिसुणेवि वे वि जसभूसण । पर-बलेँ भिडिय गम्पि खर-दूसण ॥६॥
णारि-रयणु णिरुवमु सोहग्गउ । अच्छइ रावण तुज्झु जेँ जोग्गउ' ॥७॥
लेहु णिएँवि अत्थाणु विसज्जेँवि । पुप्फविमाणेँ चडिउ गलगज्जेँवि ॥८॥
करेँ करवालु करेप्पिणु धाइउ । णिविसेँ दण्डारण्णु पराइउ ॥९॥

घत्ता

ताव जणद्दणेँण खरदूसण-साहणु रुद्धउ ।
थिउ चउरङ्गु वलु णहेँ णिच्चलु संसएँ छुद्धउ ॥१०॥

[२]

तो एत्थन्तरेँ दीहर-णयणेँ । लक्खणु पोमाइउ दहवयणेँ ॥१॥
'वरि एक्कल्लओ वि पञ्चाणणु । णउ सारङ्ग-णिवहु वुण्णाणणु ॥२॥
वरि एक्कल्लओ वि मयलञ्छणु । ण य णक्खत्त-णिवहु णिल्लञ्छणु ॥३॥
वरि एक्कल्लओ वि रयणायरु । णउ जलवाहिणि-णियरु स-वित्थरु ॥४॥
वरि एक्कल्लओ वि वइसाणरु । णउ वण-णिवहु स-रुक्खु-गिरिवरु ॥५॥
चउदह सहस एक्कु जो रुम्भइ । सो समरङ्गणेँ मइ मि णिसुम्भइ ॥६॥
पेक्खु केम पहरन्तु पईसइ । धणुहरु सरु संधाणु ण दीसइ ॥७॥

घत्ता

णहि गय णहि तुरय णहि रहवर णहि धय-दण्डइँ ।
णवरि पडन्ताइँ दीसन्ति महियले रुण्डइँ' ॥८॥

[३]

हरि पहरन्तु पसंसिउ जावेँहिँ । जाणइ णयणकडक्खिय तावेँहिँ ॥१॥
सुकइ-कह व्व सु-सन्धि सु-सन्धिय । सु-पय सु-वयण सु-सद्द सु-वद्धिय ॥२॥

कलहका भयङ्कर मूल हो या रावणके मस्तकका शूल हो। उस लेखने अपने अभिज्ञानसे ही बता दिया, कि शम्बुकुमारके प्राणोंका अन्त हो गया। खड्ग रत्न छीन लिया गया, और खरकी स्त्रीके अङ्ग विदीर्ण कर दिये गये। यह सुनकर यशोभूषण दोनों भाई खर और दूषण जाकर शत्रु-सेनासे भिड़ गये हैं। वहाँ एक सुभग और अनुपम नारी रत्न है, हे रावण, वह तुम्हारे योग्य है।" वह लेख पढ़कर रावणने दरबार विसर्जित कर दिया। वह गरजकर, अपने पुष्पक विमानपर चढ़ गया। हाथमें तलवार लेकर वह दौड़ पड़ा और पलभरमें दण्डक वनमें जा पहुँचा। इतनेमें वहाँ लक्ष्मणने खर-दूषणकी सेनाको अवरुद्ध कर लिया। संशयमें पड़ी हुई चतुरङ्ग सेना आकाशमें निश्चलरूपसे स्थित थी। वह सब देखकर, विशाल नेत्र रावणने लक्ष्मणकी प्रशंसा की—सिंह अकेला ही अच्छा, मुँह ऊपर उठाये हरिणोंका झुण्ड अच्छा नहीं; मृगलांछित चन्द्रमा अकेला अच्छा, पर लांछनरहित बहुत-सा तारा-समूह अच्छा नहीं; रत्नाकर अकेला ही अच्छा, विस्तृत नदियोंका समूह ठीक नहीं। आग अकेले अच्छी, पर वृक्ष पर्वत समन्वित वन-समूह अच्छा नहीं। जो अकेला ही चौदह हजार सेनाको नष्ट कर सकता है, वह मुझे भी नष्ट कर देगा। देखो प्रहार करता हुआ वह कैसे प्रवेश कर रहा है। उसके धनुष-बाणका संधान दिखाई ही नहीं देता। न अश्व, न गज, न रथवर और न ध्वज-दण्ड केवल धड़ ही धड़ धरती पर गिरते हुए दिखाई देते हैं॥१–८॥

[२] प्रहार-शील कुमार लक्ष्मणकी जब वह इस प्रकार प्रशंसा कर ही रहा था कि इतनेमें ही उसने सीताको देखा। वह सुकविकी कथाकी तरह सुसंधि (परिच्छेद, अङ्गोंके जोड़)

थिर-कलहंस-गमण गइ-मन्थर । किस मज्झारें णियम्बे सु-वित्थर ॥३॥
रोमावलि मयरहरुत्तिण्णी । णं पिम्पिलि-रिञ्छोलि विलिण्णी ॥४॥
अहिणव - हुण्ड-पिण्ड - पीण-त्थण । णं मयगल उर-खम्भ-णिसुम्भण ॥५॥
रेहइ वयण-कमलु अकलङ्कउ । णं माणस-सरें वियसिउ पङ्कउ ॥६॥
सु-ललिय-लोयण ललिय-पसण्णइँ । णं वरइत्त मिलिय वर-कण्णहुँ ॥७॥
घोलइ पुट्ठिहिँ वेणि महाइणि । चन्दण-लयहिँ ललइ णं णाइणि ॥८॥

घत्ता

किं वहु-जम्पिएँण तिहिँ भुवणेंहिँ जं जं चङ्गउ ।
तं तं मेलवेंवि णं दइवें णिम्मिउ अङ्गउ ॥९॥

[४]

तो एत्थन्तरें णिय-कुल-दीवें । रामु पसंसिउ पुणु दहगीवें ॥१॥
'जीविउ एक्कु सहलु पर एयहों । जसु सुहवत्तणु गउ परिछेयहों ॥२॥
जेण समाणु एह धण जम्पइ । मुह-मुहेण तम्बोलु समप्पइ ॥३॥
हत्थें हत्थ धरेंवि आलावइ । चलण-जुअलु उच्छङ्गें चडावइ ॥४॥
जं आलिङ्गइ वलय-सणाहहिँ । मालइ - माला - कोमल-वाहहिँ ॥५॥
जं पेल्लावइ-थण-मायङ्गेंहिँ । मुहु परिचुम्बइ णाणा-भङ्गेंहिँ ॥६॥
जं अवलोयइ णिम्मल-तारेंहिँ । णयणहिँ विब्भम-भरिय-वियारेंहिँ ॥७॥
जं अणुहुअइ इच्छेंवि णिय-मणें । तासु मल्लु को सयलें वि तिहुअणें ॥८॥

सुसन्धिय (शब्द-खण्डके जोड़, अवयवोंके जोड़से सहित) सुपय (सुवन्त तिङन्त पद और चरण) सुवयण (वचन और मुख) सुसद्द (वर्ण और स्वर) और सुबद्ध थीं। कलहंसगामिनी, और मन्थरगतिसे चलनेवाली, उसका मध्यभाग कृश था, नितम्ब अति विस्तृत थे। कामदेवसे अवतीर्ण रोमराजि ऐसी ज्ञात होती थी मानो चीटियोंकी कतार ही उसमें संलग्न हो गई हो। अभिनव मुख-हीन पीन-स्तन ऐसे जान पड़ते थे मानो उररूपी स्तम्भको नष्ट करनेवाले मदमाते हाथी हों। सीताका अमल मुख-कमल ऐसा सोहता था मानो मानसरोवरमें कमल खिल गया हो। उसके सुन्दर नेत्र ऐसे लगते थे, मानो ललित प्रसन्न सुन्दर कन्याओंको वर ही मिल गये हों, उसकी पीठपर बड़ी-सी चोटी ऐसी लहरा रही थी कि मानो चन्दन लतासे नागिन ही लिपट गई हो। अधिक कहने से कोई लाभ नहीं, त्रिभुवनमें जो कुछ अच्छा था उसे लेकर ही विधाताने सीताके अङ्गोंको गढ़ा था ॥१-६॥

[४] फिर निजकुलदीपक रावणने रामकी प्रशंसा करते हुए कहा, "केवल एक इसी रामका जीवन सफल है, क्योंकि इसकी सज्जनता अपनी चरम सीमापर पहुँच चुकी है। इसके साथ यह धन्या संलाप करती है, वार-वार पान देती है, उसके पैरोंको अपनी गोदमें रखती है, हाथमें हाथ लेकर वात-चीत करती है। मालती-मालाकी तरह कोमल और चूड़ियों सहित अपने हाथोंसे आलिङ्गन करती है। नाना भंगिमावाले संघर्षशील स्तनरूपी मातंगोंसे मुँह चूमती है। विभ्रमभरित और विकारशील निर्मल तारावाले अपने नेत्रोंसे इन्हें देखती है। अपने मनसे कामना करके यह सीता जिस रामका भोग करती है, भला समस्त त्रिभुवनमें उसका प्रतिमल्ल कौन हो सकता है। यह मनुष्य धन्य

घत्ता

धण्णउ एहु णरु जसु एह णारि हियइच्छिय ।
जाव ण लइय मइँ कउ अङ्गहोँ ताव सुहच्छिय' ॥९॥

[५]

सीय णिएवि जाउ उम्माहउ । दहमुहु वम्मह-सर-पहराहउ ॥१॥
पहिलएँ वयणु वियारेंहिँ भज्जइ । पेम्म-परव्वसु कहोँ वि ण लज्जइ ॥२॥
बीयएँ मुह-पासेउ वलग्गइ । सरहसु गाढालिङ्गणु मग्गइ ॥३॥
तइयएँ अइ विरहाणलु तप्पइ । काम-गहिल्लउ पुणु पुणु जम्पइ ॥४॥
चउथएँ णीससन्तु णउ थक्कइ । सिरु संचालइ भउँहउ वङ्कइ ॥५॥
पञ्चमें पञ्चम-झुणि आलावइ । विहसेंवि दन्त-पन्ति दरिसावइ ॥६॥
छट्ठएँ अङ्गु वलइ करु मोडइ । पुणु दाढीयउ लएप्पिणु तोडइ ॥७॥
वट्टइ तल्लवेल्ल सत्तमयहोँ । मुच्छउ एन्ति जन्ति अट्ठमयहोँ ॥८॥
णवमउ वट्टइ मरणहोँ ढुक्कउ । दसमएँ पाणहिँ कह व ण मुक्कउ ॥९॥

घत्ता

दहमुहु 'दहमुहेँहिँ जाणइ किर भण्डएँ भुञ्जमि' ।
अप्पउ संथवइ 'णं णं सुर-लोयहोँ लज्जमि' ॥१०॥

[६]

तो एत्थन्तरेँ सुर-संतासेँ । चिन्तिउ एक्कु उवाउ दसासेँ ॥१॥
अवलोयणिय विज्ज मणेँ झाइय । 'दे आएसु' भणन्ति पराइय ॥२॥
'किं घोट्टेण महोवहि घोट्टमि । किं पायालु णहङ्गणेँ लोट्टमि ॥३॥
किं सहुँ सुरेँहिँ सुरेन्दु परज्जमि । किं मयरद्धय-पुरि-गउ भञ्जमि ॥४॥
किं जम-महिस-सिङ्गु मुसुमूरमि । किं सेसहोँ फणिमणि संचूरमि ॥५॥
किं तक्खयहोँ दाढ उप्पाडमि । काल-कियन्त-वयणु किं फाडमि ॥६॥
किं रवि-रह-तुरङ्ग उद्दालमि । किं गिरि मेरु करग्गेँ टालमि ॥७॥

है जिसकी ऐसी हृदय-वांछिता पत्नी है। जब तक मैं इसे ग्रहण नहीं करता तब तक मेरे अङ्गोंको सुखका आसन कहाँ ॥ १–६ ॥

[५] सीताको देखते ही रावणको उन्माद होने लगा। वह कामके बाणोंसे आहत हो उठा। कामकी प्रथमावस्थामें उसका मुख विकारोंसे क्षीण हो गया। प्रेमके वशीभूत होकर वह तनिक भी नहीं लजा रहा था, दूसरी दशामें उसका मुख पसीना-पसीना हो उठा, और हर्षपूर्वक वह आलिङ्गन माँगने लगा, तीसरीमें वियोग की आगसे वह जल उठा और कामग्रस्त होकर बार-बार वह बकने लगा। चौथी दशामें उसके अनवरत निश्वास चलने लगे। कभी वह सिर हिलाता और कभी भौंहें टेढ़ी करता। पाँचवी अवस्थामें वह पञ्चम स्वरमें बोलने लगा और हँसकर अपने दाँत दिखाने लगा। छठीमें अङ्ग और हाथ मोड़ता और दाढ़ी पकड़कर नोचने लगता। आठवींमें उसे मूर्छा आने लगी, नौवींमें मृत्यु आसन्न प्रतीत होने लगी। दशवीं अवस्थामें किसी प्रकार केवल उसके प्राण ही नहीं निकल रहे थे। तब रावणने अपने आपको यह कह-कर सान्त्वना दी कि "बलपूर्वक सीताका अपहरणकर मैं दशों मुखोंसे उसका उपभोग करूँगा। अन्यथा सुरलोकको लज्जित करूँगा" ॥ १–१० ॥

[६] सुरपीड़क रावणको इसी समय एक उपाय सूझा। और उसने अवलोकिनी विद्याका चिन्तन किया। तुरन्त ही वह 'आदेश दो' कहती हुई आई और बोली, "क्या पानकर समुद्रको सोख दूँ, या देवोंसे सहित इन्द्रको पराजित करूँ या जाकर काम-देवको ध्वस्त कर दूँ, या यममहिषके सींग उखाड़कर फेंक दूँ, या शेषनागके फण-मणियोंको चूर-चूर कर दूँ, या तक्षककी दाढ़ उखाड़ दूँ या कृतान्तका मुख फाड़ डालूँ। या सूर्यके रथके अश्व

किं तइलोक्क-चक्कु संघारमि । किं अत्थक्कएँ पलउ समारमि' ॥८॥

घत्ता

वुत्तु दसाणणेंण 'एक्केण वि ण वि महु कज्जु ।
तं सङ्केउ कहेँ जें हरमि एह तिय अज्जु ॥९॥

[७]

दहवयणहोँ वयणेण सु-पुज्जएँ । पभणिउ पुणु अवलोयणि विज्जएँ ॥१॥
'जाव समुद्दावत्तु करेक्कहोँ । वज्जावत्तु चाउ अण्णेक्कहोँ ॥२॥
जावग्गेउ वाणु करेँ एक्कहोँ । वायवु वारुणत्थु अण्णेक्कहोँ ॥३॥
जाम सीरु गम्भीरु करेक्कहोँ । करयलेँ चक्काउहु अण्णेक्कहोँ ॥४॥
ताव णारि को हरइ दिसेवहुँ । मण्डएँ वासुएव-बलएवहुँ ॥५॥
इय पच्छण्ण वसन्ति वणन्तरेँ । तेसट्ठी-पुरिसहुँ अब्भन्तरेँ ॥६॥
जिण चउवीस अद्ध गोवद्धण । णव केसव राम णव रावण ॥७॥

घत्ता

ओए भवट्ठम इय वासुएव बलएव ।
जाव णव हिय रणेँ तिय ताम लइज्जइ केव ॥८॥

[८]

अहवइ एण काइँ सुणेँ रावण । एह णारि तिहुअण-संतावण ॥१॥
लइ लइ जइ अजरामरु वट्टहि । लइ लइ जइ उप्पहेँण पयट्टहि ॥२॥
लइ लइ जइ वड्डत्तणु खण्डहि । लइ लइ जइ जिण-सासणु छण्डहि ॥३॥
लइ लइ जइ सुरवरहुँ ण लज्जहि । लइ लइ जइ णरयहोँ गमु सज्जहि ॥४॥
लइ लइ जइ परलोउ ण जाणहि । लइ लइ जइ णिय-आउ णमाणहि ॥५॥
लइ लइ जइ णिय-रज्जु ण इच्छहि । लइ लइ जइ जम-सासणु पेच्छहि ॥६॥

छीन लूँ, या मन्दराचलको अपनी अंगुलीसे टाल दूँ। क्या त्रिलोकचक्रका संहार कर दूँ, या फौरन प्रलय मचा दूँ।" (यह सुनकर) रावणने कहा—"यह सब करनेसे मेरा एक भी काम नहीं सधेगा। कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे मैं उस स्त्रीको प्राप्त कर सकूँ" ॥ १-६ ॥

[७] रावणके वचन सुनकर समादरणीय अवलोकिनी विद्याने कहा, "जब तक एकके हाथमें समुद्रावर्त और दूसरेके हाथमें वज्रावर्त धनुष है। जब तक एकके हाथमें आग्नेय बाण है और दूसरेके हाथमें वायव्य और वारुण आयुध है। जब तक एक हाथमें गम्भीर हल और दूसरे हाथमें चक्रायुध है, तबतक पथिक राम और लक्ष्मणसे सीता देवीको कौन छीन सकता है। ये लोग त्रेसठ महापुरुषोंमें से एक हैं और प्रच्छन्न रूपसे वनवास कर रहे हैं। वे त्रेसठ महापुरुष हैं—बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ बलभद्र, नौ प्रतिनारायण और चौबीस तीर्थंकर। उनमें भी ये वासुदेव और बलभद्र बहुत ही बलिष्ठ हैं। जब तक तुम्हारे मनमें युद्धकी इच्छा नहीं तब तक तुम इस स्त्रीको कैसे पा सकते हो?" ॥ १-८ ॥

[८] अथवा इससे क्या यह नारी, हे रावण! त्रिभुवनको सतानेवाली है। यदि तुम अपनेको अजर-अमर समझते हो तो इस नारीको ग्रहण कर सकते हो। यदि तुम उन्मार्ग पर चलना चाहते थो, यदि तुम अपना बड़प्पन धूलमें मिलाना चाहते हो तो इसे ले लो। यदि जिन-शासन छोड़ना चाहते हो तो इसे ले लो, यदि तुम सुरश्रेष्ठोंसे नहीं लजाते तो इसे ले लो। यदि तुम नरक जानेका साज सजाना चाहते हो तो इसे ले लो। यदि तुम परलोकको नहीं जानते तो इसे ले लो। यदि अपने राज्यकी तुम्हें इच्छा नहीं है तो इसे ले लो। यदि तुम यमशासनकी इच्छा करते हो तो इसे

लइ लइ जइ णिव्विण्णउ पाणहुँ । लइ लइ जइ उरु उड्डहि बाणहुँ' ॥७॥
तं णिसुणेवि वयणु असुहावणु । अइ-मयणाउरु पभणइ रावणु ॥८॥

घत्ता

'माणवि एह तिय जं जिज्जइ एकु मुहुत्तउ ।
सिव-सासय-सुहहों तहों पासिउ एउ वहुत्तउ' ॥९॥

[९]

विसयासत्त-चित्तु परियाणेंवि । विज्जएँ वुत्तु णिरुत्तउ जाणेंवि ॥१॥
'णिसुणि दसाणण पिसुणमि भेउ । वेण्ह वि अत्थि एक्कु सङ्केउ ॥२॥
एहु जो दीसइ सुहडु रणङ्गणेँ । वावरन्तु खर-दूसण-साहणेँ ॥३॥
एयहों सीहणाउ आयण्णेंवि । इट्ठ-कलत्तु व तिण-समु मण्णेंवि ॥४॥
धावइ सीहु जेम ओरालेंवि । वज्जावत्तु चाउ अप्फालेवि ॥५॥
तुहुँ पुणु पच्छएँ धण उद्दालहि । पुप्फ-विमाणेँ छुहेंवि संचालहि' ॥६॥
तं णिसुणेप्पिणु पभणिउ राउ । 'तो घइँ पइँ जेँ करेवउ णाउ' ॥७॥
पहु-आएसें विज्ज पधाइय । णिविसें तं संगामु पराइय ॥८॥

घत्ता

लक्खणु गहिय-सरु जं णिसुणिउ णाउ भयङ्करु ।
धाइउ दासरहि णहेँ स-धणु णाइँ णव-जलहरु ॥९॥

[१०]

भीसणु सीह-णाउ णिसुणेप्पिणु । धणुहरु करेँ सज्जीउ करेप्पिणु ॥१॥
तोणा-जुवलु लएवि पधाइउ । 'मञ्जुडु लक्खणु रणेँ विणिवाइउ' ॥२॥
कुढेँ लग्गन्तें रामें सुणिमित्तइँ । सउणु ण देन्ति होन्ति दु-णिमित्तइँ ॥३॥
फुरइ स-वाहउ वामउ लोयणु । पवहइ दाहिण-पवणु अलक्खणु ॥४॥

ले लो। यदि तुम्हें अपने प्राणोंसे विरक्ति हो गई है तो इसे ले लो। यदि अपने वक्षको वाणोंसे भिदवाना चाहते हो इसे ले लो, इन असुहावने वचनोंको सुनकर अत्यन्त कामातुर रावणने कहा, "यही तो एक मनुष्यनी है जो एक मुहूर्तके लिए मुझे जिला सकती है। शाश्वत शिवस्वरूपकी मुझे अपेक्षा नहीं, मुझे यही वहुत है" ॥१-६॥

[९] तब उसे अत्यन्त विषयासक्त समझकर और उसके निश्चयको जानकर, विद्या वोली, "सुन दशमुख ! मैं एक रहस्य प्रकट करती हूँ। उन दोनों (राम और लक्ष्मण) के वीचमें एक संकेत है। यह जो सुभट (लक्ष्मण) रणांगणमें दीख पड़ता है और जो खर-दूषणकी सेनासे लड़ सकता है, इसके (लक्ष्मण) सिंहनादको सुनकर दूसरा (राम) अपनी प्रिय स्त्रीको तृणवत् छोड़कर, वज्रावर्त धनुष चढ़ाकर सिंहकी भाँति गरजता हुआ दौड़ पड़ेगा। उसके पीछे (अनुपस्थिति में) तुम सीताको उठाकर पुष्पक विमानमें लेकर भाग जाना।" यह सुनकर रावणने कहा कि यदि ऐसा है तो सिंहनाद करो। प्रभुके आदेशसे विद्या दौड़ी और पलभरमें संग्रामभूमिमें पहुँच गई। इतनेमें लक्ष्मणका भयङ्कर और गम्भीर स्वर सिंहनाद सुनकर नये जलधरकी तरह राम धनुष लेकर दौड़े ॥१-९॥

[१०] सिंहनाद सुनते ही हाथमें धनुष, और दोनों तरकस लेकर राम दौड़े यह सोचकर कि कहीं युद्धमें लक्ष्मण आहत होकर तो नहीं गिर पड़ा। रामके पीछा करने पर, उन्हें सुनिमित्त (शकुन) दिखाई नहीं दिये। अपशकुन ही हो रहे थे। उनका बाँया हाथ और नेत्र फड़कने लगा। नाकके दाएँ रंध्रसे हवा निकल रही थी। कौआ विद्रूप बोल रहा था। 'सयार' रो रहा

वायसु विरसु रसइ सिव कन्दइ । अग्गएँ कुहिणि भुअङ्गमु छिन्दइ ॥५॥
जम्बू पङ्गुरन्त उद्धाइय । णाइँ णिवारा सयण पराइय ॥६॥
दाहिणेण पिङ्गलय समुट्ठिय । णहेँ णव गह विवरीय परिट्ठिय ॥७॥
तो वि वीरु अवगण्णेंवि धाइउ । तक्खणेँ तं सङ्गामु पराइउ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठइँ राहवेँण लक्खण-सर-हंसेँहिँ खुडियइँ ।
गयण-महासरहोँ सिर-कमलइँ महियलेँ पडियइँ ॥९॥

[११]

दिट्ठु रणङ्गणु राहवचन्देँ । रमिउ वसन्तु णाइँ गोविन्देँ ॥१॥
कुण्डल-कडय-मउड- फल-दरिसिय । दणु-दवणा-मञ्जरिय पदरिसिय ॥२॥
गिद्धावलि - किय - चक्कन्दोलउ । णरवर-सिरइँ लएप्पिणु केलउ ॥३॥
रणेँ खेल्लन्ति परोप्परु चच्चरि । पुणु पियन्ति सोणिय-कायम्बरि ॥४॥
तेहउ समर-वसन्तु रमन्तउ । लक्खणु पोमाइउ पहरन्तउ ॥५॥
'साहु वच्छ पर तुज्झु जि छज्जइ । अण्णहोँ कासु एउ पडिवज्जइ ॥६॥
पइँ इक्खाउ-वंसु उज्जालिउ । जस-पडहउ तिहुअणेँ अप्फालिउ' ॥७॥
तं णिसुणेप्पिणु भणइ महाइउ । 'विरुअउ कियउ देव जं आइउ ॥८॥

घत्ता

मेल्लेवि जणय-सुय किं राहव थाणहोँ चलियउ ।
अक्खइ मज्झु मणु हिय जाणइ केण वि छलियउ' ॥९॥

[१२]

पुणरवि वुच्चइ मरगय-वण्णें । 'हउँ ण करेमि णाउ किउ अण्णें' ॥१॥
तं णिसुणेवि णियत्तइ जावेँहिँ । सीया-हरणु पढुक्किउ तावेँहिँ ॥२॥

था, आगे साँप रास्ता काटकर आ रहा था ? जम्बूक लड़खड़ाकर ऐसा उठा मानो स्वनिवारित मन ही लौटकर आया हो। दाहिने ओर खुसुर खुसुर शब्द होने लगा। आकाशमें ग्रहोंकी उल्टी स्थिति दीख पड़ने लगी। तो भी वीर राम, इन सबकी उपेक्षा करके दौड़े गये और पल भरमें युद्धभूमिमें जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि लक्ष्मणके बाणरूपी हंसोंसे उच्छिन्न आकाश रूपी महासरोवरके सिररूपी कमल धरातलपर पड़े हैं ॥१-६॥

[११] राघवने युद्ध-स्थलमें लक्ष्मणको इस प्रकार देखा कि मानो वह वसन्त क्रीड़ा कर रहा हो। उसके कुण्डल, कटक और मुकुट फलके रूपमें देख पड़ रहे थे, दानवरूपी दवण मञ्जरी थी। गृद्धावलि ही मानो चक्रांदोलन था। तथा नरसिरोंके कन्दुक लेकर वे लोग परस्पर रणमें चर्चरी खेल खेल रहे थे। बादमें रक्तकी मदिराका पान कर रहे थे। इस प्रकार युद्धरूपी वसन्तमें क्रीड़ा करते हुए आक्रमणशील लक्ष्मणकी रामने प्रशंसा की, "साधु वीर साधु, यह तुम्हें ही शोभा देता है, दूसरे किसके लिए यह उपयुक्त हो सकता है। तुमने सचमुच इक्ष्वाकुकुलको उज्ज्वल किया! तुमने सचमुच तीनों लोकोंमें अपने यशका डंका पीटा है।" तब यह सुनकर आदरणीय लक्ष्मणने कहा, "देव बहुत बुरा हुआ यह। आप सीताको छोड़कर उस स्थानसे क्यों हटे। मेरा मन कह रहा है कि किसीने छल करके सीताका अपहरण कर लिया है ॥१-६॥

[१२] मरकत मणिके रंगकी तरह श्याम लक्ष्मणने फिर कहा, "मैंने (सिंह) नाद नहीं किया, किसी और ने किया होगा"। यह सुनते ही राम जब तक लौटकर (डेरेपर) आये, तब तक दशानन सीताका हरण कर चुका था। (उनकी अनु-

आउ दसाणणु पुप्फ-विमाणें। णाइँ पुरन्दरु सिविया-जाणें ॥३॥
पासु पढुक्किउ राहव-घरिणिहेँ। मत्त-गइन्दु जेम पर-करिणिहेँ ॥४॥
उभय-करेंहिँ संचालिय-थाणहोँ। णाइँ सरीर-हाणि अप्पाणहोँ ॥५॥
णाइँ कुलहोँ भचित्ति हक्कारिय। लङ्कहेँ सङ्क णाइँ पइसारिय ॥६॥
णिसियर-लोयहोँ णं वज्जासणि। णाइँ भयङ्कर-राम-सरासणि ॥७॥
णं जस-हाणि खाणि वहु-दुक्खहुँ। णं परलोय-कुहिणि किय सुक्खहुँ ॥८॥

घत्ता

तक्खणेँ रावणेँण ढोइउ विमाणु आयासहोँ।
कालें कुद्धएँण हिउ जीविउ णं वण-वासहोँ ॥९॥

[१२]

चलिउ विमाणु जं जेँ गयणङ्गणेँ। सीयएँ कलुणु पकन्दिउ तक्खणेँ ॥१॥
तं कूवारु सुणेवि महाइउ। धुर्णेवि सरीरु जडाइ पधाइउ ॥२॥
पहउ दसाणणु चञ्चू-घाएँहिँ। पक्खुक्खेवेंहिँ णहर-णिहाएँहिँ ॥३॥
एक्क-वार ओससइ ण जावेंहिँ। सयसय-वार भडप्पइ तावेंहिँ ॥४॥
जाउ विसण्ठुलु वइरि-वियारणु। चन्दहासु मणेँ सुमरइ पहरणु ॥५॥
सीय वि धरइ णियङ्गु वि रक्खइ। लज्जइ चउदिसु णयणकडक्खइ ॥६॥
दुक्खु दुक्खु तेँ धीरेंवि अप्पउ। कर-णिट्ठुर-दढ-कढिण - तलप्पउ ॥७॥
पहउ विहङ्गु पडिउ समरङ्गणेँ। देवेंहिँ कलयलु कियउ णहङ्गणेँ ॥८॥

घत्ता

पडिउ जडाइ रणेँ खर-पहर-विहुर-कन्दन्तउ।
जाणइ-हरि-वलहुँ तिण्हि मि चित्तइँ पाडन्तउ ॥९॥

परिस्थितिमें) पुष्पक विमानमें बैठाकर रावण वैसे ही आया जैसे इन्द्र अपनी शिविकामें बैठकर आता है। मन्दोन्मत्त हाथी जिस तरह दूसरेकी हथिनोके पास पहुँचता है, उसी तरह रावण रामकी पत्नीके निकट पहुँच गया। अपने दोनों हाथोंसे उसने सीता देवीको उठा क्या लिया हो, मानो अपने ही शरीरकी हानि की हो, या अपने ही कुलके लिए सर्वनाशका आह्वान किया हो, या लंकाके लिए आशंका उत्पन्न कर दी हो। वह सीता देवी मानो निशाचर-लोकके लिए वज्र थी या रामका भयङ्कर धनुष थी, क्या यशकी हानि, और बहुदुःखोंकी खान थी। या मानो मूर्खोंके लिए परलोकके लिए पगडंडी थी। शीघ्र ही रावण अपना विमान आकाशमे ऐसे चढ़ा ले गया मानो क्रुद्ध कालने एक वनवासीका जीवन हरण कर लिया हो॥ १-६॥

[१३] आकाश-प्रांगणमें जैसे ही विमान पहुँचा सीता देवीने अपना क्रंदन करना प्रारम्भ कर दिया। उस विलापको सुनते ही आदरणीय जटायु दौड़ा आया। और उस पक्षीराजने चोंचकी मार, पंखोंके उत्क्षेप और नखोंके आघातसे रावणको आहत कर दिया। वह उसे एक बार पूरा हटा नहीं पाता कि वह पक्षी सौ सौ बार झपट पड़ता। शत्रुसंहारक रावण (प्रहारों से) एकदम खिन्न हो उठा। उसने अपने चन्द्रहास खड्गका चिंतन किया। कभी वह सीताको पकड़ता, कभी वह अपनी रक्षा करता, कभी लज्जित होकर चारों ओर देखता, फिर किसी तरह बड़े कष्टसे अपनेको धीरज बँधाता, अन्तमें अपने कठोर निष्ठुर आघातसे समरांगणमें जटायुको आहत कर दिया। देवताओंने आकाशमें कलकल शब्द किया। जानकी, राम और लक्ष्मणको स्मरण करता हुआ वह धरती पर गिर पड़ा॥ १-६॥

[१४]

पडिउ जडाइ जं जें फन्दन्तउ । सीयऍ किउ अक्कन्दु महन्तउ ॥१॥
'अहों अहों देवहों रणें दुवियड्ढहों । णिय परिहास ण पालिय सण्ढहों ॥२॥
वरि सुहडत्तणु चञ्चू-जीवहों । जो अब्भिट्टु समरें दसगीवहों ॥३॥
णउ तुम्हें हिं रक्खिउ वड्डत्तणु । सूरहों तणउ दिट्ठु सूरत्तणु ॥४॥
सच्चउ चन्दु वि चन्द-गहिल्लउ । वम्मु वि सोत्तिउ हरु दुम्महिलउ ॥५॥
वाउ वि चवलत्तणेंण दमिज्जइ । धम्मु वि रण्ड-सएहिं लइज्जइ ॥६॥
वरुणु वि होइ सहावें सीयलु । तासु कहि मि किं सक्कइ पर-वलु ॥७॥
इन्दु वि इन्दवहेण रमिज्जइ । को सुरवर-सण्ढेंहिं रक्खिज्जइ ॥८॥

घत्ता

जाउ किं जम्पिएँण जगें अण्णु ण अब्भुद्धरणउ ।
राहउ इह-भवहों पर-लोयहों जिणवरु सरणउ' ॥९॥

[१५]

पुणु वि पलाउ करन्ति ण थक्कइ । 'कुढें लग्गउ लग्गउ जो सक्कइ ॥१॥
हउँ पावेण एण अवगण्णें वि । णिय तिहुअणु अ-मणूसउ मण्णें वि' ॥२॥
पुणु वि कलुणु कन्दन्ति पयट्टइ । 'एँहु अवसरु सप्पुरिसहों वट्टइ ॥३॥
अह मइँ कवणु णेइ कन्दन्ती । लक्खण-राम वे वि जइ हुन्ती ॥४॥
हा हा दसरह माम गुणोवहि । हा हा जणय जणय अवलोयहि ॥५॥
हा अपराइएँ हा हा केक्कइ । हा सुप्पहें सुमित्तें सुन्दर-मइ ॥६॥
हा सत्तुहण भरह भरहेसर । हा भामण्डल भाइ सहोयर ॥७॥
हा हा पुणु वि राम हा लक्खण । को सुमरमि कहों कहमि अ-लक्खण ॥८॥

घत्ता

को संथवइ मइँ को सुहि कहों दुक्खु महन्तउ ।
जहिँ जहिँ जामि हउँ तं तं जि पएसु पलित्तउ' ॥९॥

[१४] तड़फड़ाकर जटायुके गिर पड़नेपर सीता और भी उच्चस्वरसे विलाप करने लगी, "अरे अरे रणमें दुर्विदग्ध देवो ! तुम अपनी प्रतिज्ञाका भी पालन नहीं कर सके। तुमसे तो चंचु-जीवी जटायु पक्षीका ही सुभटपन अच्छा है। (कमसे कम) वह युद्धमें रावणसे लड़ा तो। तुम अपना बड़प्पन नहीं रख सके। सूर्यका सूर्यपन भी मैंने देख लिया, चन्द्रमा वास्तवमें राहुग्रस्त हैं। ब्रह्मा तो ब्राह्मण ही ठहरे, विष्णु दो पत्नीवाले हैं। वासुदेव भी अपनी चपलतासे दम्भी हो रहे हैं, धर्मदेव भी सैकड़ों राड़ोंसे लज्जित हो रहे हैं। वरुण तो स्वभावसे ही शीतल हैं। शत्रु-सेनाको उनसे क्या शङ्का हो सकती है। इन्द्र भी अपने इन्द्रपनको याद कर रहे हैं। भला देव-समूहने (आजतक) किसकी रक्षा की है। और फिर क्या दुनियामें चिल्लानेसे किसीका उद्धार हुआ है। अब तो इस जन्ममें राम, और दूसरे जन्ममें जिनवरकी ही शरण मुझे प्राप्त हो ॥१–६॥

[१५] सीतादेवी बार-बार विलाप करती हुई नहीं अघा पा रही थीं, जो सम्भव था उससे उन्होंने दशाननका सामना किया। बार-बार वह (सीता देवी) यही सोच रही थीं कि तीनों लोकोंमें मुझे अनाथ समझ, इस प्रकार अपमानित करके ले जा रहा है। सत्पुरुषका यही तो अवसर है। यदि राम और लक्ष्मण यहाँ होते तो इस तरह विलपती हुई मुझे कौन ले जा सकता था। हा दशरथ, हे गुणसमुद्र मामा, हा पिता जनक, हे अपराजिता, हे कैकयी, हे सुप्रभा, हे सुन्दरमति सुमित्रा, हा शत्रुघ्न, हे भरतेश्वर भरत ! हा सहोदर भामंडल। हा राम, लक्ष्मण ! अभागिनी मैं (आज) किससे कहूँ। किसको याद करूँ। मुझे कौन सहारा देगा। अपना इतना भारी दुख किससे निवेदित करूँ। मैं जिस प्रदेशमें जाती हूँ वही आगसे प्रदीप्त हो उठता है ॥१–६॥

[१६]

तहिँ अवसरेँ वट्टन्तेँ सु-विउलएँ । दाहिण-लवण-समुद्दहोँ कूलएँ ॥१॥
अत्थि पचण्डु एक्कु विज्जाहरु । वर-करवाल-हत्थु रणेँ दुद्धरु ॥२॥
भामण्डलहोँ चलिउ ओलग्गएँ । सुअ कन्दन्ति सीय तामग्गएँ ॥३॥
वलिउ विमाणु तेण पडिवक्खहोँ । 'णं तिय का वि भणइ महुँ रक्खहोँ ॥४॥
लक्खण-राम वे वि हक्कारइ । भामण्डलहोँ णामु उच्चारइ ॥५॥
मच्छुडु एह सीय एँहु रावणु । अण्णु ण पर-कलत्त-संतावणु ॥६॥
अच्छउ णिवहोँ पासु जाएवउ । एण समाणु अज्जु जुज्झेवउ' ॥७॥
एम भणेवि तेण हक्कारिउ । 'कहिँ तिय लेवि जाहि' पच्चारिउ ॥८॥

घत्ता

'विहि मि भिडन्ताहुँ जिह हणइ एक्कु जिह हम्मइ ।
गेण्हेँ वि जणय-सुय वलु वलु कहिँ रावण गम्मइ' ॥९॥

[१७]

वलिउ दसाणणु तिहुअण-कण्टउ । सीहहोँ सीहु जेम अब्भिट्टउ ॥१॥
जेम गइन्दु गइन्दहोँ धाइउ । मेहहोँ मेहु जेम उद्धाइउ ॥२॥
भिडिय महावल विज्जा-पाणेँहिँ । वे वि परिट्ठिय सिक्खिया-जाणेँहि ॥३॥
वे वि पसाहिय णाणाहरणेँहिँ । वेण्णि वि वावरन्ति णिय-करणेँहिँ ॥४॥
वेण्णि वि घाय देन्ति अवरोप्परु । मणेँ विरुद्धु भामण्डल-किङ्करु ॥५॥
वर-करवालु करेप्पिणु करयलेँ । पहउ दसाणणु वियड-उरत्थलेँ ॥६॥
पडिउ घुलेप्पिणु लण्डुव-जोत्तेँहिँ । रुहिरु पदरिसिउ दसहि मि सोत्तेँहिँ ॥७॥
पुणु विज्जाहरेण पच्चारिउ । 'सुरवर-समर-सएँहिँ अ-णिवारिउ ॥८॥
तुहुँ सो रावणु तिहुवण-कण्टउ । एक्कें घाएं णवर पलोट्टिउ' ॥९॥

[१६] उस अवसरपर दक्षिण समुद्रके विशाल तटपर अत्यन्त प्रचण्ड एक विद्याधर रहता था। हाथमें खड्ग लिये, युद्धमें दुर्धर, वह भामण्डलका अनुचर था जो उसकी सेवामें कहीं जा रहा था। उसने सीतादेवीके विलापको सुन लिया। उसे लगा कि कोई स्त्री पुकार रही है कि मेरी रक्षा करो, वह राम और रावणका नाम बार-बार ले रही है। फिर वह भामण्डलका भी नाम लेती है। कहीं यह सीता और रावण न हो। क्योंकि दशाननको छोड़कर और कौन परस्त्रीका हरण कर सकता है। "चाहे मैं राजा भामण्डलके पास न जा सकूँ पर मुझे इस दुष्टसे अवश्य जूझना चाहिए।" यह निश्चयकर वह रावणको ललकारकर व्यङ्गमें कहा, "अरे अरे, स्त्रीको उड़ाकर कहाँ जा रहा है। आओ हम दोनों लड़ लें। जिससे एक मरे और या दूसरा। रावण! मुड़ो, मुड़ो सीताको लेकर कहाँ जा रहे हो" ॥ १-६ ॥

[१७] तब त्रिभुवनकण्टक दशानन उस विद्याधरसे उसी प्रकार भिड़ गया जिस प्रकार सिंह सिंहसे, गजेन्द्र गजेन्द्रसे और मेघ मेघसे टकरा पड़ते हैं। दोनोंके हाथमें विद्याएँ थीं। दोनों ही शिविकामें बैठे थे। दोनों ही विविध आभूषणोंसे भूषित थे। दोनों ही अपने हाथोंसे प्रहार कर रहे थे। दोनों एक दूसरेपर आघात करना चाह रहे थे। अपने मनमें क्रुद्ध होकर भामण्डलके अनुचर उस विद्याधरने अपनी उत्तम कृपाण हाथमें लेकर रावणकी छाती पर आघात किया। आहत होकर वह घुटनोंके बल गिर पड़ा? दसों धाराओंमें उसका रक्त प्रवाहित हो उठा। तब वह विद्याधर व्यङ्गके स्वरमें बोला—"देवताओंके शत-शत युद्धोंमें दुर्निवार और त्रिभुवनकण्टक रावण तुम्हीं हो, जो आज केवल एक ही आघात में लोट-पोट हो गये।" इतनेमें सचेतन होकर और युद्धमत्सरसे

घत्ता

चेयणु लहेँवि णं भडु उट्ठिउ कुद्धु स-मच्छरु।
तहोँ विज्जाहरहोँ थिउ रामेंहिँ णाइँ सणिच्छरु॥१०॥

[१८]

उट्ठिउ चीसपाणि असि लेन्तउ। णाइँ स-विज्जु मेहु गज्जन्तउ॥१॥
विज्जा-छेउ करेँवि विज्जाहरेँ। घत्तिउ जम्बूदीवब्भन्तरेँ॥२॥
पुणु दसलिए संचल्लु स-सायउ। णहयलेँ णाइँ दिवायरु आयउ॥३॥
मज्झेँ समुद्दहोँ जयसिरि-माणणु। पुणु बोल्लेवएँ लग्गु दसाणणु॥४॥
'काइँ गहिल्लिएँ मइँ ण समिच्छहि। किं महएवि-पट्टु ण समिच्छहि॥५॥
किं णिक्कण्टउ रज्जु ण भुञ्जहि। किं ण वि सुरय-सोक्खु अणुहुञ्जहि॥६॥
किं महु केण वि भग्गु मडप्फरु। किं रूहउ किं कहि मि असुन्दरु'॥७॥
एम भणेँवि आलिङ्गइ जावेँहिँ। जणय-सुयएँ णिब्भच्छिउ तावेँहिँ॥८॥

घत्ता

'दिवसेँहिँ थोवएँहिँ तुहुँ रावण समरेँ जिणेवउ।
अम्हहुँ वारियएँ राम-सरेँहिँ आलिङ्गेवउ'॥९॥

[१९]

णिट्ठुर-वयणेँहिँ दोच्छिउ जावेँहिँ। दहमुहु हुअउ विलक्खउ तावेँहिँ॥१॥
'जइ मारमि तो एह ण पेच्छमि। वोल्लउ सव्वु हसेप्पिणु अच्छमि॥२॥
अवसेँ कं दिवसु इ इच्छेसइ। सरहसु कण्ठग्गहणु करेसइ॥३॥
'अण्णु वि मइँ णियवउ पालेव्वउ। मण्डएँ पर-कलत्तु ण लएव्वउ'॥४॥
एम भणेँवि चलिउ सुर-डामरु। लङ्क पराइउ इन्द-महावरु॥५॥

भरकर दशानन उठा। वह विद्याधरके सम्मुख इस प्रकार स्थित हो गया मानो राशियोंके समक्ष शनि-देवता ही आ बैठे हों ॥१-६॥

[१८] रावण खड्ग लेकर ऐसे उठा, मानो बिजली और महामेघ ही गरजा हो। तब उसने विद्याधरकी विद्याको छेदकर उसे जम्बूद्वीपके भीतर कहीं फेंक दिया। (बादमें) रावण सीताको लेकर चल दिया। (वह आकाशमें ऐसा चमक रहा था) मानो दूसरा ही सूर्य हो। फिर समुद्रके बीचमें, जयश्रीका अभिमानी रावण बार-बार सीता देवीसे कहने लगा—"हठीली, तुम मुझे क्यों नहीं चाहतीं। क्या तुम्हें महादेवी पदकी चाह नहीं है, क्या तुम निष्कण्टक राज्यका भोग करना नहीं चाहती। क्या सुरति-सुखका आनन्द लेना नहीं है। क्या किसीने मेरा मान भङ्ग किया है। क्या मैं दुर्भग हूँ या असुन्दर", ऐसा कहकर ज्यों ही उसने सीता देवीका आलिंगन करना चाहा त्योंहीं उसने उसकी भर्त्सना की और कहा—"रावण, थोड़े ही दिनमें तुम जीत लिये जाओगे और हमारी परिपाटीके अनुसार रामके बाणोंसे आलिंगन करोगे" ॥१-६॥

[१९] इन कठोर वचनोंसे लांछित रावण मनमें बहुत ही दुखी हुआ। उसने मन ही मन विचार किया कि यदि मैं मारता हूँ तो इसे फिर देख नहीं सकता, इसलिए सब बातोंको हँसकर टालते रहना ही अच्छा है। अवश्य ही कोई न कोई ऐसा दिन होगा कि जब मुझे चाहने लगेगी और हर्षोत्फुल्ल होकर मेरे (कण्ठ का) आलिङ्गन करेगी। और भी फिर मुझे अपने इस व्रतका पालन करना है कि मैं परस्त्रीको बल-पूर्वक ग्रहण नहीं करूँगा। इस असमंजसमें पड़ा हुआ देव-भयङ्कर बड़े-बड़े वरोंको प्राप्त

सीयएँ वुत्तु 'ण पइसमि पट्टणेँ। अच्छमि एत्थु विउलेँ णन्दणवणेँ ॥६॥
जाव ण सुणमि वत्त भत्तारहोँ। ताव णिवित्ति मज्झु आहारहोँ' ॥७॥
तं णिसुणेँवि उववणेँ पइसारिय। सीसव-रुक्ख-मूलेँ वइसारिय ॥८॥

घत्ता

मेल्लेँवि सीय वणेँ गउ रावणु घरहोँ तुरन्तउ।
धवलेँहिँ मङ्गलेँहिँ थिउ रज्जु स इं भु ञ्जन्तउ ॥९॥



[३९. एगुणचालीसमो संधि]

कुढेँ लग्गोप्पिणु लक्खणहोँ वलु जाम पडीवउ आवइ।
तं जि लयाहरु तं जि तरु पर सीय ण अप्पउ दावइ ॥

[१]

णीसीयउ वणु अवयज्जियउ। णं सररुहु लच्छि-विसज्जियउ ॥१॥
णं मेह-विन्दु णिव्विज्जुलउ। णं मुणिवर-वयणु अ-वच्छलउ ॥२॥
णं भोयणु लवण-जुत्ति-रहिउ। अरहन्त-विम्बु णं अ-वसहिउ ॥३॥
णं दत्ति-विवज्जिउ किविण-धणु। तिह सीय-विहूणउ दिट्ठु वणु ॥४॥
पुणु जोअइ गुहिलेँहिँ पइसरेँवि। थिय जाणइ जाणइ ओसरेँवि ॥५॥
पुणु जोवइ गिरि-विवरन्तरेँहिँ। थिय जाणइ लिहक्केँवि कन्दरेँहिँ ॥६॥
ताणन्तरेँ दिट्ठु जडाइ वणेँ। संसूडिय-गत्तउ पडिउ रणेँ ॥७॥

करनेवाला रावण चला और लङ्कामें पहुँच गया। तब सीता देवीने कहा—"मैं नगरमें प्रवेश नहीं करूँगी, मैं इसी विशाल नन्दन वनमें रहूँगी और जबतक मैं अपने पतिका समाचार नहीं सुन लेती तबतक मैं आहारका त्याग करती हूँ।" तब रावण सीता देवीको नन्दन वनमें ले गया और वहाँ शिंशपा वृक्षके नीचे उन्हें छोड़ दिया। इस प्रकार सीता देवीको नन्दनवनमें छोड़कर वह तुरन्त अपने घर चला गया। धवल और मङ्गल गीतोंके साथ वह अपने राज्यका भोग करने लगा ॥१–६॥



उनतालीसवीं संधि

इधर राम लक्ष्मणकी बात मानकर जैसे ही लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि (आश्रम) में लतागृह वही है, वृक्ष भी वही है, पर सीता देवी कहीं भी दृष्टि-गोचर नहीं हो रही हैं।

[१] सीता देवीसे विहीन वह वन रामको ऐसे लगा मानो शोभासे हीन कमल हो, या विद्युत्से रहित मेघ-समूह हो या वात्सल्यसे शून्य मुनि-वचन हो, नमकसे रहित भोजन हो, या मानो देवगृहोचित आसनसे विहीन जिन-प्रतिबिम्ब हो या कि दानसे रहित कृपण हो। सीता देवीसे रहित वन रामको ऐसा ही दीख पड़ा। यह सोचकर कि जानकी शायद कहींपर जान-बूझकर छिपकर बैठी हैं उस लतागुल्मोंमें खोजने लगे। फिर उन्होंने उन्हें पर्वतोंकी कन्दराओंमें ढूँढ़ा, हो सकता हो वह वहीं जा छिपी हों। इतनेमें रामको जटायु पक्षी दीख पड़ा। क्षत-विक्षत होकर (वह)

घत्ता

पहर-विहुर-घुम्मन्त-तणु जं दिट्ठु पक्खि णिद्दलियउ ।
तावेँहिँ धुज्झिउ राहवेँण हिय जाणइ केण वि छलियउ ॥८॥

[२]

पुणु दिण्ण तेण सुह वसु-हारा । उच्चारेँवि पञ्च णमोक्कारा ॥१॥
जे सारभूय जिण-सासणहोँ । जे मरण-सहाय भव्व-जणहोँ ॥२॥
लद्धेहिँ जेहिँ दिढ होइ मइ । लद्धेहिँ जेहिँ परलोय-गइ ॥३॥
लद्धेहिँ जेहिँ संभवइ सुहु । लद्धेहिँ जेहिँ णिज्जरइ दुहु ॥४॥
ते दिण्ण विहङ्गहोँ राहवेँण । किय-णिसियर-णियर-पराहवेँण ॥५॥
'जाएज्जहि परम-सुहावहेँण । अणरण्णाणन्तवीर - पहेँण' ॥६॥
तं वयणु सुणेँवि सव्वायरेँण । लहु पाण विसज्जिय णहयरेँण ॥७॥
जं मुउ जडाइ हिय जणय-सुअ । धाहाविउ उब्भा करेँवि भुअ ॥८॥

घत्ता

'कहिँ हउँ कहिँ हरि कहिँ घरिणि कहिँ घरु कहिँ परियणु छिण्णउ ।
भूय-बलि व्व कुडुम्बु जगेँ हय-दइवेँ कह विक्खिण्णउ' ॥९॥

[३]

वलु एम भणेवि पमुच्छियउ । पुणु चारण-रिसिहिँ णियच्छियउ ॥१॥
चारण वि होन्ति अट्ठविह-गुण । जे णाण-पिण्ड सीलाहरण ॥२॥
फल-फुल्ल-पत्त-णह - गिरि-गमण । जल - तन्तुअ - जङ्घा - संचरण ॥३॥
तहिँ वीर सुधीर विसुद्ध-मण । णह-चारण आइय वेण्णि जण ॥४॥
तेँ अवही-णाणें जोइयउ । रामहोँ कलत्तु विच्छोइयउ ॥५॥
आऊरेँवि गल-गम्भीर-झुणि । पुणु लग्गु चवेवएँ जेट्ठ-मुणि ॥६॥
'भो चरम-देह सासय-गमण । केँ कज्जें रोवहि मूढ-मण ॥७॥

युद्ध-भूमिमें पड़ा हुआ था। प्रहारोंसे अत्यन्त विधुर कम्पित-शरीर और अधकुचले हुए उस जटायुको देखकर रामने पूछा—"कौन सीताको छल करके हर ले गया।" ॥१–८॥

[२] फिर रामने णमोकार मन्त्रका उच्चारण करके उसे आठ मूलगुण दिये। ये मूलगुण जिन-शासनके सार-भूत हैं, और मृत्युके समय भव्य-जनोंके लिए अत्यन्त सहायक होते हैं। इनको ग्रहण करनेसे बुद्धि दृढ़ होती है। परलोककी गति सुधरती है। जिनको ग्रहण करनेसे सुख सम्भव होता है। जिनको ग्रहण करनेसे दुखका क्षय होता है। निशाचर-समूहके संहारक रामने ऐसे मूल-गुणोंका उपदेश करते हुए कहा—"तुम अनरण्य और अनन्तवीरके शुभ-मार्गसे जाओगे।" यह सुनते ही महनीय जटायुने अपने प्राणोंका विसर्जन कर दिया। उसकी मृत्यु और सीता देवीके अपहरणको देखकर राम अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर डाढ़ मारकर विलाप करने लगे—"कहां मैं? कहां लक्ष्मण और कहां कुटुम्बि-जन। कठोर भाग्य देवताने भूत-बलि की तरह मेरे कुटुम्बको कहींका कहीं बखेर दिया है।" ॥१–६॥

[३] यह कहकर राम मूर्छित हो गये। तब दो चारण ऋद्धिधारी मुनियोंने रामको देखा। चारण होकर भी वे दोनों आठ गुणोंसे सम्पन्न ज्ञान शरीर शीलसे अलंकृत फल, फूल, पत्र, नभ और पर्वतपर गमन करनेवाले? जल-जन्तु (मृणाल) की तरह जङ्घाओंसे चलनेवाले? वीर, सुधीर और विशुद्ध आकाश-गामी वे दोनों वहाँ आये (जहाँ राम थे)। अवधिज्ञानका प्रयोग करके उन्होंने जान लिया कि रामको पत्नी-वियोग हुआ है। तदनन्तर करुणासे भरकर ज्येष्ठ-मुनि, अपनी गम्भीर ध्वनिमें बोले—"अरे मोक्षगामी और चरमशरीर राम! तुम मूढ़ बनकर

तिय दुक्खहुँ खाणि विओय-णिहि । तहें कारणें रोवहि काइँ विहि ॥८॥

घत्ता

किं पइँ ण सुइय गुरु कह छज्जीव-णिकाय-दयावरु ।
जिह गुणवइ-अणुभत्तणेंण जिणयासु जाउ वणें वाणरु' ॥९॥

[४]

जं णिसुणिउ को वि चवन्तु णहें । मुच्छा-विहलङ्घलु धरणि-वहें ॥१॥
'हा सीय' भणन्तु समुट्ठियउ । चउ-दिसउ णियन्तु परिट्ठियउ ॥२॥
णं करि करिणिहें विच्छोइयउ । पुणु गयण-मग्गु अवलोइयउ ॥३॥
तहिँ ताव णिहालिय तिण्णि रिसि । संगहिय जेहिँ परलोय-किसि ॥४॥
ते गुरु गुरु-भत्ति करेवि थुय । 'हो धम्म-विद्धि सिरि-णमिय-भुय ॥५॥
गिरि-मेरु-समाणउ जेत्थु दुहु । तहें कारणें रोवहि काइँ तुहुँ ॥६॥
खल तियमइ जेण ण परिहरिय । तहोँ णरय-महाणइ दुत्तरिय ॥७॥
रोवन्ति एम पर कप्पुरिस । तिण-समु गणन्ति जे सप्पुरिस ॥८॥

घत्ता

तियमइ वाहिहें अणुहरइ खणें खणें दुक्खन्ति ण थक्कइ ।
हम्मइ जिण-वयणोसहेंण जें जम्म-सए वि ण ढुक्कइ ॥९॥

[५]

तं वयणु सुणेप्पिणु भणइ वलु । मेल्लन्तु णिरन्तरु अंसु-जलु ॥१॥
'लब्भन्ति गाम-वरपट्टणइँ । सीयल-विउलइँ णन्दण-वणइँ ॥२॥
लब्भन्ति तुरङ्गम मत्त गय । रह कणय-दण्ड - धुव्वन्त-धय ॥३॥
लब्भन्ति भिच्चवर आण-कर । लब्भइ अणुहुञ्जेंवि स-धर धर ॥४॥
लब्भइ घरु परियणु वन्धु-जणु । लब्भइ सिय सम्पय दव्वु धणु ॥५॥

रोते क्यों हो ? स्त्रियाँ दुखकी खान और वियोगकी निधि होती हैं। तो उसके लिए तुम क्यों रोते हो ? क्या तुमने यह कहानी नहीं सुनी कि छह कायके जीवोंपर दया करनेवाले गुणव्रत और अणु-व्रतके धारण करनेवाले जिनदासको किस प्रकार वनमें वानर बनना पड़ा ॥१-६॥

[४] तब धरतीपर मूर्छासे विह्वल रामने सुना कि कोई मुझसे आकाशमें बातें कर रहा है तो वह 'हा सीता' कहकर उठे वह चारों ओर देखने लगे। मानो हथिनीके वियोगमें हाथी चारों ओर देख रहा हो। फिर उन्होंने आकाशकी ओर देखा। आकाश में उन्हें दो मुनि दीख पड़े। वे दोनों मुनि अपने परलोककी खेती संगृहीत कर चुके थे। और गुरुभक्तिमें स्तुत्य थे। उन्होंने रामसे कहा—"अरे धर्मबुद्धि और श्रीसम्पन्न बाहु राम ! तुम उस बातके लिए क्यों रोते हो जिसमें सुमेरु-पर्वत बराबर दुख है। जिसने दुष्ट स्त्रीको नहीं छोड़ा उसके लिए नरकरूपी नदीका संतरण बहुत कठिन है। कायर-पुरुष ही इस प्रकार रुदन करते हैं। सत्पुरुष तो स्त्रीको तृणवत् समझते हैं। स्त्री वह व्याधि है जो क्षण-क्षण दुःख देती हुई भी नहीं अघाती। परन्तु जो जिनके उपदेशसे उत्साहित होकर उसे छोड़ देते हैं उन्हें सैकड़ों जन्ममें भी दुख नहीं होता ॥१-६॥

[५] यह वचन सुनकर, अविरल अश्रुधारा बहाते हुए रामने कहा "गाँव और पत्तन मिल सकते हैं, शीतल बड़े-बड़े उद्यान मिल सकते हैं, उत्तम अश्व और गज प्राप्त हो सकते हैं, स्वर्ण-दंडपर फहराती हुई पताका मिल सकती है, आज्ञाकारी अनुचर मिल सकते हैं, और भोगके लिए पर्वतसहित वसुंधरा प्राप्त हो सकती है। परिजन पुरजन मिल सकते हैं। शोभा, सम्पत्ति और द्रव्य

लब्भइ तम्बोलु विलेवणउ । लब्भइ हियइच्छिउ भोयणउ ॥६॥
लब्भइ भिङ्गारोलम्बियउ । पाणिउ कप्पूर-करम्बियउ ॥७॥
हियइच्छिउ मणहरु पियवयणु । पर एहु ण लब्भइ तिय-रयणु ॥८॥

घत्ता

तं जोव्वणु तं मुह-कमलु तं सुरउ सवट्टण-हत्थउ ।
जेण ण माणिउ एत्थु जगेँ तहोँ जीविउ सव्वु णिरत्थउ' ॥९॥

[६]

परमेसरु पभणइ वलेँवि मुहु । 'तिय-रयणु पसंसहि काइँ तुहुँ ॥१॥
पेक्खन्तहुँ पर वण्णुज्जलउ । अब्भन्तरेँ रुहिर-चिलिव्विलउ ॥२॥
दुग्गन्ध-देहु विणि-विट्टलउ । पर चम्में हड्डहुँ पोट्टलउ ॥३॥
मायामें जन्तें परिभमइ । भिण्णउ णव-णाडिहिँ परिसवइ ॥४॥
कम्मट्ठ - गण्ठि - सय - सिक्किरिउ । रस-वस - सोणिय-कद्दम-भरिउ ॥५॥
वहु-मंस-रासि किमि-कीड-हरु । खट्टहेँ वइरिउ भूमीहेँ भरु ॥६॥
आहारहोँ पिसिवउ सोवियउ । णिसि मडउ दिवसेँ संजीवियउ ॥७॥
णासासूसासु करन्ताहुँ । गउ जम्मु जियन्त-मरन्ताहुँ ॥८॥

घत्ता

मरण-कालेँ किमि-कप्परिउ जं पेक्खेंवि मुहु वङ्किज्जइ ।
घिगिहिणन्तु मक्खिय-सएँहिँ तं तेहउ केम रमिज्जइ ॥९॥

[७]

तं चलण-जुअलु गइ-मन्थरउ । सउणहिँ खज्जन्तु भयङ्करउ ॥१॥
तं सुरय-णियम्बु सुहावणउ । किमि-विलविलन्तु चिलिसावणउ ॥२॥
तं णाहि-पएसु किसोयरउ । खज्जन्त-माणु थिउ भासुरउ ॥३॥
तं जोव्वणु अवरुण्डण-मणउ । सुज्जन्तु णवर भीसावणउ ॥४॥
तं सुन्दरु वयणु जियन्ताहुँ । किमि-कप्पिउ णवर मरन्ताहुँ ॥५॥

भी मिल सकते हैं, पान और विलेपन तथा अनुकूल उत्तम भोजन मिल सकता है। शृंगार (भ्रमर) चुम्बित और कपूर-सुधासित जल मिल सकता है, परंतु हृदयसे वांछित सुन्दरमुखी यह स्त्री-रत्न नहीं मिल सकता। वह यौवन, वह मुख कमल, वह सुरति, सुडौल हाथ, (इन सबको) जिसने इस जगमें बहुत नहीं माना उसका समस्त जीवन व्यर्थ है" ॥१-६॥

[६] थोड़ा मुख बिचकाकर तब फिर परमेश्वर बोले—"तुम स्त्रीकी प्रशंसा क्यों करते हो, तुम उसका केवल उज्ज्वल रंग देखते हो। पर भीतर तो वह रक्तसे लिप्त है। शरीरमें दुर्गन्धित, घृणाकी गठरी और चामवेष्टित हड्डियोंकी पोटली है। मायाके यन्त्रसे वह घूमती है। नौ नाड़ियोंसे उद्भिन्न होकर चल रही है। आठ कर्मोंकी गाँठोंसे संघटित रस, मज्जा और रक्तपंकसे भरी उसे केवल प्रचुर मांसका ढेर समझिए, कृमि और कीड़ोंका घर है। तथा खाटकी शत्रु और धरतीको भार है। आहारके लिए पीसना और रातमें मृतककी भाँति सो जाना, दिनमें जीवित रहना। इस प्रकार श्वास लेते छोड़ते तथा जीते मरते हुए स्त्रीका जन्म व्यतीत हो जाता है। मरणकालमें कीड़े उसे ऐसा काट खाते हैं, कि उसे देखकर लोग मुख टेढ़ा कर लेते हैं। सैकड़ों मक्खियोंसे घिनौने उस वैसे स्त्री-शरीरसे किस प्रकार रमण किया जाता है" ॥१-६॥

[७] उसके मंथर गतिवाले चरण-युगलको पक्षी बुरी तरह खा जाते हैं, वह सुहावना सुरति-नितम्ब कीड़ोंसे बिलबिलाता हुआ घिनौना हो उठता है। वह चमकीला क्षीण मध्यभाग केवल खा लिया जाता है। आलिंगनकी इच्छा रखनेवाला यह यौवन भयंकर रूपसे क्षीण हो उठता है। जीवित अवस्थाके उस सुन्दर

तं अहर-बिम्बु वण्णुज्जलउ । लुञ्चन्तु सिवहिँ विणि-विट्टलउ ॥६॥
तं णयण-जुअलु विब्भम-भरिउ । विच्छायउ काएँहिँ कप्परिउ ॥७॥
सो चिहुर-भारु कोड्डावणउ । उड्डन्तु णवर भीसावणउ ॥८॥

घत्ता

तं माणुसु तं मुह-कमलु ते थण तं गाढालिङ्गणु ।
णवर धरेप्पिणु णासउड्ढु वोल्लेवउ "धिधि चिलिसावणु" ॥९॥

[८]

तहिँ तेहएँ रस-वस-पूय-भरेँ । णव मास वसेवउ देह-घरेँ ॥१॥
णव-णाहि-कमलु उत्थल्लु जहिँ । पहिलउ जेँ पिण्ड-संवन्धु तहिँ ॥२॥
दस-दिवसु परिट्ठिउ रुहिर-जलेँ । कणु जेम पइण्णउ धरणियलेँ ॥३॥
विहिँ दसरत्तेहिँ समुट्ठियउ । णं जलेँ डिण्डीरु परिट्ठियउ ॥४॥
तिहिँ दसरत्तेहिँ बुव्वउ घडिउ । णं सिसिर-बिन्दु कुङ्कुमेँ पडिउ ॥५॥
दसरत्तेँ चउत्थएँ वित्थरिउ । णावइ पवलङ्कुरु णीसरिउ ॥६॥
पञ्चमेँ दसरत्तेँ जाव वलिउ । णं सूरण-कन्दु चउप्फलिउ ॥७॥
दस-दसरत्तेहिँ कर-चरण-सिरु । दीसहिँ णिप्पण्णु सरीरु थिरु ॥८॥
णवमासिउ देहहोँ णीसरिउ । वड्डन्तु पडीवउ वीसरिउ ॥९॥

घत्ता

जेण दुवारेँ आइयउ जो तं परिहरेँवि ण सक्कइ ।
पन्तिहिँ जुत्तु वइल्लु जिह भव-संसारेँ भमन्तु ण थक्कइ ॥१०॥

[९]

एँउ जाणेंवि धीरहि अप्पणउ । करेँ कङ्कणु जोवहि दप्पणउ ॥१॥
चउगइ-संसारेँ भमन्तएँण । आवन्तेँ जन्त-मरन्तएँण ॥२॥

मुखड़ेको, मरते समय कृमि खा जाते हैं। उजले रंगवाले, घृणित और उच्छिष्ट अधरबिम्ब सियार लुंजित कर देते हैं। विभ्रमसे भरे, कान्तिहीन दोनों नेत्रोंको कौए खण्डित कर देते हैं। कुतूहलजनक वह केशकलाप भी भयंकररूपसे बिखर जाता है। वह मनुष्य, वह मुख कमल, वे स्तन, वह प्रगाढ़ आलिंगन—ये जब नष्ट होने लगते हैं तो लोग यही बोल उठते हैं, "छिः छिः कितने घिनौने हैं ये" ॥१–९॥

[८] उस वैसे रस, मज्जा और मांससे भरे देहरूपी घरमें यह जीव ९ माह रहता है। वहीं पहले नया नाभिकमल (नग) उत्पन्न होता है। पहला पिंड सम्बन्ध तभी होता है। फिर दस दिन वह रुधिर-रूपी जलमें रहता है, ठीक वैसे ही जैसे बीज धरतीमें पड़ा रहता है। फिर बीस दिनमें वह और उठता है, मानो जलमें फेन उठा हो, तीस दिनमें वह बुद्बुद (बुब्बुक्) बनता है मानो परागमें हिमकण पड़ा हो। चालीस दिनमें वह फैल जाता है मानो नया प्रबल अंकुर फैल गया हो। पचास दिनमें वह और पुष्ट होता है मानो चारों ओरसे विकसित सूरन कन्द हो। फिर सौ दिनमें हाथ, सिर, पैर बन जाते हैं और बीस दिनमें शरीर स्थिर हो जाता है। इस प्रकार ९ माहमें जीव शरीर (माँके उदर) से निकलता है। और बढ़ता हुआ, यह सब भूल जाता है। (आश्चर्य है) कि जीव जिस द्वारसे आता है वह उसीको नहीं छोड़ सकता। जुँएमें जुते हुए तेलीके बैलकी तरह भव-संसारमें भटकता हुआ कभी नहीं थकता ॥१–१०॥

[९] यह समझकर अपने मनमें धीरज रखना चाहिए। जरा हाथका कड़ा और दर्पण तो देखो। चार गतियोंसे संकुल इस संसारमें आते-जाते और मरते हुए जीवने जगमें किसे नहीं रुलाया,

जगें जीवें को ण रुवावियउ। को गरुअ धाह ण मुआवियउ ॥३॥
को कहि मि णाहिँ संतावियउ। को कहि मि ण आवइ पावियउ ॥४॥
को कहिँ ण दड्ढु को कहिँ ण मुउ। को कहिँ ण भमिउ को कहिँ ण गउ ॥५॥
कहिँ ण वि भोयणु कहिँ ण वि सुरउ। जगेँ जीवहोँ किं पि ण वाहिरउ ॥६॥
तइलोक्कु वि असिउ असन्तएँण। महि सयल दड्ढ डज्झन्तएँण ॥७॥

घत्ता

सायरु पीउ पियन्तएँण अंसुएँहिँ रुअन्तेँ भरियउ।
हड्ड-कलेवर-संचएँण गिरि मेरु सो वि अन्तरियउ ॥८॥

[१०]

अहवइ किं वहु-चविएण राम। भवे भमिउ भयङ्करेँ तुहु मि ताम ॥१॥
णडु जिह तिह वहु-रूवन्तरेँहिँ। जर- जम्मण- मरण- परम्परेँहिँ ॥२॥
सा सीय वि जोणि-सएहिँ आय। तुहुँ कहि मि वप्पु सा कहि मि माय ॥३॥
तुहुँ कहि मि भाउ सा कहि मि वहिणि। तहुँ कहि मि दइउ सा कहि मि घरिणि।४
तुहुँ कहि मि णरएँ सा कहि मि सग्गेँ। तुहुँ कहि मि महिहिँ सा गयण-मग्गेँ॥५।
तुहुँ कहि मि णारि सा कहि मि जोहु। किं सविणा-रिद्धिहेँ करहि मोहु ॥५॥
उम्मेट्ठु विओअ-गइन्दएसु। जगडन्तु भमइ जगु णिरवसेसु ॥७॥
जइ ण धरिउ जिण-वयणङ्कुसेण। तो खज्जइ माणुसु माणुसेण ॥८॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु वे वि मुणि गय कहि मि णहङ्गण-पन्थेँ।
रामु परिट्ठिउ किविणु जिह धणु एक्कु लएवि स-हन्थेँ ॥९॥

[११]

विरहाणल- जाल- पलित्त- तणु। चिन्तेवएँ लग्गु विसण्ण-मणु ॥१॥
सच्चउ संसारेँ ण अत्थि सुहु। सच्चउ गिरि-मेरु-समाणु दुहु ॥२॥

डाढ़ मारकर कौन नहीं रोया, कहो कौन नहीं सताया गया, किसे कहाँ आपत्ति नहीं भोगनी पड़ी। कौन जला नहीं और कौन मरा नहीं। कौन भटका नहीं, कौन गया नहीं, कहाँ किसे भोजन नहीं मिला और किसे कहाँ सुरति नहीं मिली। संसारमें जीवके लिए बाह्य कुछ भी नहीं है। खाते हुए उसने तीनों लोक खा डाले और जल-जल कर सारी धरती फूँक डाली। पी-पीकर समस्त सागर पी डाला, और रो-रोकर उसे भर भी दिया। हड्डियों और शरीरोंके सञ्चयसे उसने सुमेरुपर्वतको भी ढक दिया ॥१-८॥

[१०] अथवा हे राम ! बहुत कहने से क्या, तुम भी भव-सागरमें अबतक भटकते रहे हो। नटकी तरह मानो रूप ग्रहणकर जन्म, जरा और मरणकी परम्परामें भटकते रहे हो। वह सीता भी सैकड़ों योनियोंमें जन्म पा चुकी है। कभी तुम बाप बने और वह माँ बनी। कभी तुम भाई बने और वह बहन बनी। कभी तुम पति बने तो वह पत्नी बनी। कभी तुम नरकमें थे वह स्वर्गमें थी। कभी तुम धरतीपर थे तो वह आकाशमार्गमें। कभी तुम स्त्री थे तो वह पुरुष थी। अरे स्वप्नमें प्राप्त इस वैभवमें मुग्ध क्यों होते हो ? महाव्रतसे रहित यह वियोगरूपी उन्मत्त महा-गज सारे संसारमें उत्पात मचा रहा है। यदि जिन-वचन रूपी अङ्कुशसे इसे वशमें न किया जाय तो वह सारे विश्वको खा जाय।" यह कहकर वे दोनों आकाश-मार्गसे कहीं चले गये। केवल राम ही कृपणकी भाँति एक, धन ही (धन्या और रुपया-पैसा) अपने हाथमें लेकर बैठे रह गये ॥१-९॥

[११] रामका शरीर वियोग-ज्वालामें जल रहा था। खिन्न-मन होकर वह सोचने लगे, "सचमुच संसारमें सुख नहीं है, सचमुच संसारमें दुःख सुमेरु पर्वतके बराबर है। सचमुचमें जन्म,

सच्चउ जर-जम्मण-मरण-भउ । सच्चउ जीविउ जल-विन्दु-सउ ॥३॥
कहोँ घरु कहोँ परियणु वन्धु-जणु । कहोँ माय-वप्पु कहोँ सुहि-सयणु ॥४॥
कहो पुत्तु मित्तु कहोँ किर घरिणि । कहोँ भाय सहोयर कहोँ वहिणि ॥५॥
फलु जाव ताव वन्धव सयण । आवासिय पायवेँ जिह सउण' ॥६॥
वलु एम भणेप्पिणु णीसरिउ । रोवन्तु पडीवउ वीसरिउ ॥७॥

घत्ता

णिद्धणु लक्खण-वज्जियउ अण्णु वि वहु-वसणेँहिँ भुत्तउ ।
राहउ भमइ भुअङ्गु जिह वणेँ 'हा हा सीय' भणन्तउ ॥८॥

[१२]

हिण्डन्तेँ भग्ग - मडप्फरेँण । वण-देवय पुच्छिय हलहरेँण ॥१॥
'खणेँ खणेँ वेयारहि काइँ मइँ । कहेँ कहि मि दिट्ठ जइ कन्त पइँ' ॥२॥
वलु एम भणेप्पिणु संचलिउ । तावग्गएँ वण-गइन्दु मिलिउ ॥३॥
'हे कुञ्जर कामिणि-गइ-गमण । कहेँ कहि मि दिट्ठ जइ मिगणयण' ॥४॥
णिय - पडिरवेण वेयारियउ । जाणइ सीयएँ हक्कारियउ ॥५॥
कत्थइ दिट्ठइँ इन्दीवरइँ । जाणइ धण-णयणइँ दीहरइँ ॥६॥
कत्थइ असोय-तरु हल्लियउ । जाणइ धण - वाहा-डोल्लियउ ॥७॥
वणु सयलु गवेसँवि सयल महि । पल्लट्टु पडीवउ दासरहि ॥८॥

घत्ता

तं जि पराइउ णिय-भवणु जहिँ अच्छिउ आसि लयत्थले ।
चाव-सिलिम्मुह-मुक्क-करु वलु पडिउ स इं भु व-मण्डलेँ ॥९॥

●

जरा और मरणका भय है। और जीवन जल-बुदबुदकी तरह क्षणभंगुर है। किसका घर? किसके परिजन और बन्धुजन; किसके माता-पिता और किसके सुधीस्वजन। किसके पुत्र, किसके मित्र, किसकी स्त्री, किसका भाई, किसकी बहन, जब तक कर्म-फल है तभी तक बन्धु और स्वजन वैसे ही हैं जैसे पक्षी पेड़पर आकर बसेरा कर लेते हैं। यह विचारकर राम उठे किन्तु रोते हुए वह अपनी सुध-बुध फिर भूल गये। राम, विटकी तरह कामातुर होकर 'हा सीता' कहते हुए घूमने लगे। वह निधन (धन्या और धनसे रहित) लक्खणवर्जित (लक्ष्मण और गुणोंसे शून्य) और बहुव्यसनों (दुःख और बुरी आदत) से युक्त थे ॥१–६॥

[१२] तब भग्नप्राय और स्वाभिमानी रामने वनदेवीसे पूछा—"मुझे क्षण-क्षणमें क्यों दुखी कर रही हो। बताओ यदि तुमने मेरी कान्ता देखी हो।" यह कहकर वह आगे बढ़े ही थे कि उन्हें एक मत्त गज मिला। उन्होंने कहा "अरे मेरी कामिनीकी तरह सुन्दर गतिवाले गज, क्या तुमने मेरी मृगनयनीको देखा है?" अपनी ही प्रतिध्वनिसे प्रताड़ित होकर वह यही समझते थे कि मानो सीता देवीने ही उन्हें पुकारा है। कहीं वह नील कमलोंको अपनी पत्नीके विशाल नयन समझ बैठते, कहीं हिलते हुए अशोक वृक्षको वे यह समझ लेते कि सीतादेवीकी बाँह हिल डुल रही है। इस प्रकार समस्त धरती और वनको खोज करके राम वापस आ गये, और वह अपने सुन्दर लतागृहमें पहुँचे। अपना धनुष बाण (उतारकर) एक ओर रखकर वह धरती पर गिर पड़े ॥१–६॥

[४०. चालीसमो संधि]

दसरह-तव-कारणु सव्वुद्धारणु वज्जयण्ण - सम्मय-भरिउ ।
जिणवर-गुण-कित्तणु सीय-सइत्तणु तं णिसुणहु राहव-चरिउ ॥

[१]

ध्रुवकं

तं सन्तं गयागसं धीसं संताव-पाव-संतासं (?) ।
चारु-रुचा - रणं वंदे देवं संसार-घोर-सोसं ॥१॥

असाहणं । कसाय-सोय-साहणं ॥२॥
अवाहणं । पमाय-माय-वाहणं ॥३॥
अवन्दणं । तिलोय-लोय-वन्दणं ॥४॥
अपुज्जणं । सुरिन्दराय-पुज्जणं ॥५॥
असासणं । तिलोय-छेय-सासणं ॥६॥
अवारणं । अपेय-भेय - वारणं ॥७॥
अणिन्दियं । जय-प्पहुं अणिन्दियं॥८॥
महन्तयं । पचण्ड-वम्महन्तयं ॥९॥
रवण्णयं । घणालि-वार-वण्णयं ॥१०॥

घत्ता

मुणि-सुव्वय-सामिउ सुह-गइ-गामिउ तं पणवेप्पिणु दिढ-मणेंण ।
पुणु कहमि महब्बलु खर-दूसण-बलु जिह आयामिउ लक्खणेंण ॥११॥

[२]

दुवई

हिय एत्तहें वि सीय एत्तहें वि विओउ महन्तु राहवे ।
हरि एत्तहें वि भिडिउ एत्तहें वि विराहिउ मिलिउ आहवे ॥१॥

ताव तेत्थु भीसावणे वणे । एक्कमेक्क-हक्कारणे रणे ॥२॥
कुरुड-दिट्ठि-वयणुब्भडे भडे । विरइए महा-वित्थडे थडे ॥३॥
वावरन्त - भय-भासुरे सुरे । जज्जरङ्ग - पहराउरे उरे ॥४॥
असि-सनाहु-पडियप्फरे फरे । जम्पमाण-कडुअक्खरे खरे ॥५॥

चालीसवीं सन्धि

(फिर कवि निवेदन करता है कि) अब उस राघवचरितको सुनिये जो दशरथके तपका कारण, सबका उद्धारक, वज्रवर्णके सम्यक्त्वसे परिपूर्ण, जिन-चरके कीर्तनसे शोभित और सीताके सतीत्वसे भरपूर है।

[१] मैं कवि (स्वयम्भू) शान्त और अठारह प्रकारके दोषोंसे रहित बुद्धिके अधीश्वर मुनिसुव्रत जिनको प्रणाम करता हूँ। वेद, कषाय और पापोंके नाशकर्ता, सुन्दर कान्तिसे परिपूर्ण सवारी आदिसे रहित, माया और प्रमादके वंचक, दुष्टोंसे अपूज्य और सुरेंद्रोंसे पूज्य है। वह उपाध्यायसे रहित होकर भी त्रिलोकके विदग्धोंके शिक्षक हैं। वह वारण रहित होकर भी मद्य मधु आदिके निषेधकर्ता हैं। निन्द्रा रहित और जितेन्द्रिय, महान् प्रचण्ड कामके संहारक और सुन्दर निधियोंके अधिपति हैं। मैं ऐसे उन शुभगतिगामी मुनिसुव्रत स्वामीको प्रणाम करता हूँ। अब मैं दृढ़सकल्प होकर इस बातको बता रहा हूँ कि लक्ष्मणने किस प्रकार खरदूषणको मारा और उसकी सेना परास्त की ॥१-११॥

[२] यहीं (इस प्रसंगमें) सीतादेवीका हरण हुआ, यहीं रामको वियोग दुख सहन करना पड़ा, यहीं जटायुका घोर युद्ध हुआ, यहीं विराधित विद्याधरसे भेंट हुई। इस समय उस भीषण वनमें भयंकर युद्ध हो रहा था। सुभट एक दूसरेको ललकार रहे थे। वे अत्यन्त क्रूर और विकट दृष्टिसे उद्भट थे। बहुत बड़े-बड़े दल बने हुए थे, आक्रमणशील, भयसे भयंकर रौद्र जर्जर अंग, और घावोंसे भरे हुए थे। तलवार सहित हाथ इधर-उधर कटकर

दलिय-कुम्भ-वियलङ्गए गए। सिरु धुणाविए आहए हए ॥६॥
रुहिर-विन्दु-चच्चिक्किए किए। सायरे व्व सुर-मन्थिए थिए ॥७॥
छत्त-दण्ड - सय-खण्ड - खण्डिए। हड्ड - रुण्ड - विच्छड्ड-मण्डिए ॥८॥
तहिँ महाहवे घोर-दारुणे। दिट्ठु वीरु पहरन्तु साहणे ॥९॥

घत्ता

तिलु तिलु कप्परियइँ उरेँ जज्जरियइँ रत्तच्छइँ फुरियाणणइँ।
दिट्ठइँ गम्भीरइँ सुहड-सरीरइँ सर-सल्लियइँ सवाहणइँ ॥१०॥

[२]

दुवई

को वि सुभडु स- तुरङ्गमु को वि सजाणु सल्लिओ।
को वि पडन्तु दिट्ठु आयासहोँ लक्खण सर-विरल्लिओ ॥१॥
भडो को वि दिट्ठो परिच्छिन्न-गत्तो। स-दन्ती स-मन्ती स-चिन्धो स-छत्तो॥२॥
भडो को वि वावल्ल-भल्लेहिँ भिण्णो। भडो को वि कप्पद्दुमो जेम छिण्णो ॥३॥
भडो को वि तिक्खग्ग-णाराय-विद्धो। महा-सत्थवन्तो व्व सत्थेहिँ विद्धो ॥४॥
भडो को वि कुद्धाणणो विप्फुरन्तो। मरन्तो वि हक्कार-डक्कार देन्तो ॥५॥
भडो को वि भिण्णो स-देहो समत्थो। पमुच्छाविओ को वि कोवण्ड-हत्थो ॥६॥
मुओ को वि कोवुब्भडो जीवमाणो। चलच्चामर-च्छोह - विज्जिज्जमाणो ॥७॥
वसा-कद्दमे मद्दवे को वि खुत्तो। खलन्तो वलन्तो णियन्तेहिँ गुत्तो ॥८॥
भडो को वि भिण्णो खुरुप्पेहिँ एन्तो। णियन्तो कुसिद्धो व्व सिद्धिं ण पत्तो ॥९॥

पड़े थे। वे तीव्र और कठोर शब्द बोल रहे थे, हाथियोंके शरीर विकलांग थे। उनके कुम्भस्थल टूट फूट चुके थे। सिर फूटनेसे अश्व भी आहत हो उठे थे। रक्तरंजित वह युद्ध, समुद्रमें हुए देव मन्थनकी तरह जान पड़ता था। छत्रों और ध्वज-दण्डोंके सौ-सौ टुकड़े हो चुके थे। हड्डियों और धड़ोंसे मण्डित उस भयंकर युद्धमें लक्ष्मण सेनापर प्रहार करता हुआ दिखाई दे रहा था। योधाओंके शरीर सवारियों और बाणकी अनीकोंसे सहित थे। उनकी बोटी-बोटी कट चुकी थी। वक्षस्थल जर्जर थे। रक्तरंजित ध्वजाएँ काप रही थीं ॥१-१०॥

[३] स्वयं कुमार लक्ष्मणके तीरोंसे आहत होकर, कोई योधा अश्व सहित और कोई यान सहित खण्डित हो गया था। कोई आकाशसे गिरता हुआ दिखाई दे रहा था। कोई योधा गजयंत्र (अंकुश) और चिह्नके साथ छिन्न शरीर दीख पड़ा। कोई योधा बावल्ल और भालोंसे विधकर पड़ा हुआ था। कोई कल्पद्रुमकी तरह छिन्न-भिन्न हो गया था। कोई योधा तीखे तीरोंसे विद्ध हो उठा। बड़े-बड़े अस्त्रोंसे सम्पन्न होने पर भी कोई योधा वन्दी बना लिया गया। क्रुद्ध होकर कोई सुभट काँपता और मरता हुआ भी गरज रहा था। कोई समर्थ योधा सशरीर ही छिन्न-भिन्न हो गया। कोई योधा हाथमें धनुष-तीर लिये हुए ही मूर्छित होकर गिर पड़ा। क्रोधसे उद्भट कोई योधा, चञ्चल चमरोंकी शोभासे ऐसा चमक रहा था कि मृत भी जीवित लग रहा था। कोई योधा मांस-मज्जाकी घनी कीचड़में धँस गया। कोई गिरता पड़ता, अपनी ही आँतोंमें छिप सा गया। आता हुआ कोई भट खुरपोंसे छिन्न-भिन्न हो गया। कुसिद्धकी तरह नियंत्रित होने पर भी, वह सिद्धि प्राप्त नहीं कर पा रहा था। लक्ष्मणके तीरोंसे आहत,

घत्ता

लक्खण-सर-भरियउ अद्धुच्चरियउ खर-दूसण-वलु दिट्ठु किह ।
साहारु ण वन्धइ गमणु ण सन्धइ णवल्लउ कामिणि-पेम्मु जिह ॥१०॥

[४]

दुवई

परधण-परकलत्त-परिसेसहुँ परवल-सण्णिवायहुँ ।
एक्कें लक्खणेण विणिवाइय सत्त सहास रायहुँ ॥१॥

जीवन्तएँ अद्धएँ वइरि-सेण्णें । अद्धएँ दलवट्टिएँ महि-णिसण्णें ॥२॥
तहिँ अवसरें पवर-जसाहिएण । जोक्कारिउ विण्हु विराहिएण ॥३॥
'पाइक्कहों वट्टइ एहु कालु । हउँ भिच्चु देव तुहुँ सामिसालु ॥४॥
कहिओ सि आसि जो चारणेहिँ । सो लक्खिओ सि सइँ लोयणेहिँ ॥५॥
तं सहल मणोरह अज्जु जाय । जं दिट्ठ तुहारा वे वि पाय ॥६॥
णिय-जणणिहें हउँ गब्भत्थु जइउ । विणिवाइउ पिउ महु तणउ तइउ ॥७॥
सहुँ ताएं महु पाइक्क-पवरु । उद्दालिउ तमलङ्कार-णयरु ॥८॥
तें समर - महब्भय - भीसणेहिँ । सहुँ पुव्व-वइरु खर-दूसणेहिँ' ॥९॥

घत्ता

जय-लच्छि-पसाहिउ भणइ विराहिउ 'पहु पसाउ महु पेसणहोँ ।
तुहुँ खरु आयामहि रणउहें णामहि हउँ अब्भिट्टमि दूसणहोँ' ॥१०॥

[५]

दुवई

तं णिसुणेवि वयणु विज्जाहरु सम्भीसिउ कुमारेंणं ।
'वइसरु ताव जाव रिउ पाडमि एक्कें सर-पहारेंणं ॥१॥

एउ सेण्णु खर-दूसण-केरउ । वाणेंहिँ करमि अज्जु विवरेरउ ॥२॥
स-धउ स-वाहणु स-पहु स-हत्थें । लायमि सम्बु-कुमारहोँ पन्थें ॥३॥
तुज्झु वि जम्म-भूमि दरिसावमि । तमलङ्कार-णयरु भुआवमि' ॥४॥

खर-दूषणकी अधउबरी सेना कामिनीके नवल प्रेमकी तरह जान पड़ती थी। क्योंकि न तो वह (नवल प्रेम और सेना) जा ही पाता था और न ढाढस ही बाँध पाता था ॥१-१०॥

[४] इस प्रकार दूसरेके धन और स्त्रीका अपहरण करनेवाले, शत्रु सेनाओंमें तोड़-फोड़ करनेवाले सात हजार योधा राजाओंको अकेले लक्ष्मणने ही मारकर गिरा दिया। इस प्रकार आधी सेनाके धराशायी हो जानेपर जब आधी सेना ही शेष बची तो परम यशस्वी विराधितने कुमार लक्ष्मणका अभिनंदन करते हुए कहा—"हे देव, आज अवश्य ही आप मेरी रक्षा करें, आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका अनुचर। चारण मुनियोंने जो कुछ भविष्यवाणी की थी उसे मैं आज अपनी आँखोंसे सच होता हुआ देख रहा हूँ। आज मैंने आपके चरणयुगलके दर्शन कर लिये। जब मै अपनी माताके गर्भमें था तभी इसने (खर-दूषणने) मेरे पिताका वध कर दिया था। और साथ ही उत्तम प्रजासे सहित मेरा तमलंकार नगर भी छीन लिया। इस प्रकार इस महासमरमें खर-दूषणसे बहुत पुरानी शत्रुता है।" विजय-लक्ष्मीके इच्छुक विराधितने और भी कहा, "मुझ सेवकपर प्रसाद करें। आप युद्ध मुखमें जाकर खरसे लड़कर उसे नत करें और तबतक मैं दूषणसे निपटता हूँ" ॥१-२०॥

[५] विद्याधर विराधितके वचन सुनकर कुमार लक्ष्मणने उसे अभयदान दिया। उसने कहा—"जबतक मैं एक ही तीरसे शत्रुको मार गिराता हूँ तबतक तुम यहीं बैठो। खरदूषणकी सेनाको मैं आज ही अपने तीरोंसे तितर-बितर करता हूँ। और पताका, वाहन, राजा, गजोंके साथ सभीको शम्बूक कुमारके पथपर प्रेषित किये देता हूँ। तुम्हें मैं अपनी जन्मभूमिके दर्शन करा दूँगा। मैं

हरि-वयणेंहिँ हरिसिउ विज्जाहरु । चलणेंहिँ पडिउ सीसेँ लाएँवि करु ॥५॥
ताव खरेण समरेँ णिव्वूढें । पुच्छिउ मन्ति विमाणारूढें ॥६॥
'दीसइ कवणु एहु वीसन्थउ । णरु पणमन्तु कियञ्जलि-हत्थउ ॥७॥
बाहुबलेण बलेण विवलियउ । णं खय-कालु कियन्तहोँ मिलियउ' ॥८॥
पभणइ मन्ति विमाणेँ पइट्ठउ । 'किं पइँ वइरि कयावि ण दिट्ठउ ॥९॥

घत्ता

णामेण विराहिउ पवर-जसाहिउ वियड-वच्छु थिर-थोर-भुउ ।
अणुराहा-णन्दणु स-बलु स-सन्दणु एहु सो चन्दोअरहोँ सुउ' ॥१०॥

[६]

दुवई

मन्ति-णिवाण विहि मि अवरोप्परु ए आलाव जावेँ हिँ ।
विण्हु-विराहिएहिँ आयामिउ पर-बलु सयलु तावेँ हिँ ॥१॥
तो खरोऽरिमद्दणेण । कोक्किओ जणद्दणेण ॥२॥
एत्तहे स-सन्दणेण । सोऽणुराह - णन्दणेण ॥३॥
आहवे समत्थएण । चाव - बाण-हत्थएण ॥४॥
रत्त-वण्ण - लोयणेण । भीसणावलोयणेण ॥५॥
कुम्भि-कुम्भ-दारणेण । पुव्व-वइर - कारणेण ॥६॥
दूसणो जसाहिवेण । कोक्किओ विराहिएण ॥७॥
एहु वे(?)हओ हयस्स । चोइओ गओ गयस्स ॥८॥
वाहिओ रहो रहस्स । धाइओ णरो णरस्स ॥९॥

घत्ता

स-गुड-स-सण्णाहइँ कवय-सणाहइँ सप्पहरणइँ स-वाहणइँ ।
णिय-वइरु सरेप्पिणु हक्कारेप्पिणु भिडियइँ वेण्णि मि साहणइँ ॥१०॥

[७]

दुवई

सेण्णहोँ भिडिउ सेण्णु दूसणहोँ विराहिउ खरहोँ लक्खणो ।
हय पडु पडह तूर किउ कलयलु गज्ज-गम्भीर-भीसणो ॥१॥

भी तमलंकारनगरका उपभोग करूँगा।" इस प्रकार लक्ष्मणके आश्वासन देनेपर विद्याधर विराधित प्रसन्न हो उठा। वह सिर झुकाकर चरणोंमें नत हो गया। इसी बीच, युद्धसे निपटनेपर खरने अपने मंत्रीसे पूछा कि "यह कौन है कि इस प्रकार एक दम निराकुल होकर और हाथमें अंजलि लेकर (लक्ष्मणको) प्रणाम कर रहा है। वह बाहुबलि (विराधित) लक्ष्मणसे उसी प्रकार जा मिला है जिस प्रकार क्षयकाल जाकर कृतान्तसे मिल जाता है।" इसपर, विमानमें बैठे-बैठे ही मंत्रीने कहा कि "क्या आपने अपने शत्रु विराधितको नहीं देखा। प्रबल यशस्वी विशालबाहु वह, अनुराधाका पुत्र विराधित है। रथ और अपनी सेना लेकर वह, चंद्रोदरका पुत्र है" ॥१-१०॥

[६] राजा खर और मंत्रीमें जब इस प्रकार बात-चीत हो रही थी तभी लक्ष्मण और विराधितने मिलकर शत्रुसेनाको घेर लिया। अरिदमन लक्ष्मणने खरको ललकारा और विद्याधर विराधितने रथ बढ़ाकर दूपणको। सचमुच युद्धमें समर्थ, हाथमें धनुष-बाण लिये हुए, आरक्तनयन, गज कुभंस्थलोंको विदीर्ण करनेवाला वह (विराधित) देखनेमें अत्यन्त भयंकर हो रहा था। अपने पूर्व वैरका स्मरणकर उसने दूपणको (ललकारकर) चुनौती दी। बस, अश्वपर अश्व और गजपर गज प्रेरित कर दिये गये। रथपर रथ हाँके जाने लगे। और योधापर योधा दौड़ पड़े। इस प्रकार दोनों ही सेनाएँ एक दूसरेके निकट जाकर आपसमें लड़ने लगीं। वे दोनों ही सेनाएँ सगुड ? संनद्ध कवच आयुध और वाहनोंसे परिपूर्ण थीं ॥१-१०॥

[७] उस तुमुल युद्धमें सेनासे सेना भिड़ गई। विराधित दूपणसे, लक्ष्मण खरसे भिड़ गये। पट-पटह बज उठे, तूर्योंका

तहिँ रण-संगमेँ । वुण्ण - तुरङ्गमेँ ॥२॥
रह-घाय-चोन्दलेँ । वज्जिय - मन्दलेँ ॥३॥
भड - कडमद्दणेँ । मोडिय-सन्दणेँ ॥४॥
णरवर-दण्डिएँ । किय-किलिकिण्डिएँ ॥
वाला - लुञ्चिएँ । रह-सय-खञ्चिएँ ॥६॥
तहिँ अपराइण । स्वर - णारायण ॥७॥
भिडिय महव्वल । वियड - उरत्थल ॥८॥
वे वि समच्छर । वे वि भयङ्कर ॥९॥
वे वि अकायर । वे वि जसायर ॥१०॥
वे वि महब्भड । वे वि अणुब्भड ॥११॥
वे वि धणुद्धर । वेण्णि वि दुद्धर ॥१२॥

घत्ता

वेण्णि वि जस-लुद्धा अमरिस-कुद्धा तिहुयण-मल्ल समावडिय ।
अमरिन्द-दसणण विप्फुरियाणण णाइँ परोप्परु अब्भिडिय ॥१३॥

[८]

दुवई

ताम जणद्दणेण अद्धेन्दु विसज्जिउ रणेँ भयङ्करो ।
णं खय-कालेँ कालु उद्धाइउ तिहुअण-जण-खयङ्करो ॥१॥
मेंचल्लु वाणु । णहयल - समाणु ॥२॥
रिउ-रहहोँ ढुक्कु । स्वरु कह वि चुक्कु ॥३॥
सारहि वि भिण्णु । धय-दण्डु छिण्णु ॥४॥
धणुहरु वि भग्गु । कत्थ वि ण लग्गु ॥५॥
पाडिउ विमाणु । विज्ञएँ समाणु ॥६॥
खरु विरहु जाउ । थिउ असि-सहाउ ॥७॥
धाइउ तुरन्तु । मुह - विप्फुरन्तु ॥८॥
एत्तहेँ वि तेण । णारायणेण ॥९॥
तं सुरहासु । किउ करेँ पगासु ॥१०॥
अब्भिट्ट वे वि । असिवरइँ लेवि ॥११॥

भीषण और गम्भीर कलकल होने लगा। अश्वोंके मुख ऊपर थे। रथ और गजोंकी भीड़ मची थी। ढोल बज रहे थे। योधाओंका संहार होने लगा। रथ मुड़ने लगे। नरवर ध्वस्त हो रहे थे। केश घसीटे जा रहे थे। सैकड़ों रथ वहीं खच गये थे। इस प्रकार उस युद्धमें अपराजित कुमार लक्ष्मण और खरमें मुटभेंड़ हो रही थी। दोनोंके उर विशाल थे, दोनों मत्सरसे भरे हुए भयङ्कर हो रहे थे। दोनों ही वीर यशकी आकांक्षा रखते थे! दोनों ही उद्धत और धनुर्धारी थे। दोनों ही यशके लोभी, अमर्शसे क्रुद्ध और त्रिभुवन-मल्ल थे। वे ऐसे भिड़े मानो दशानन और इन्द्र ही भिड़े हों ॥१-१३॥

[८] तब लक्ष्मणने भयङ्कर अर्धचन्द्र तीर छोड़ा वह तीर मानो तीनों लोकोंको क्षय करनेवाला क्षयकाल ही था। आकाशतलमें सर्राता हुआ वह तीर खरके रथके निकट पहुँचा। खर तो किसी प्रकार बच गया, परन्तु उसका सारथि और ध्वज-दण्ड छिन्न-भिन्न हो गये। उसका धनुष भी टुकड़े-टुकड़े हो गया। किसी तरह वह तीर उसे नहीं लगा। विद्या सहित उसका रथ खण्डित हो गया। अब खर विरथ हो गया, केवल उसके हाथमें तलवार थी। तब तमतमाकर दौड़ा। यह देखकर नारायण लक्ष्मणने भी सूर्यहास खड्ग अपने हाथमें ले लिया। अब उत्तम खड्गोंसे इनमें द्वन्द्व होने

घत्ता

णाणाविह-थाणेंहिँ णिय-विण्णाणेंहिँ वावरन्ति असि-गहिय-कर।
कसणङ्गय दोसिय विज्जु-विहूसिय णं णव-पाउसेँ अम्बुहर ॥१२॥

[९]

दुवई

हत्थि व उद्ध-सोण्ड सीह व लङ्गूल-वलग्ग-कन्धरा।
णिट्ठुर महिहर व्व अइ-खार समुद्द व अहि व दुद्धरा ॥१॥

अब्भिट्ट वे वि सोण्डीर वीर। संगाम - धीर ॥२॥
एत्थन्तरेँ अमर-वरङ्गणाहँ। हरिसिय-मणाहँ ॥३॥
अवरोप्परु वोल्लालाव हूय। 'कहोँ गुण पहूय' ॥४॥
तं णिसुणेंवि कुवलय-णयणियाएँ। ससि- वयणियाएँ ॥५॥
णिब्भच्छिय अच्छर अच्छराएँ। बहु-मच्छराएँ ॥६॥
'खरु मुएँ वि अण्णु किं को वि सूरु। पर-सिमि-चूरु ॥७॥
अण्णेक्क पजम्पिय तक्खणेण। 'सहुँ लक्खणेण ॥८॥
खरु गहहु किह किज्जइ समाणु। जो अवहमाणु ॥९॥
एत्थन्तरेँ णिसियर-कुल-पईवेँ। खरु पहउ गीवेँ ॥१०॥

घत्ता

कोवाणल-णालउ कडि-कण्टालउ दसण-सकेसरु अहर-दलु।
महुमहण-सरग्गेँ असि-णहरग्गें खुण्टेंवि घत्तिउ सिर-कमलु ॥११

[१०]

दुवई

एत्तहेँ लक्खणेण विणिवाइउ णिसियर-सेण्ण-सारओ।
एत्तहेँ दूसणेण किउ विरहु विराहिउ विण्णि वारओ ॥१॥

छुडु छुडु समरेँ पराजिउ साहणु। रह- गय- वाहणु ॥२॥
छुडु छुडु जीव-गाहि आयामिउ। पर-बल-सामिउ ॥३॥
छुडु छुडु चिहुरहेँ हत्थु पसारिउ। कह वि ण मारिउ ॥४॥
ताव खरहों सिरु खुडेंवि महाइउ। लक्खणु धाइउ ॥५॥

लगा। हाथमें खड्ग लिये हुए वे नाना स्थानोंसे अपनी पैतरेबाजी दिखाने लगे। श्याम (गौर) वर्ण वे दोनों ऐसे जान पड़ते थे मानो नव वर्षागम कालमें बिजलीसे शोभित मेघ हों ॥१-१२॥

[६] वे दोनों ऐसे लगते थे मानी सूँड उठाये हुए हाथी हों या पीठपर पूँछ लहराये हुए सिंह। पर्वतकी तरह निष्ठुर, समुद्रकी तरह खारे, और सर्पराजकी तरह दुर्धर हो रहे थे। युद्धधीर वे दोनों वीर आपसमें भिड़ गये। इसी बीच आकाशमें देवबालाएँ प्रसन्न होकर आपसमें बात-चीत करने लगीं। एक बोली-"बताओ, किसमें अधिक गुण हैं ?" यह सुनकर, चन्द्रमुखी और कमलनयनी दूसरी अप्सराने मत्सरसे भरकर उसे झिड़कते हुए कहा—'अरे युद्धमें शत्रु-शिविरको खरको छोड़कर दूसरा कौन चकनाचूर कर सकता है।" इस अवसरपर कई अप्सराओंने कहा—"अरे लक्ष्मणके साथ इस खर (गधे) की तुलना क्यों करती हो। उसकी तुलनामें खर तो एक दम निकम्मा है।" इतनेमें खर कण्ठमें आहत हो उठा। लक्ष्मणके तीरोंकी नोक और सूर्यहास खड्गके नखाग्रसे खरका सिरकमल तोड़कर लक्ष्मणने फेंक दिया। कोपाग्नि? उसकी मृणाल थी। युद्धसे कटकटाते उसके दाँत पराग थे। और अधर पत्ते ॥१-११॥

[१०] जिस समय कुमार लक्ष्मणने निशाचर-सेनाके सार श्रेष्ठ खरको मार गिराया उसी समय विराधितको दूषणने रथ-विहीन कर दिया। उसकी सेना रथ, गज और वाहनोंके साथ शीघ्र ही पराजित होने लगी। इस प्रकार शत्रु-सेनाका स्वामी जीते जी पकड़ लिया गया। हाथ फैलाकर उसने विराधितके बाल पकड़ लिये, किसी प्रकार उसे मारा भर नहीं। इसी बीच खरका सिरकमल काटकर लक्ष्मण उस ओर दौड़े जहाँ विराधित था।

णिय-साहणेँ मब्भीस करन्तउ । रिउ कोक्कन्तउ ॥६॥
दूसण पहरु पहरु जइ सक्कहि । अहिमुहु थक्कहि ॥७॥
तं णिसुणेवि वयणु आरुट्ठउ । चित्तेँ दुट्ठउ ॥८॥
वलिउ णिसिन्दु गइन्दु व सीहहोँ । रण- सय- लीहहोँ ॥९॥

घत्ता

दससन्दण-जाएं वर-णाराएं वियड-उरत्थलेँ विद्धु अरि ।
रेवा-जल-वाहेँ मयर-सणाहेँ णाइँ वियारिउ विञ्झइरि ॥१०॥

[११]

दुवई

उद्धुअ - पुच्छ - दण्ड - वेयण्ड - रसन्तय–मत्त-वाहणं ।
पाडिएँ अतुल-मल्लेँ खरेँ दूसणेँ पडियमसेस-साहणं ॥१॥
सत्त सहास भिडन्तेँ मारिय । दूसणेण सहुँ सत्त वियारिय ॥२॥
चउदह सहस णरिन्दहुँ घाइय । णं कप्पद्दुम व्व विणिवाइय ॥३॥
मण्डिय मेइणि णरवर-छत्तेँहिँ । णावइ सरय-लच्छि सयवत्तेँहिँ ॥४॥
कत्थइ रत्तारत्त पदीसिय । णाइँ विलासिणि घुसिण-विहूसिय ॥५॥
तो एत्थन्तरेँ रह-गय-वाहणेँ । कलयलु घुट्ठु विराहिय-साहणेँ ॥६॥
दिण्णाणन्द-भेरि अणुराएँ । रणु परिअञ्चिउ दसरह-जाएँ ॥७॥
'चन्दोअर-सुअ महु करेँ वुत्तउ । ताम महाहवेँ अच्छु मुहुत्तउ ॥८॥
जाव गवेसमि भाइ महारउ । सहुँ वइदेहिएँ पाण-पियारउ' ॥९॥

घत्ता

खर-दूसण मारेँ वि जिणु जयकारेँ वि लक्खणु रामहोँ पासु गउ ।
णं तिहुअणु घाएँवि जम-पहेँ लाएँ वि कालु कियन्तहोँ सम्मुहउ ॥१०॥

अपनी सेनाको अभयदान देकर और शत्रुको ललकारते हुए उन्होंने कहा—"दूषण, सम्मुख मैं हूँ, यदि सम्भव हो तो मुझपर प्रहार करो।" यह दुष्ट वचन सुनते ही दूषण भड़क उठा। शत-शत युद्धोंमें प्रवीण दूषण लक्ष्मणके सम्मुख वैसे ही आया जैसे सिंहके सम्मुख गज आता है। लक्ष्मणने उसे भी तीरसे आहत कर दिया। मानो मगरसे सहित रेवा नदीके प्रवाहने विन्ध्याचलको ही विदीर्ण कर दिया हो ॥१-१०॥

[११] इस प्रकार अतुल वली खर और दूषणका पतन होने पर, उसकी सेनाको भी पराजित होना पड़ा। उसकी पताकाएँ उड़ रही थीं। और रणतूर्यसे उन्मत्त उसके वाहन थे। सात हजार सैनिक तो पहले ही मारे जा चुके थे, अव शेप सात हजार दूषणके युद्धमें काम आये। इस तरह कुल मिलाकर उसने चौदह हजार राजाओंको ऐसे साफ कर दिया मानो कल्पवृक्षको काट दिया हो। (उस समय) नरवरोंके छत्रोंसे पटी हुई धरती ऐसी मालूम होती थी मानो कमल-दलोंसे युक्त शरद्-लक्ष्मी हो। कहीं पर रक्त-रञ्जित धरती केशरसे अलंकृत विलासिनीकी तरह दीख पड़ती थी। इतनेमें रथ, गज, वाहनवाली विराधितकी सेनाने कलकल शब्द किया। लक्ष्मणने भी अनुरागसे आनन्दकी भेरी वजवाकर युद्धकी परिक्रमाकर विराधितसे कहा—"जब तक मैं सीता-सहित अपने भाईको खोजता हूँ तक तक तुम यहीं पर रहो।" इस प्रकार खर, दूषणका वधकर, और जिनवरकी जय वोलकर लक्ष्मण रामके निकट ऐसे गये मानो काल ही त्रिभुवनका घातकर और उसे यमके पदपर पहुँचाकर कृतान्तके पास गया हो ॥१-१०॥

[१२]

दुवई

हलहरु लक्खणेण लक्खिज्जइ सीया-सोय-णिब्भरो ।
घत्तिय तोण-चाण महि-मण्डलें कर-परिचत्त-धणुहरो ॥१॥
विओय - सोय - तत्तओ । करि व्व भग्ग-दन्तओ ॥२॥
तरु व्व छिण्ण-डालओ । फणि व्व णिप्फणालओ ॥३॥
गिरि व्व वज्ज-सूडिओ । ससि व्व राहु-पीडिओ ॥४॥
अपाणिउ व्व मेहवो । वणे विसण्ण-देहओ ॥५॥
चओ सुमित्ति-पुत्तिणं । पपुच्छिओ तुरन्तिणं ॥६॥
'ण दीसए विहङ्गओ । स-सीयओ कहि गओ' ॥७॥
सुणेवि तस्स जम्पियं । तमक्खियं ण जं पियं ॥८॥
'वणे विणट्ठ जाणई । ण को वि वत्त जाणई ॥९॥

घत्ता

जो पक्खि रणेऽज्ज दिण्णु सहेज्जउ सो वि समरें संघारियउ ।
केणावि पचण्डें दिढ-भुअ-दण्डें णेवि तलप्पएँ मारियउ' ॥१०॥

[१३]

दुवई

ए आलाव जाव वट्टन्ति परोप्परु राम-लक्खणे ।
ताव विराहिओ वि वल-परिमिउ पत्तु तहिं जि तक्खणे ॥१॥
तो ताव कियञ्जलि-हत्थएण । महिवीढोणामिय - मत्थएण ॥२॥
वलएउ णमिउ विज्जाहरेण । जिणु जम्मणें जेम पुरन्दरेंण ॥३॥
आसासु देवि गुरु-मलहरेण । सोमित्ति पपुच्छिउ हलहरेण ॥४॥
'सहुँ सेण्णें पणमिउ कवणु एहु । णं तारा-परिमिउ हरिणदेहु' ॥५॥
तं वयणु सुणेप्पिणु पुरिस-सीहु । थिर-थोर-महाभुअ - फलिह-दीहु ॥६॥
सब्भावें रामहों कहइ एम । 'चन्दोयर-णन्दणु एहु देव ॥७॥
खर-दूसणारि महु परम-मित्तु । गिरि मेरु जेम थिर-थोर-चित्तु' ॥८॥
तो एम पसंसेंवि तक्खणेण । 'हिअ जाणइ' अक्खिउ लक्खणेण ॥९॥

घत्ता

कहिँ कुढें लग्गेसमि कहि मि गवेसमि दइवें परम्मुहें किं करमि ।
वलु सीया-सोएं मरइ विओएं एण मरन्तें हउँ मरमि' ॥१०॥

[१२] लक्ष्मणने जाकर देखा कि राम सीताके वियोगमें दुःखसे परिपूर्ण हो रहे हैं। धनुष तीर और तूणीर, सभी कुछ हाथ से छूटकर धरतीपर पड़ा है। वियोगके शोकसे आकुल राम, ऐसे ही म्लान शरीर हो रहे थे जैसे भग्नदन्त गज, छिन्नशाखा वृक्ष, फणरहित सर्प, वज्र पीड़ित पर्वत, राहुग्रस्त चन्द्र, और जल-रहित मेघ मलिन होता है। तुरन्त ही लक्ष्मणने रामसे पूछा—"अरे जटायु दिखाई नहीं देता, सीताके साथ वह कहाँ गया।" यह सुनकर रामने जो कुछ कहा, लक्ष्मणको वह किसी भी प्रकार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—"सीता वनमें नष्ट हो गई, मैं अब और कोई बात नहीं जानता" तथा जो अजेय पक्षिराज जटायु था उसका भी रणमें संहार हो गया—किसी दृढ़ बाहु और प्रचंडवीरने उसे धरतीपर पटक दिया ॥१-६॥

[१३] इस तरह राम और लक्ष्मणमें बातें हो ही रही थीं, तभी अपनी गिनी-चुनी सेना लेकर विराधित वहाँ आया। हाथोंमें अंजलि लेकर और पीठ तक माथा झुकाकर विद्याधर विराधितने रामको वैसे ही प्रणाम किया जैसे इन्द्र जन्मके समय जिनेन्द्रको प्रणाम करता है। निर्मल रामने भी उसे आशीर्वाद देकर लक्ष्मण से पूछा कि "यह कौन है जो तारोंसे वेष्टित चंद्रकी तरह, सेना सहित मुझे नमस्कार कर रहा है।" यह सुनकर लक्ष्मणने सद्भाव-पूर्वक कहा, "देव, मंदराचलकी तरह विशाल और दृढ़ हृदय चंद्रोदरका पुत्र विराधित है, मेरा पक्का मित्र और खरदूषणका कट्टर शत्रु है।" इस प्रकार उसकी प्रशंसा करके लक्ष्मणने तत्काल कहा,—"सीता हर ली गई हैं, उन्हें अब कहाँ खोजूँ। दैवके विमुख होनेपर क्या करूँ। राम सीताके वियोगमें मर रहे हैं। इनके मरनेपर मैं भी मर जाऊँगा" ॥१-१०॥

[१४]

दुवई

तं णिसुणेवि वयणु चिन्ताविउ चन्दोयरहों णन्दणो ।
विमणु विसण्ण-देहु गह-पीडिउ णं सारङ्ग-लञ्छणो ॥१॥
'जं जं किं पि वत्थु आसङ्कमि । तं तं णिप्फलु कहिँ अवडम्भमि ॥२॥
एय मुएवि कालु किह खेविउ । णिग्घणो वि वरि वड्डउ सेविउ ॥३॥
होउ म होउ तो वि ओलग्गमि । मुणि जिह जिण दिढु चलणहिँ लग्गमि॥४॥
विहि केत्तडउ कालु विणडेसइ । अवसें कं दिवसु वि सिय होसइ' ॥५॥
एम भणेवि वुत्तु णारायणु । 'कुढें लग्गेवउ केत्तिउ कारणु ॥६॥
ताव गवेसहुँ जाम णिहालिय' । लहु सण्णाह-भेरि अप्फालिय ॥७॥
साहणु दस-दिसेहिँ संचल्लिउ । आउ पडीवउ जय-सिरि-मेल्लिउ ॥८॥
जोइस-चक्कु णाइँ परियत्तउ । णं सिद्धत्तणु सिद्धि ण पत्तउ ॥९॥

घत्ता

विज्जाहर-साहणु स-धउ स-वाहणु थिउ हेट्ठामुहु विमण-मणु ।
हिम-वाएं दड्ढउ मयरन्दड्ढउ णं कोमाणउ कमल-वणु ॥१०॥

[१५]

दुवई

वुत्तु विराहिएण 'सुर-डामरें तिहुअण-जण-भयावणे ।
वणें णिवसहुँ ण होइ खर-दूसणें मुएँ जीवन्तें रावणे ॥१॥
सम्बुक्कु वहेंवि असि-रयणु लेवि । को जीवइ जम-मुहें पइसरेवि ॥२॥
जहिँ अच्छइ इन्दइ भाणुकण्णु । पञ्चामुहु मउ मारिच्चि अण्णु ॥३॥
घणवाहणु जहिँ अक्खय-कुमारु । सहसमइ विहीसणु दुण्णिवारु ॥४॥
हणुवन्तु णीलु णलु जम्बवन्तु । सुग्गीउ समर-भर-उव्वहन्तु ॥५॥
अङ्गङ्गय-गवय - गवक्ख जेत्थु । तहों बन्धु वहेंवि को वसइ एत्थु' ॥६॥

[१४] यह सुनकर राहुग्रस्त चंद्रकी तरह खिन्नशरीर और विमल चन्द्रोदरपुत्र विराधित चिंतित हो उठा। वह अपने मनमें सोचने लगा कि "मैं जिसकी आशंसा (शरण) में जाता हूँ वही असफल क्यों हो जाता है। इनके विना मैं अपने समयका यापन कैसे करूँगा? निर्धन होनेपर भी बड़ेकी सेवा करना अच्छा। हो न हो मैं इनकी ही सेवामें रहूँगा। आखिर भाग्यकी विडम्बना कबतक रहेगी। एक न एक दिन अवश्य संपदा होगी।" यह विचारकर उसने लक्ष्मणसे कहा, "पीछा करना कौन बड़ी बात है, मैं तबतक सीतादेवीको खोज करता हूँ, कि जबतक वह मिल न जाय।" यह कहकर उसने तुरन्त भेरी बजवा दी। दशों दिशाओं में सेना इस प्रकार चल पड़ी मानो विजय-लक्ष्मी ही लौट रही हो या फिर ज्योतिषचक्र ही घूम रहा हो या सिद्धको सिद्धि प्राप्त हो रही हो। किंतु (प्रयत्न करनेके अनंतर) विद्याधर सेना ध्वज और वाहनों सहित अपना मुख नीचा करके ऐसे रह गई मानो हिम-वातसे आहत, म्लान और परागविहीन कमलिनीवन हो ॥१–१०॥

[१५] तदनन्तर विराधितने आकर रामसे कहा, "खरदूषण के मारे जानेके अनंतर रावणके जीवित हुए, देवभीषण और त्रिभुवनके जनोंके लिए भयंकर इस वनमें रहना ठीक नहीं। शम्बूकका वधकर सूर्यहास उत्तम खड्गको लेकर एवं (इस प्रकार) कालके मुखमें प्रवेशकर कौन (यहाँ) बच सकता है। जहाँ इन्द्रजीत भानुकर्ण पंचमुख मय और मारीच हैं। तथा जहाँ मेघ-वाहन अक्षयकुमार तथा सहस्रबुद्धि और दुर्निवार विभीषण विद्य-मान है। हनुमान नल नील जाम्बवंत तथा युद्धभार उठानेमें समर्थ सुग्रीव वर्तमान हैं, जहाँ अंग अंगद गवय और गवाक्ष हैं। वहाँ उसके बहनोईको मारकर कौन जीवित रह सकता है।" यह सुन-

वयणेण तेण लक्खणु विरुद्धु । गय-गन्धें णाइँ मइन्दु कुद्धु ॥७॥
'सुट्ठु वि रुट्ठेंहिँ मयङ्गमेहिँ । किं लब्भइ सीहु कुरङ्गमेहिँ ॥८॥
रोमग्गु वि वङ्कु ण होइ जेहिँ । किं णिसियर-सण्डेंहिँ गहणु तेहिँ ॥९॥

घत्ता

जे णरवइ अक्खिय रावण-पक्खिय ते वि रणङ्गणें णिट्ठवमि ।
छुडु दिन्तु णिरुत्तउ जुज्झु महन्तउ दूसण-पन्थें पट्ठवमि' ॥१०॥

[१६]

दुवई

भणइ पुणो वि एम विज्जाहरु 'अम्हेँ वि किं करेसहुँ ।
तमलङ्कार-णयरु पइसेप्पिणु जाणइ तहिँ गवेसहुँ' ॥१॥
बलु वयणेण तेण, सहुँ साहणेण, संचल्लिउ ।
णाइँ महासमुद्दु, जलयर-रउद्दु, उत्थल्लिउ ॥२॥
दिण्णाणन्द-भेरि, पडिवक्ख-खेरि, खर-वज्जिय ।
णं मयरहर-वेल, कल्लोलबोल, गलगज्जिय ॥३॥
उब्भिय कणय-दण्ड, धुव्वन्त धवल, धुअ-धयवड ।
रसमसकसमसन्त-, तडतडयडन्त-, कर गय-घड ॥४॥
कत्थइ खिलिहिलन्त, हय हिलिहिलन्त, णीसरिया ।
चञ्चल-चडुल-चवल, चलवलय पवल, पक्खरिया ॥५॥
कत्थइ पहेँ पयट्ट, दुग्घोट्ट-थट्ट, मय-भरिया ।
सिरेँ गुमुगुमुगुमन्त, -चुमुचुमुचुमन्त,-चच्चरिया ॥६॥
चन्दण - बल-परिमलामोय-सेय - किय-कद्दमेँ ।
रह-खुप्पन्त-चक्क - वित्थक्क-छइय - भड-मद्दमेँ ॥७॥
एम पयट्टु सिमिरु, णं बहल-तिमिरु, उद्धाइउ ।
तमलङ्कार-णयरु णिमिसन्तरेण संपाइउ ॥८॥
पय-विरहेण रामु, अइ-खाम-खामु, झीणङ्गउ ।
विय-मग्गेण तेण, कन्तहेँ तणेण, णं लग्गउ ॥९॥

घत्ता

दहवयणु स-सोयउ पाणहँ भीयउ मच्छुडु एत्तहेँ णट्ठु खलु ।
मेइणि विदारेँवि मग्गु समारेँवि णं पायालेँ पइट्ठु बलु ॥१०॥

कर लक्ष्मण मदांध गजकी तरह एकदम भड़क उठा। वह बोला, "क्यों क्या सिंह रुष्ट गजों या मृगोंसे अवरुद्ध हो सकता है, जिसका कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता भला उसे निशाचर-समूह क्या खाक पकड़ सकता है। तुमने रावणके पक्षके जिन राजाओंका उल्लेख किया है मैं उन्हें भी युद्धमें नष्ट कर दूँगा।" ॥१–१०॥

[१६] इसपर विद्याधर विराधितने निवेदन किया, 'यहाँ रहकर भी आखिरकार हम करेंगे क्या ? चलो तमलंकार नगरमें चलें, फिर सीताकी खोज की जाय।" उसके अनुरोध करनेपर राम और लक्ष्मण सेनाके साथ ऐसे चल पड़े मानो जलचरोंसे भरा हुआ महासमुद्र ही उछल पड़ा हो। शत्रुको क्षुब्ध करनेवाली आनन्दकी भेरी वज उठी। मानो समुद्र ही अपनी तरंग-ध्वनि से गरज पड़ा हो। गजघटाएँ कसमसाती रसमसाती और तड़-तड़ करती हुई निकल पड़ी। बख्तर पहने, अपनी चंचल गर्दन झुकाये और अश्व हिनहिनाते और खलवलाते वलयसे चले जा रहे थे। उनके सिरोंपर गुनगुनाते हुए भ्रमर घूम रहे थे। इस प्रकार घनी-भूत तमकी तरह उस सेनाने प्रस्थान किया। तब, प्रचुर चंदनरेणु और प्रस्वेदसे मार्ग पंकिल हो उठा। गड़े हुए रथ चक्रोंसे निरुद्ध सैनिकोंमें रेल-पेल मची हुई थी। सेना उड़कर पलभरमें तम-लंकार नगर जा पहुँची। प्रिया-विरहमें अत्यंत क्षीणाङ्ग राम ऐसे लगते थे मानो वे सीताके ही मार्गका अनुगमन कर रहे हों। धरती विदीर्ण करती हुई सेना, उस पाताल नगरमें मानो यह सोचती हुई घुस रही थी कि कहीं दुष्ट रावण अपने प्राणोंसे भयभीत, सीतो देवीके साथ यहीं तो नहीं आया ॥१–१०॥

[१७]

दुवई

ताव पचण्डु वीरु खर-दूसण-णन्दणु वणिवारणो ।
सो सण्णहँ वि सुण्डु सुर-वीरेंं परिट्ठिउ गहिय-पहरणो ॥१॥
जं थक्कु सुण्डु रणमुहेँ रउद्दु । उद्धाइउ राहव - बल-समुद्दु ॥२॥
णवर कल्यलारावु उट्ठिउ बेहिँ वि सेण्णेहिँ अभिडन्तएहिँ
जायं च जुज्झं महा - गोन्दलाम-वोरालं सुह-दुद्धारवं ॥३॥
विरसिय-सय-सङ्ख - कंसाल - कोलाहलं काहलं-डक्क-ढक्का-
मइल्लोल - वज्जन्तमम्मीस - भेरी - झल्लरी - डुडुक्काउलं ॥४॥
पसाहिय-गय-गिल्ल - कल्लोल - गज्जन्त-गम्भीर-भीसावणोरालि-
मेल्लन्त-दप्पन्त, वण्णा-उभं पाडियं मेट्ठ-पाइक्कयं भिण्ण-वच्छत्थलं ॥५॥
सललिय-रह - चक्क - खोणी-पलुम्पन्त-लुम्पन्त-चिन्धावलि-हेल-
दप्पुब्भडं-चामरच्छोह-विच्छिन्नमाणं स-चोहं महामिन्दणावीढयं ॥६॥
हिलिहिलिय - तुरङ्गसुरङ्गम - कण्णं चलं चञ्चलङ्गं महा-तुङ्गयं
दुद्धरं दुण्णिरिक्खं महीं - मण्डलावत्त-देन्तं दयाणं बलं ॥७॥
हुलि-हल-मुसलग्ग-कोन्तेहिँ अद्धेन्दु-सूलेहिँ वावल्ल-भल्लेहिँ णाराय-
सल्लेहिँ भिण्णं करालं ललन्तन्त-मालं अ-सीसं कवन्धं पणच्चावियं ॥८॥

घत्ता

तहिँ सुन्द-विराहिय समर-जसाहिय अवरोप्परु वड्ढन्त-कलि ।
पहरन्ति महा-रणेँ मेइणि-कारणेँ णं भरहेसर-बाहुबलि ॥९॥

[१८]

दुवई

चन्दणहाएँ ताव जुज्झन्तु णिवारिउ णियय-णन्दणो ।
'दीसइ ओहु ओहु खर - दूसण-सन्दहणार-मद्दणो ॥१॥
उब्भेवउ सुन्द ण होइ कज्जु । जीवन्तहुँ होसइ अण्णु रज्जु ॥२॥
वरि गम्पिणु सुर-पञ्चाणणासु । पइसरहुँ सरणु दसाणणासु ॥३॥
ओसरिउ सुण्डु वयणेण तेण । गउ लङ्क पराइउ तक्खणेण ॥४॥

[१७] सेना आती हुई देखकर खर-दूषणका वीर पुत्र प्रचंड सुण्ड उसका निवारण करनेके लिए तैयारी करने लगा। हाथोंमें अस्त्र लेकर वह आकर द्वारपर जम गया। रणमुखमें अत्यन्त भयङ्कर सुण्डके स्थित होते ही रामका सेना-समुद्र उबल पड़ा। दोनों सेनाओंमें कल-कल ध्वनि होने लगी। अत्यन्त भयङ्कर तथा उत्कट हाहारव मच गया। सैकड़ों शङ्ख, कंसाल, काहल, टहनी, झल्लरी, मृदङ्ग आदि वाद्यों, मम्भीस, भेरी, सरुञ्ज, और हुडुक्का कोलाहल पूरित हो उठा। सज्जित मद झरते और गरजते हुए गजोंके घण्टोंसे भीषण रव उठा। वक्षस्थलोंमें आहत होकर समर्थ पैदल सेना धराशायी होने लगी। सुन्दर रथचक्रोंकी कतारें धरतीमें धँसने लगी। टूटती हुई पताकाओंके स्वर्णिम दण्डों और चामरोंकी कान्ति चमक उठी। रथकी पीठके साथ योधा गिरने लगे। चपलाङ्ग महान्, अजेय, दुर्दर्शनीय, हिनहिनाते और कान खड़े किये हुए अश्व धरती पर मंडलावर्त बना रहे थे। हलि, हल, मूसलाग्र, भाला, अर्धचन्द्र, शूल, वावल्ल, भाला, वाण और शल्योंसे भिन्न कराल मस्तकहीन धड़ धरतीपर अपनी मालाओंको हिलाते हुए नाचने लगे। इस प्रकार उस तुमुल युद्धमें यशस्वी विराधित और सुण्डके बीच घमासान भिड़न्त हुई। ठीक उसी तरह, जिस तरह धरतीके लिए, भरत और बाहुबलिके बीच हुई थी ॥१-६॥

[१८] परन्तु चन्द्रनखा (खरकी पत्नी) ने बीचमें ही अपने पुत्रको यह कहकर युद्धसे विरत कर दिया कि शम्बूक और खर-दूषणका हत्यारा लक्ष्मण दिखाई दे रहा है, इस प्रकार लड़नेसे काम नहीं चलेगा। जीवित रहने पर तुम्हें दूसरा राज्य मिल जायगा। अच्छा हो तुम सुरसंहारक रावणके पास जाकर गुहार करो। माँके कहने पर सुण्ड युद्धसे विमुख हो गया। उसने तुरन्त

एत्थु स-विराहिउ पइट्ठु रामु । णं कामिणि-जणु मोहन्तु कामु ॥५॥
खर-दूसण - मन्दिरें पइसरेवि । चन्दोयर - पुत्तहों रज्जु देवि ॥६॥
साहारु ण बन्धइ कहि मि रामु । वइदेहि-विओएं खामु खामु ॥७॥
रह-तिक्क - चउक्केंहिं परिभमन्तु । दोहिय - विहार - मढ परिहरन्तु ॥८॥
गउ ताम जाम जिण-भवणु दिट्ठु । परिअञ्चेवि अब्भन्तरें पइट्ठु ॥९॥

घत्ता

जिणवरु णिज्झाएँ वि चित्तें झाएँवि जाइ णिरारिउ विउलमइ ।
आहुट्टेहिं भासेंहिं थोत्त-सहासेंहिं थुणइ स यं भु वणाहिवइ ॥१०॥



[४१. एक्कचालीसमो संधि]

खर-दूसण गिलेंवि चन्दणहिहें तित्ति ण जाइय ।
णं खय-काल-छुह रावणहों पडीवी धाइय ॥

[१]

सम्बुकुमार-वीरें अत्थन्तएँ । खर-दूसण-संगामें समत्तएँ ॥१॥
दूरोसारिएँ सुन्द-महब्बलें । तमलङ्कार-णयरु गएँ हरि-बलें ॥२॥
एत्थएँ असुर-मल्लें सुर-डामरें । लङ्काहिवें बहु-लद्ध-महावरें ॥३॥
पर-बल - बल - पवाणाहिन्दोलणें । वइरि - समुद्द - रउद्द - विरोलणें ॥४॥
मुक्कङ्कुस- मयगल - गलथल्लणें । दाण-रणङ्गणें हत्थुत्थल्लणें ॥५॥
विहडिय-भड-थड-किय-कडमद्दणें । कामिणि- जण-मण - णयणाणन्दणें ॥६॥
सीयएँ सहु सुरवर-संतावणें । छुडु छुडु लङ्क पइट्ठएँ रावणें ॥७॥
तहिं अवसरें चन्दणहि पराइय । णिवडिय कम-कमलेंहिं दुह-वाइय ॥८॥

ही लङ्काके लिए प्रस्थान किया। इधर तमलंकार नगरीमें रामने विराधितके साथ वैसे ही प्रवेश किया जैसे काम कामिनीजनमें प्रवेश करता है। खर-दूषणके भवनमें जाकर विराधितने राजपाट सौंप दिया। परन्तु राम किसी भी प्रकार अपनेको सान्त्वना नहीं दे पा रहे थे। सीताके वियोगमें वह क्षीणतम हो रहे थे। राज्य त्रिपथ और चतुष्पथोंमें भ्रमण करते हुए वह विशाल विहार और मठोंको छोड़ते हुए एक जिन-मन्दिरमें पहुँचे। तीन बार उसकी प्रदक्षिणा देकर उन्होंने भीतर प्रवेश किया। वहाँ जिनवरका दर्शन और ध्यानकर विमल बुद्धि राम एकदम निराकुल हो गये। अपभ्रष्ट (अपभ्रंश) भाषाओंमें हजारों श्लोकोंसे वनपति रामने स्वयं जिनकी स्तुति की ॥१–६॥



इकतालीसवीं सन्धि

खरदूषणके मारे जानेपर भी चन्द्रनखाकी तृप्ति नहीं हुई। क्षयकालकी भूखकी तरह, वह रावणके पास दौड़ी गई।

[१] उधर वीर शम्बूकका अन्त हो चुका था खरदूषण भी युद्धमें समाप्तप्राय थे। वीर सुण्डकी सेना हट चुकी थी। राम और लक्ष्मण ससैन्य तमलङ्कार नगरमें प्रवेश कर चुके थे। इधर देव-भयंकर, निशाचर, वीर रावण भी अनेक वर प्राप्त कर चुका था। वह अत्यन्त ही समर्थ था, सेनारूपी पवनको आन्दोलित करनेमें, भयंकर शत्रु-समुद्रके मंथनमें, निरंकुश-गजोंको वश करनेमें, दान-युद्धमें, मुक्तदान करनेमें, विघटित भटसमूहको कुचलनेमें, कामिनियोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेमें। सुरपीड़क उसने सीताके साथ जिस समय लंकामें प्रवेश किया, उसी समय दुखकी

घत्ता

सम्बुकुमारु मुउ खर-दूसण जम-पहँ लाइय ।
पइँ जीवन्तएँ ण एही अवत्थ हउँ पाइय' ॥१॥

[२]

तं चन्दणहिहेँ वयणु दयावणु । णिसुणेँवि थिउ हेट्ठामुहु रावणु ॥१॥
णं मयलञ्छणु णिप्पहु जायउ । गिरि व दवग्गि-दड्ढु विच्छायउ ॥२॥
णं मुणिवरु चारित्त-विभट्टउ । भविउ व भव-संसारहों तट्टउ ॥३॥
वाह-भरन्त-णयणु मुह-कायरु । गहेँण गहिउ णं हूउ दिवायरु ॥४॥
दुक्खु दुक्खु दुक्खेणामेल्लिउ । सयण-सणेहु सरन्तु पवोल्लिउ ॥५॥
'घाइउ जेण सम्बु खरु दूसणु । तं पट्टवमि अज्जु जमसासणु ॥६॥
अहवइ एण काइँ माहप्पेँ । को ण मरइ अपूरेँ मप्पेँ ॥७॥
धीरी होहि पमायहि सोओ । कासु ण जम्मण-मरण-विओओ ॥८॥

घत्ता

को वि ण वज्जमउ जाएं जीवेँ मरिएवउ ।
अम्हेँहिँ तुम्हेँहि मि खर-दूसण-पहेँ जाएवउ ॥९॥

[३]

धीरेँवि णियय बहिणि सिय-माणणु । रयणिहिँ गउ सोवणएँ दसाणणु ॥१॥
वर-पल्लङ्कें चडिउ लङ्केसरु । णं गिरि-सिहरेँ मइन्दु स-केसरु ॥२॥
णं विसहरु णीसासु मुअन्तउ । णं सज्जणु खल-खेइज्जन्तउ ॥३॥
सीया-मोहेँ मोहिउ रावणु । गायइ वायइ पढइ सुहावणु ॥४॥
णच्चइ हसइ वियारेँहिँ भज्जइ । णिय-भूअहुँ जि पडीवउ लज्जइ ॥५॥
दंसण - णाण - चरित्त - विरोहउ । इह-लोयहों पर-लोयहों दोहउ ॥६॥

मारी चन्द्रनखा भी उसके निकट पहुँची। चरणोंमें गिरकर वह बोली, "शम्बूक कुमार मारा गया, खरदूषणने भी यमका रास्ता नाप लिया है। आपके जीते जी मेरी यह दशा" ॥१-६॥

[२] चन्द्रनखाके दीन हीन वचनोंको सुनकर, दशानन शीश झुकाकर ऐसे रह गया मानो चन्द्र ही कान्तिसे हीन हो उठा हो, या पर्वत दावानलमें जलकर प्रभाहीन हो उठा हो। या मुनि ही चरित्रसे भ्रष्ट हो गया हो, या भव्य जीव संसारसे त्रस्त हो उठा हो। उसकी आँखोंसे अश्रु प्रवाह निरन्तर जारी था। उसका मुख एकदम कातर हो उठा मानो सूर्य ही राहुसे ग्रस्त हो गया हो। बड़े कष्टसे किसी प्रकार अपने दुखको दूरकर, दशानन स्वजनके स्नेह स्वरमें बोला, "कुमार शम्बुक और खरदूषणका जिसने वध किया हैं मैं उसे आज ही यमके शासनमें भेज दूँगा। अथवा इस माहात्म्यसे क्या। (अपूरे माप ??) असमयमें कौन नहीं मरता। धीरज धारण करो। शोक छोड़ो। जन्म जरा मरण और वियोग किसे नहीं होता, वज्रसे कोई नहीं बनता। जो जन्मा है वह मरेगा अवश्य। हम तुम भी (एक दिन) आखिर खर-दूषणके पदपर जायँगे ॥१-६॥

[३] लक्ष्मीका अभिमानी रावण अपनी बहिनको समझा बुझाकर रातको सोनेके लिए गया। वह लंकेश्वर उत्तम पलंगपर चढ़ा मानो अयाल सहित मृगेन्द्र ही गिरिशिखर पर चढ़ा हो, मानो विषधर ही निश्वास छोड़ रहा हो, या दुष्टजनोंसे सताया हुआ सज्जन ही हो। सीताके मोहमें विह्वल होकर रावण कभी गाता, कभी बजाता, कभी सुहावने ढंगसे पढ़ने लगता, नाचता और हँसता। इस प्रकार वह विकारग्रस्त हो रहा था। इन्द्रियसुख-की आकांक्षामे वह उल्टा लज्जित हो रहा था। दर्शन ज्ञान और

भलण-परव्वसु एउ ण जाणइ। जिह संघारु करेसइ जाणइ ॥७॥
अच्छइ मयण-सरेँहिँ जज्जरियउ। खर-दूसण-णाउ मि वीसरियउ ॥८॥

घत्ता

चिन्तइ दहवयणु 'धणु धण्णु सुवण्णु समत्थउ।
रज्जु वि जीविउ वि विणु सीयएँ सव्वु णिरत्थउ' ॥९॥

[४]

तहिँ अवसरेँ आइय मन्दोवरि। सीहहोँ पासु व सीह-किसोयरि ॥१॥
वर-गणियारि व लीला-गामिणि। पियमाहविय व महुरालाविणि ॥२॥
सारङ्गि व विप्फारिय-णयणी। सत्तावीसंजोयण-वयणी ॥३॥
कलहंसि व थिर-मन्थर-गमणी। लच्छि व तिय-रूवेँ जूरवणी ॥४॥
अइ पोमाणिहेँ अणुहरमाणी। जिह सा तिह एह वि पउराणी ॥५॥
जिह सा तिह एह वि बहु-जाणी। जिह सा तिह एह वि बहु-माणी ॥६॥
जिह सा तिह एह वि सुमणोहर। जिह सा तिह एह वि पिय-सुन्दर ॥७॥
जिह सा तिह एह वि जिण-सासणेँ। जिह सा तिह एह वि ण कु-सासणेँ ॥८॥

घत्ता

किं बहु जम्पिएँण उवमिज्जइ काहेँ किसोयरि।
णिय-पडिछन्दएँण थिय सइँ जेँ णाइँ मन्दोयरि ॥९॥

[५]

तहिँ पल्लङ्कें चडेँवि रज्जेसरि। पभणिय लङ्कापुर - परमेसरि ॥१॥
'अहोँ दहमुह दहवयण दसाणण। अहोँ दससिर दसास सिय-माणण ॥२॥
अहोँ तइलोक्क - चक्क-चूडामणि। वइरि - महीहर - खर-वज्जासणि ॥३॥
वीसपाणि णिसियर-णरकेसरि। सुर-मिग-वारण दारण-अरि-करि ॥४॥
पर - णरवर - पायार-पलोट्टण। दुद्दम - दाणव - बल - दलवट्टण ॥५॥
जइयहुँ भिडिउ रणङ्गणे इन्दहोँ। जाउ कुल-क्खउ सज्जण-विन्दहोँ ॥६॥
तहिँ वि कालेँ,पइँ दुक्खु ण णायउ। जिह खर-दूसण-मरणेँ जायउ' ॥७॥

चारित्रका विरोधी इहलोक और परलोकमें दुर्भाग्यजनक और कामके अधीन वह यह नहीं जान पा रहा था कि जानकी उसका कितना विनाश करेगी। कामके बाणोंसे इतना जर्जर हो बैठा था कि खर और दूषणका नाम तक भूल गया। रावण सोचता,—"धन-धान्य, सोना, सामर्थ्य, राज्य और यहाँ तक जीवन भी, सीताके विना सब कुछ व्यर्थ है" ॥१–६॥

[४] इसी अवसरपर उसके पास मन्दोदरी आई मानो सिंह के निकट सिंहनी आई हो। वह वन-हथिनीकी तरह लीला-पूर्वक चलनेवाली थी, प्रिय कोयलकी तरह मधुर आलाप करनेवाली थी, हिरनीकी तरह विस्फारित नेत्र थी। चन्द्रकी तरह मुखवाली थी, कल-हंसिनीकी तरह मन्थर गतिवाली, अपने स्त्रीरूपसे लक्ष्मीकी तरह सतानेवाली, इन्द्राणीकी तरह अभिमानिनी और उसीकी तरह यह पटरानी थी। जैसे वह (इन्द्राणी) वैसे यह भी बहुपण्डिता थी। जैसे वह वैसे यह भी सुमनोहर थी। जैसे वह, वैसे ही यह भी अपने पतिकी बहुत प्रिय थी। जैसे वह वैसे ही यह जिन-शासनको मानती थी। जैसे वह, वैसे यह भी कुशासनमें नहीं रहती थी। अधिक कहनेसे क्या उस सुन्दरीकी उपमा किससे दी जाय, अपने प्रति-उपमान के समान वही स्वयं थी ॥१–६॥

[५] पलङ्गपर चढ़कर लङ्का परमेश्वरी राजेश्वरीने कहा— "अहो दशमुख, दशवदन, दशानन, दशशिर, दशास्य, लक्ष्मीके मानी, अहो, त्रिलोकचक्रचूड़ामणि, शत्रुरूपी कुलपर्वतोंके लिए वज्र, बीस हाथवाले निशाचरराज सिंह, सुरमृगगज, शत्रुरूपी गजको नष्ट करनेवाले, शत्रुमनुष्योंकी प्राचीरको तोड़नेवाले, दुर्दम दानव सेनाको चूरनेवाले, जब तुम इन्द्रसे लड़े थे उस समय अपने कुल का कितना माथा ऊँचा हुआ था। परन्तु उस समय तुम्हें उतना

भणइ पडीवउ णिसियर-णाहो । 'सुन्दरि जइ ण करइ अवराहो ॥८॥

घत्ता

तो हउँ कहमि तउ णउ खर-दूषण-दुक्खुऽच्छइ ।
एत्तिउ डाहु पर जं मइँ वइदेहि ण इच्छइ' ॥ ९ ॥

[६]

तं णिसुणेवि वयणु ससिवयणएँ । पुणु वि हसेवि वुत्तु मिगणयणएँ ॥१॥
'अहों दहगीव जीव-संतावण । एउ अजुत्तु वुत्तु पइँ रावण ॥२॥
किं जगेँ अयस-पडहु अप्फालहि । उभय विसुद्ध वंस किं मइलहि ॥३॥
किं णारइयहोँ णरएँ ण वीहहि । पर-धणु पर-कलत्तु जं ईहहि ॥४॥
जिणवर-सासणेँ पञ्च विरुद्धइँ । दुग्गइ जाइ णिन्ति अविसुद्धइँ ॥५॥
पहिलउ वहु छज्जीव-णिकायहुँ । वीयउ गम्मइ मिच्छावायहुँ ॥६॥
तइयउ जं पर-दव्वु लइज्जइ । चउथउ पर-कलत्तु सेविज्जइ ॥७॥
पञ्चमु णउ पमाणु घरवारहोँ । आयहिँ गम्मइ भव-संसारहोँ ॥८॥

घत्ता

पर-लोएँ वि ण सुहु इह-लोएँ वि अयस-पडाइय ।
सुन्दर होइ ण तिय एँय-वेसेँ जमउरि आइय' ॥९॥

[७]

पुणु पुणु पिहुल-णियम्ब किसोयरि । भणइ हिमयत्तणेण मन्दोयरि ॥१॥
'जं सुहु कालकूडु विसु खन्तहुँ । जं सुहु पलयाणलु पइसन्तहुँ ॥२॥
जं सुहु भव-संसारेँ भमन्तहुँ । जं सुहु णारइयहुँ णिवसन्तहुँ ॥३॥
जं सुहु जम-सासणु पेच्छन्तहुँ । जं सुहु असि-पञ्जरेँ अच्छन्तहुँ ॥४॥
जं सुहु पलयाणल-मुह-कन्दरेँ । जं सुहु पञ्चाणण - दाढन्तरेँ ॥५॥
जं सुहु फणि-माणिक्कु खुडन्तहुँ । तं सुहु एह णारि भुञ्जन्तहुँ ॥६॥
जाणन्तो वि तो वि जइ वञ्छहि । तो कज्जेण केण मइँ पुच्छहि ॥७॥

दुख नहीं हुआ था जितना खर और दूपणके वियोगमें अभी हुआ। तव निशाचरनाथने कहा—"हे सुन्दरी, यदि अपराध न माना जाय तो मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि मुझे खर-दूपणके मरणका कुछ भी दुख नहीं है, दुख केवल यही है कि सीता मुझे नहीं चाहती" ॥१-६॥

[६] यह वचन सुनकर शशिवदना मृगनयनी मन्दोदरीने हँसकर कहा—"अरे दशग्रीव, जीव-संतापकारी रावण, यह तुमने अत्यन्त अनुपयुक्त कहा। क्यों दुनियामें अपने अयशका डङ्का पिटवाते हो, दोनों ही विशुद्ध कुलोंको क्यों कलङ्कित करते हो, नरकके नारकियोंसे क्या नहीं डरते, जो तुम परस्त्री और परधन की इच्छा करते हो। जिनवर शासनमें पाँच चीजें विरुद्ध हैं। ये दुर्गतिमें ले जानेवाली और नित्यरूपसे अशुद्ध हैं। पहले छह निकायों के जीवोंका वध, दूसरे मिथ्यात्ववाद लगाना, तीसरे पर-द्रव्यका अपहरण, चौथे परस्त्री सेवन करना और पाँचवें अपने गृहद्वार (गृहस्थी) का परिमाण न करना। इनसे भव—संसारमें भटकना पड़ता है, परलोकमें तो अयश फैलता ही है। स्त्री सुन्दर नहीं होती, इसके रूपमें मानो यमपुरी ही आई है" ॥१-६॥

[७] पृथुलनितम्बा कृशोदरी मन्दोदरी बार-बार हृदयसे यही कहती—"कालकूट विप खानेमें जो सुख है, जो सुख प्रलय की आगमें प्रवेश करनेमें है, जो सुख भव-सागरमें घूमनेमें है, जो सुख नारकियोंके बीच निवास करनेमें है, जो सुख यमका शासन देखनेमें है, जो सुख, तलवारकी धारपर बैठनेमें है, जो सुख प्रलयानल मुख—गुहामें प्रवेश करनेमें है, जो सुख सिंहकी दंष्ट्राके नीचे आनेमें है, जो सुख शेपनागकी फणमणि तोड़नेमें है, वही सुख इस नारीका भोग करनेमें है, जानते हुए भी यदि तुम इसे

तउ पासिउ किं कोइ वि वलियउ । जेण पुरन्दरो वि पडिखलियउ ॥८॥

घत्ता

जं जसु आवडइ तहों तं अणुराउ ण भज्जइ ।
जइ वि असुन्दरउ जं पहु करेइ तं छज्जइ' ॥९॥

[८]

तं णिसुणेवि वयणु दहवयणें । पभणिय णारि विरिञ्चिय-णयणें ॥१॥
'जइयहुँ गयउ आसि अचलिन्दहों । वन्दण-हत्तिएँ परम-जिणिन्दहों ॥२॥
तइहु दिट्ठु एक्कु मइँ मुणिवरु । णाउँ अणन्तवीरु परमेसरु ॥३॥
तासु पासें वउ लइउ ण भञ्जमि । मण्डएँ पर - कलत्तु णउ भुञ्जमि ॥४॥
अहवइ एण काइँ मन्दोअरि । जइ णन्दन्ति णियहि लङ्काउरि ॥५॥
जइ मग्गहि धणु धण्णु सुवण्णउ । राउलु रिद्धि - विद्धि-संपण्णउ ॥६॥
जइ आरुहहि तुरङ्ग-गइन्देंहिँ । जइ वन्दिज्जइ वन्दिण-वन्देंहिँ ॥७॥
जइ मग्गहि णिक्कण्टउ रज्जु । जइं किर मइँ वि जियन्तेंण कज्जु ॥८॥

घत्ता

सयलन्तेउरहों जइ इच्छहि णउ रण्डत्तणु ।
तो वरि जाणइहेँ मन्दोयरि करें दूअत्तणु' ॥९॥

[९]

तं णिसुणेंवि वयणु दहवयणहों । पभणिय मन्दोयरि पुरि मयणहों ॥१॥
'हो हो सव्वु लोउ जगें दूहउ । पइँ मेल्लेविणु अण्णु ण सूहउ ॥२॥
सुरकरि-अहिसिञ्चिय-सिय-सेविहेँ । जो आएसु देहि महएविहेँ ॥३॥
एव वि करमि तुम्हारउ वुत्तउ । पहु-छन्देण अजुत्तु वि जुत्तउ' ॥४॥
ए आलाव परोप्परु जावेंहिँ । रयणिहेँ चउ पहरा हय तावेंहिँ ॥५॥
अरुणुग्गमें अखन्त-किसोयरि । सीयहेँ दूई गय मन्दोयरि ॥६॥
सहुँ अन्तेउरेण उद्धूसिय । गणियारि व गणियारि-विहूसिय ॥७॥

चाहते हो, तो फिर मुझसे क्यों पूछते हो, तुमसे अधिक बलवान् और कौन है। तुमने तो इन्द्रप्रभको परास्त कर दिया। जिसपर जो आ पड़ता है उससे उसका प्रेम नष्ट नहीं होता ? यद्यपि यह अशोभन है फिर भी आप जो करेंगे वह शोभा ही देगा।

[८] यह वचन सुनकर विशालनयन रावणने अपनी पत्नीसे कहा, "जब मैं जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए मन्दराचल पर्वतपर गया हुआ था तो वहाँ अनन्तवीर्य नामक मुनिसे मेरी भेंट हुई थी, उनसे मैंने यह प्रतिज्ञा ली थी कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी उसका मैं बलपूर्वक भोग नहीं करूँगा। अथवा इससे क्या ? हे मन्दोदरी, यदि तुम इस लङ्का-नगरीमें आनन्द करना चाहती हो, यदि धन-धान्य सुवर्णकी इच्छा करती हो, यदि ऋद्धि और वृद्धिसे पूर्ण राज्यका भोग करना चाहती हो, यदि तुरङ्ग और गजोंपर बैठना चाहती हो, यदि वन्दीजनोंसे अपनी स्तुति करवाना चाहती हो, यदि निष्कंटक राज्य चाहती हो, यदि मुझे भी जीवित देखना चाहती हो, और यदि यह भी चाहती हो कि समूचे अन्तःपुरका रड़ापा न आये तो जानकीके पास जाकर मेरा दौत्य-कार्य कर दो" ॥१-६॥

[६] यह वचन सुनकर, कामकी नगरीके समान मन्दोदरीने कहा, "हो हो, सब लोक दुखद है, तुम्हे छोड़कर मुझे अन्य कुछ भी सुभग नहीं है, ऐरावत द्वारा अभिषिक्त, श्रीसे सेवित, इस महादेवीको आप जो भी आज्ञा देंगे, वह मैं अवश्य करूँगी। क्योंकि पतिके स्वार्थके लिए अनुचित भी उचित होता है। इस प्रकारकी बातें होते-होते रातके चारों पहर बीत गये। सूर्योदय होते ही मन्दोदरी सीतादेवीके निकट दूती बनकर गई। अपने अन्तःपुरके साथ वह वैसी ही विभूषित थी जैसे हथिनियोंसे

वणु गिव्वाणरवणु संपाइय । राहव-घरिणि तेत्थु णिज्झाइय ॥८॥

घत्ता

वे वि मणोहरिउ रावण-रामहुँ पिय-णारिउ ।
दाहिण-उत्तरेंण णं दिस-गइन्द-गणियारिउ ॥९॥

[१०]

राम-घरिणि जं दिट्ठ किसोयरि । हरिसिय णिय-मणेण मन्दोयरि ॥१॥
'अहिणव-णारि-रयणु अवइण्णउ । एउ ण जाणहुँ कहिँ उप्पण्णउ ॥२॥
सुरहु मि कामुक्कोयण-गारउ । मुणि-मण-मोहणु णयण-पियारउ ॥३॥
साहु साहु णिउणोऽसि पयावइ । तुह विण्णाण-सत्ति को पावइ ॥४॥
अह किं वित्थरेण वहु-वोल्लएँ । सइँ कामो वि पडइ कामिल्लएँ ॥५॥
कवणु गहणु तो लङ्का-राएं' । एम पसंसेंवि मणें अणुराएं ॥६॥
पिय-वयणेहिँ दसाणण-पत्तिएँ । वुच्चइ राम-घरिणि विहसन्तिएँ ॥७॥
'किं वहु-जम्पिएण परमेसरि । जीविउ एक्कु सहलु तउ सुन्दरि ॥८॥

घत्ता

सुरवर-डमर-करु तइलोक्क-चक्क-संतावणु ।
काइँ ण अत्थि तउ जहँ आणवडिच्छउ रावणु' ॥९॥

[११]

इन्दइ - भाणुकण्ण - घणवाहण । अक्खय-मय-मारिच्च - विहीसण ॥१॥
जं चलणेहिँ थिवहि आरूसेंवि । तं सीसेण लयन्ति असेस वि ॥२॥
अण्णु वि सयलु एउ अन्तेउरु । सालङ्कारु स-दोरु स-णेउरु ॥३॥
अट्ठारह सहास नर-विलयहुँ । णिच्च-पसाहिय-सोहिय - तिलयहुँ ॥४॥
आयहुँ सव्वहुँ तुहुँ परमेसरि । पेसावण्णु रज्जु करि सुन्दरि ॥५॥
रावणु मुएँ वि अण्णु को चङ्गउ । रावणु मुएँ वि कवणु तणु-अङ्गउ ॥६॥
रावणु मुएँ वि अण्णु को सूरउ । पर-वल-महणु कुलासा-पूरउ ॥७॥

विभूषित हथिनी होती है। वह नन्दन वनमें पहुँची। वहाँ उसे रामकी पत्नी सीतादेवी दिखाई दीं। उस अवसर पर राम और रावणकी सुन्दर पत्नियाँ ऐसी शोभित हो रहीं थीं मानो दक्षिण तथा उत्तरके दिग्गजोंकी हथिनियाँ ही हों ॥१-६॥

[१०] कृशोदरा रामकी पत्नी सीताको देखकर मंदोदरी मन ही मन खूब प्रसन्न हुई, वह सोचने लगी, "यह तो अद्भुत नारी-रत्न अवतीर्ण हुआ है। यह कहाँ उत्पन्न हुई, यह तो देवोंको भी काम उत्पन्न करनेवाली, मुनियोंका मन मोहित करनेवाली अत्यंत नयनप्रिय है। साधु, साधु, विधाता! तुम बहुत चतुर हो, तुम्हारी विज्ञानकलाको कौन पा सकता है। अथवा बहुत कहनेसे क्या, इसे देखकर तो साक्षात् काम भी कामासक्त हो सकता है। रावण द्वारा इसका ग्रहण कैसे हो। मन ही मन अनुरागसे इस तरह उनकी प्रशंसा कर, रावणकी पत्नी मन्दोदरीने हँसकर रामकी पत्नी सीतादेवीसे प्रिय वचनोंमें कहा, "हे परमेश्वरी, बहुत कहनेसे क्या, एक तुम्हारा ही जीवन (दुनियामें) सफल है। तुम्हारा (अब) क्या नहीं है जो सुरवरोंको भ्रम उत्पन्न करनेवाला, त्रिलोक चक्र-संतापक, रावण भी तुम्हारा आज्ञाकारी है ॥१-६॥

[११] इन्द्रजीत, भानुकर्ण, घनवाहन, अक्षय, मय, मारीच और विभीषण, जिस किसीको अपने पैरोंसे ठुकरा देते हैं, वे ही सब रावणको अपने सिर-माथे लेते हैं। और भी यह समस्त; अलंकार, डोर और नूपुरोंसे सहित, अन्तःपुर है तथा उत्तम चूड़ियों और नित्य सजाये गये तिलकोंवाली अठारह हजार सुन्दर स्त्रियाँ हैं। भाग्यशील ये सब तुम्हारी हैं, तुम इनपर शासन करो, (अच्छा तुम्हीं बताओ) रावणको छोड़कर, अन्य कौन, शत्रुसेनाका संहारक, अपने कुलका आशापूर्वक है। रावणके

रावणु मुएँ वि अण्णु को वलियउ । सुरवर-णियरु जेण पडिखलियउ ॥८॥
रावणु मुएँ वि अण्णु को भल्लउ । जो तिहुयणहों मल्लु एकल्लउ ॥९॥
रावणु मुएँ वि अण्णु को सूहउ । जं आपेक्खेँवि मयणु वि दूहउ ॥१०॥

घत्ता

तहों लङ्केसरहों कुवलय-दल-दीहर-णयणहों ।
भुञ्जहि सयल महि महएवि होहि दहवयणहों' ॥११॥

[१२]

तं तहेँ कलुअ-वयणु आयण्णेँवि । रावणु जीविउ तिण-समु मण्णेँवि ॥१॥
सील-वलेण वलिय णउ कम्पिय । रूसेँवि णिट्ठुर वयण पजम्पिय ॥२॥
'हलेँ हलेँ काइँ काइँ पइँ वुत्तउ । उत्तिम-णारिहिँ एउ ण जुत्तउ ॥३॥
किह दइयहों दूअत्तणु किज्जइ । एण णाइँ महु हासउ दिज्जइ ॥४॥
मन्दुइ तुहुँ पर-पुरिस-पइद्धी । तें कज्जें महु देहि दुवुद्धि ॥५॥
मत्थएँ पडउ वज्जु तहों जारहों । हउँ पुणु भत्तिवन्त भत्तारहों' ॥६॥
सीयहेँ वयणु सुणेँ वि मणेँ डोल्लिय । णिसियर-णाह-णारि पडिवोल्लिय ॥७॥
'जइ महएवि-पट्टु ण पडिच्छहि । जइ लङ्काहिउ कह वि ण इच्छहि ॥८॥

घत्ता

तो कन्दन्ति पइँ तिलु तिलु करवत्तेँहिँ कप्पइ ।
अण्णु मुहुत्तएँण णिसियरहँ विहज्जेँवि अप्पइ' ॥९॥

[१३]

पुणुपुणुरुत्तेँहिँ जणयहों धीयएँ । णिब्भच्छिय मन्दोवरि सीयएँ ॥१॥
'केत्तिउ वारवार वोल्लिज्जइ । जं चिन्तिउ मणेण तं किज्जइ ॥२॥
जइ वि अज्जु करवत्तेँहिँ कप्पहों । जइ वि धरेँवि सिव-साणहों अप्पहों ॥
जइ वि वलन्तेँ हुआसणेँ मेल्लहों । जइ वि महग्गय-दन्तेँहिँ पेल्लहों ॥४॥
तो वि खलहों तहों दुक्किय-कम्महों । पर-पुरिसहों णिवित्ति इह जम्महों ॥५॥
एक्कु जि णिय-भत्तारु पहुच्चइ । जो जय-लच्छिएँ खणु वि ण मुच्चइ ॥६॥

सिवाय, कौन ऐसा बलवान है जिसने सुरसमूहको सहसा परास्त कर दिया हो, तीनों लोकोंमें रावणको छोड़कर दूसरा वीर नहीं। रावणके अतिरिक्त और कौन सुभग है जिसे देखकर कामदेव भी विकल हो उठता है। तुम, कमलदलकी तरह विशालनयन लंकेश्वर उस रावणकी समस्त धरतीका भोग करो" ॥१-११॥

[१२] रानी मन्दोदरीकी इन कड़वी बातोंको सुनकर भी सीताने रावणको तिनके की तरह तुच्छ समझा और अपने शीलके तेजसेवह जरा भी नहीं डरी। और क्रुद्ध होकर वह एकदम कठोर शब्दोंमें बोली,—"हला-हला, तुमने क्या कहा, एक भद्र महिलाके लिए यह उचित नहीं है, तुम रावणका दूतीपन क्या कर रही हो। इस तरह मेरी हँसी मत उड़ाओ, जान पड़ता है तुम्हारी किसी परपुरुषमें इच्छा है, इसीसे यह दुर्बुद्धि मुझे दे रही हो। तुम्हारे यारके माथे पर वज्र पड़े, मैं तो अपने ही पतिमें दृढ़ भक्ति रखती हूँ।" सीताके वचन सुनकर मन्दोदरीका मन चञ्चल हो उठा। उसने कहा, "यदि तुम महादेवीका पट्ट नहीं चाहती, यदि तुम लंका-नरेशको किसी भी तरह नहीं चाहती, तो क्रन्दन करती हुई तुम्हें करपत्रसे तिल-तिल काटा जायगा, और दूसरे ही क्षण, निशाचरोंको बांट दी जाओगी ॥१-६॥

[१३] तब जनककी पुत्री सीताने बार-बार मन्दोदरीकी भर्त्सना करते हुए कहा, "बार-बार कितना बोलती हो जो तुम्हारे मनमें हो वह कर डालो, यदि तुम आज ही करपत्रसे काट दो, यदि तुम आज ही पकड़कर शानपर चढ़ा दो, यदि जलती हुई आगमें डाल दो, यदि गजराजके दाँतोंके आगे ठेल दो, तो आज ही, उस दुष्टके पापकर्म और परपुरुषसे इस जन्ममें ही छूट जाऊँगी। मुझे वही एक, अपना पति पर्याप्त है जिसे विजयलक्ष्मी कभी

जो असुरा-सुर-जण-मण-वल्लहु । तुम्हारिसहुँ कुणारिहिँ दुल्लहु ॥७॥
जो णरवर-मइन्दु भीसावणु । धणु-लङ्गूल-लील-दरिसावणु ॥८॥

घत्ता

सर-णहराउहेण धणुवेय-लंलाविय-जीहें ।
दहमुह-मत्त-गउ फाडेवउ राहव-सीहें ॥९॥

[१४]

रामण - रामचन्द - रमणीयहुँ । जाम वोल्ल मन्दोवरि-सीयहुँ ॥१॥
ताव दसाणणु सयमेवाइउ । हत्थि व गङ्गा-वेणि पराइउ ॥२॥
भसलु व गन्ध-लुद्धु विहडप्फडु । जाणइ-वयण-कमल-रस - लम्पडु ॥३॥
करयल धुणइ झुणइ वुक्कारइ । खेड्डु करेवि देवि पचारइ ॥४॥
विण्णत्तिएँ पसाउ परमेसरि । हउँ कवणेण हीणु सुर-सुन्दरि ॥५॥
किं सोहग्गें भोग्गें ऊणउ । कि विरुयउ किं अत्थ-विहूणउ ॥६॥
किं लावण्णें वण्णें हीणउ । किं संमाणें दाणें रणें दीणउ ॥७॥
कहें कज्जेण केण ण समिच्छहि । जें महएवि-पट्टु ण पडिच्छहि' ॥८॥

घत्ता

राहव-गेहिणिएँ णिब्भच्छिउ णिसियर-राणउ ।
'ओसरु दहवयण तुहुँ अम्हहुँ जणय-समाणउ ॥९॥

[१५]

जाणन्तो वि तो वि मं मुज्झहि । गेण्हेंवि पर-कलत्तु कहिँ सुज्झहि ॥१॥
जाम ण अयस-पडहु उब्भासइ । जाम ण लङ्काणयरि विणासइ ॥२॥
जाम ण लक्खण-सीहु विरुज्झइ । जाम ण राम-कियन्तु विवुज्झइ ॥३॥
जाम ण सरवर-धोरणि सन्धइ । जाम ण तोणा-जुअलु णिवन्धइ ॥४॥
जाव ण वियड-उरत्थलु भिन्दइ । जाव ण वाहुदण्ड तउ छिन्दइ ॥५॥
सरवरें हंसु जेम दल-विमलइँ । जाव ण तोडइ दस-सिर-कमलइँ ॥६॥

नहीं छोड़ती, जो सुर और असुरोंके मनको प्रिय है, और जो तुम जैसी खोटी स्त्रियोंके लिए दुर्लभ है। वह मनुष्योंमें सिंह है जो धनुषकी पूँछसे अपनी लीला दिखाता है, वाणरूपी अरुणनखोंसे सहित, धनुषकी चपल जीभवाला रामरूपी सिंह रावणरूपी मद-गजको अवश्य विदीर्ण करेगा" ॥१-६॥

[१४] राम तथा रावणकी पत्नियाँ (सीता और मन्दोदरी) में इस तरह बातें हो रही थीं कि इतनेमें दशानन ऐसा आ धमका मानो गङ्गा नदीके तटपर हाथी आ गया हो या जानकीके मुखरूपी कमलका लम्पट गन्धलुब्ध भ्रमर ही व्याकुल हो उठा हो। हाथ बजाता, ध्वनि करता और कुछ बुदबुदाता और क्रीड़ा करके पुकारता हुआ वह बोला—"देवी, परमेश्वरी! मुझपर कृपा करो, मैं किसी बातमे हीन हूँ क्या? सौभाग्य या भोगमें हीन हूँ क्या? या अर्थ हीन हूँ? क्या सौन्दर्य या रङ्गमें कम हूँ, क्या सम्मान, दान, युद्ध की दृष्टिसे हीन हूँ, कहो किस कारणसे तुम मुझे नहीं चाहती? और जिससे तुम महादेवीके पदकी भी इच्छा नहीं करती।" तब राघवकी गृहिणी सीताने रावणकी भर्त्सना करते हुए कहा— "रावण मेरे सामनेसे हट, तू मुझे पिताके बराबर है" ॥१-६॥

[१५] जानकर भी तुम मुझपर मोहित हो रहे हो, परस्त्री ग्रहण करके कैसे शुद्ध होओगे, इसलिए जब तक तुम्हारी अकीर्तिका डंका नहीं पिटता, जब तक लंका नगरी नहीं ध्वस्त होती, जब तक लक्ष्मण रूपी सिंह क्रुद्ध नहीं होता, जब तक रामरूपी कृतान्त इसे नहीं जान पाते, जब तक वह तीरोंकी धाराका संधान नहीं करते, जब तक दोनों तरकस नहीं बाँधते, जब तक तुम्हारा विकट उरस्थल नहीं भेदते, जब तक तुम्हारा बाहुदण्ड छिन्न-भिन्न नहीं करते, जब तक सरोवरमें हंसकी तरह दलमल नहीं करते, जब

जाम ण गिद्ध-पन्ति णिव्वट्टइ । जाम ण णिसियर-बलु आवट्टइ ॥७॥
जाम ण दरिसावइ धय-चिन्धइँ । जाम ण रणेँ णच्चन्ति कबन्धइँ ॥८॥

घत्ता

जाम ण आहयणेँ कप्पिज्जहि वर-णारायहिँ ।
ताव णराहिवइ पडु राहवचन्दहोँ पायहिँ ॥९॥

[१६]

तं णिसुणेँवि आरुट्ठु दसाणणु । णं घणेँ गज्जमाणेँ पञ्चाणणु ॥१॥
कोवाणल-पलित्तु लङ्केसरु । चिन्तइ विज्जाहर-परमेसरु ॥२॥
'किं जम-सासण-पन्थेँ लायमि । किं उवसग्गु किं पि दरिसावमि ॥३॥
अवसेँ भव-वसेण इच्छेसइ । महु मयणग्गि समुल्हावेसइ' ॥४॥
तहिँ अवसरेँ स-तुरङ्गु स-रहवरु । गउ अत्थवणहोँ ताम दिवायरु ॥५॥
आय रत्ति णाणाविह-रूवेँहिँ । अट्टहास मेल्लन्तेँहिँ भूएँहिँ ॥६॥
खर-साणउल- विराल-सियालेँहिँ । बहु-चामुण्ड - रुण्ड - वेयालेँहिँ ॥७॥
रक्खस-सीह-वग्घ-गय - गण्डेँहिँ । मेस-महिस-वस-तुरय-णिसण्डेँहिँ ॥८॥
तं उवसग्गु णिएवि भयावणु । तो वि ण सीयहेँ सरणु दसाणणु ॥९॥
घोरु रउद्दु झाणु संचूरेँवि । थिय मणेँ धम्म-झाणु आऊरेँवि ॥१०॥

घत्ता

'जाव ण णीसरिय उवसग्ग-भयहोँ गम्भीरहोँ ।
ताव णिवित्ति महु चउविह-आहार-सरीरहोँ ॥११॥

[१७]

पहय पओस पणासेँवि णिग्गय । हत्थि-हड व्व सूर-पहराहय ॥१॥
णिसियरि व्व गय घोणावङ्किय । भग्ग-मडप्फर माण-कलङ्किय ॥२॥
सूर-भएण णाइँ रणु मेल्लेँवि । पइसइ णयरु कवाडइँ पेल्लेँवि ॥३॥

घत्ता

हरि-सीय-वलाइँ आयइँ सज्जइँ आइयइँ ।
णं मत्त-गयाइँ दण्डारण्णु पराइयइँ ॥१॥

[३]

तहिँ मि कालेँ मुणि-गुत्त-सुगुत्तहँ । संजम - णियम - धम्म-संजुत्तहँ ॥१॥
वणेँ आहार-दाणु दरिसावेँ वि । सुरवर-रयण-वरिसु वरिसावेँ वि ॥२॥
पक्खिहेँ पक्ख सुवण्ण समारेँवि । सम्बुकुमारु वीरु संघारेँवि ॥३॥
अच्छहुँ जाव तेत्थु वण-कीलएँ । एक्क कुमारि आय णीय-लीलएँ ॥४॥
पासु वइुकिअ करिणि व करिणहोँ । पुणु णिल्लज्ज भणइ "मइँ परिणहोँ" ॥५॥
वल-णारायणेहिँ उवलक्खिय । पुणु थोवन्तरेँ जाय विलक्खिय ॥६॥
गय खर-दूसणाहुँ कूवारेँ हिँ । भिडिय ते वि सहुँ समरेँ कुमारेँहिँ ॥७॥

घत्ता

किं मुक्कु ण मुक्कु सीह-णाउ रणेँ लक्खणेँण ।
तं सद्दु सुणेवि रामु पधाइउ तक्खणेण ॥८॥

[४]

गउ लक्खणहोँ गवेसउ जावेँहिँ । हउँ अवहरिय णिसिन्देँ तावेँहिँ ॥१॥
अज्जु वि जण-मण-णयणाणन्दहोँ । पासु णेहु मइँ राहवचन्दहोँ' ॥२॥
लइउ णाउँ जं दसरह-जणयहुँ । हरि-हलहर - भामण्डल-तणयहुँ ॥३॥
चित्तु विहीसण-रायहोँ डोल्लिउ । 'तुम्हेँ हिँ सुयउ सुयउ जं वोल्लिउ ॥४॥
ते हउँ आउ आसि विणिवाएँ वि । णवर जियन्ति भन्ति उप्पाएँवि ॥५॥

दीवा पज्जलन्ति जे सयणेँ हिँ । णं णिसि वलेँवि णिहालइ णयणेँ हिँ ॥४॥
उट्टिउ रवि अरविन्दाणन्दउ । णं महि-कामिणि-केरउ अन्दउ ॥५॥
णं सञ्झाएँ तिलउ दरिसाविउ । णं सुकइहेँ जस-पुञ्जु पहाविउ ॥६॥
णं मम्भीस देन्तु वल-पत्तिहेँ । पच्छलेँ णाइँ पधाइउ रत्तिहेँ ॥७॥
णं जग-भवणहोँ वोहिउ दीवउ । णाइँ पुणु वि पुणु सो जेँ पडीवउ ॥८॥

घत्ता

तिहुअण-रक्खसहोँ दारेँवि दिसि-वहु-मुह-कन्दरु ।
उवरेँ पईसरेँवि णं सीय गवेसइ दिणयरु ॥९॥

[१८]

रयणिहेँ तिमिर-णियर-रएँ भग्गएँ । णिव रावणहोँ आय ओलग्गएँ ॥१॥
मय - मारिच्च - विहीसण - राणा । अवरँ वि भुवणेक्कक-पहाणा ॥२॥
खर-दूसण-सोएण णयाणण । णं णिक्केसर वर पञ्चाणण ॥३॥
णिय-णिय-आसणेहिँ थिय अविचल । भग्ग-विसाण णाइँ वर मयगल ॥४॥
मन्ति-महल्लएहिँ एत्थन्तरेँ । णिसुणिय सीय रुअन्ति पडन्तरेँ ॥५॥
भणइ विहीसणु 'एँहु को रोवइ । वारवार अप्पाणउ सोअइ ॥६॥
णावइ पर-कलत्तु विच्छोइउ' । पुणु दहवयणहोँ वयणु पलोइउ ॥७॥
'मच्छुद्धु एउ कम्मु तुह केरउ । अण्णहोँ कासु चित्तु विवरेरउ' ॥८॥
णिसुणेवि सीय आसासिय । कलयण्ठि व पिय-वयणेँहिँ भासिय ॥९॥
एहु दुज्जणहोँ मज्झेँ को सज्जणु । णिम्व-वणहोँ अब्भन्तरेँ चन्दणु ॥१०॥

घत्ता

विहुरेँ समावडिएँ एँहु को साहम्मिय-वच्छलु ।
जो महँ धीरवइ एवड्डु कासु सइँ भु व-वलु' ॥११॥

जो दीप जल रहे थे मानो रात उनके बहाने अपने नेत्रोंको मोड़कर देख रही थी, अरविन्दोंको आनन्द देनेवाला रवि उदित हो गया। वह मानो धरतीरूपी कामिनीका दर्पण था, या मानो संध्याका तिलक था, या मानो कवि यशःपुञ्ज चमक रहा था, या मानो रामकी पत्नी सीतादेवीको अभय देता हुआ रातके पीछे दौड़ा हो। या विश्व-भुवन दीपक जला दिया गया हो। और बार-बार वहीं लौट आ रहा हो। त्रिभुवनरूपी निशाचरकी दिशा-वधूके मुख-कन्दराको फाड़कर और ऊपर आकर मानो सूर्य सीता देवीको खो रहा था ॥१-६॥

[१८] रातके अन्धकार-पटलकी धूल भग्न होनेपर राजा लोग रावणकी सेवामें उपस्थित हुए। उनमें मय, मारीच, विभीषण तथा और भी दूसरे प्रधान राजा थे। खर और दूषणके शोकमें उनके मुख ऐसे आनत थे जैसे बिना अयालके सिंह हों। सभी अपने अपने आसनपर अविचल भावसे बैठे थे मानो भग्नदन्त गज हों। मन्त्रियों और सभ्यजनोंने इसी समय पर्देके भीतर रोती हुई सीता देवीकी आवाज सुनी। तब विभीषणने कहा—"यह कौन रो रही है? कौन यह बार-बार अपनेको सन्तप्त कर रही है। कहीं यह कोई वियोगिनी स्त्री न हो?" फिर उसने रावणके मुखको लक्ष्य करके कहा, "शायद यह तुम्हारा काल तो नहीं है। क्योंकि दुनियामें तुम्हें छोड़कर और किसका चित्त विपरीत हो सकता है।" यह सुनकर सीता देवी आश्वस्त हो उठीं और उन्होंने अपने कोकिल की तरह मधुर स्वरमें कहा—"अरे दुर्जनोंके बीचमें यह सज्जन कौन है वैसे ही जैसे नीमके वनमें चन्दनका वृक्ष? घोर संकटमें यह कौन मेरा साधर्मी जन है कि जो इस प्रकार मुझे धीरज बँधा रहा है। किसका इतना प्रबल बाहुबल है?" ॥१-११॥

[४२. बायालीसमो संधि]

पुणु वि विहीसणेण दुव्वयणेंहिँ रावणु दोच्छइ ।
तेत्थु पइन्तरेण आसण्णउ होएवि पुच्छइ ॥

[१]

'अक्खहि सुन्दरि वच्च णिमन्ती । कहिँ आणिय तुहुँ एत्थु रुवन्ती ॥१॥
कासु धीय कहि को तुम्हहँ पइ' । अवर वहन्तु विहीसणु जम्पइ ॥२॥
'कवणु ससुरु कहि को तुह देवरु । अत्थि पसिद्धउ को तुह भायरु ॥३॥
सप्परियण कहि तुहुँ एक्कल्ली । अक्खहि केम वणन्तरेँ मुल्ली ॥४॥
कँ कज्जेण वणवासु पइट्ठी । चक्केसरेंण केम तुहुँ दिट्ठी ॥५॥
कि माणुसि किं खेयर-णन्दिणी । किं कुलील किं सीलहोँ भायणि ॥६॥
अण्णु वि कवणु तुम्ह देसन्तरु । कहहि वियारेंवि णियय-कहन्तरु' ॥७॥
एम विहीसण-वयणु सुणेंविणु । लग्ग कहेव्वएँ जिम णिसुणइ जणु ॥८॥

घत्ता

'अह किं वहुएण लहुअ वहिणि भामण्डलहोँ ।
हउँ सीयाएवि जणयहोँ सुअ गेहिणि वलहोँ ॥९॥

[२]

वन्धेवि राय-पट्टु भरहेसहोँ । तिण्णि वि संचल्लिय वणवासहोँ ॥१॥
सीहोयरहोँ मडप्फरु भञ्जेंवि । दसउर-णाहहोँ णिय-मणु रञ्जेंवि ॥२॥
पुणु कल्लाणमाल सम्मासेंवि । णम्मय मेल्लेंवि विञ्झु पईसेंवि ॥३॥
रुद्दभुत्ति णिय-चलणेंहिँ पाडेंवि । वालिखिल्लु णिय-णयरहोँ धाडेंवि ॥४॥
रामउरिहिँ चउ मास वसेप्पिणु । धरणीधरहोँ धीय परिणेप्पिणु ॥५॥
फेडेंवि अइवीरहोँ वीरत्तणु । पइसरेवि खेमञ्जलि-पट्टणु ॥६॥
तेत्थु वि पञ्च पडिच्छेंवि सत्तिउ । सत्तुदवणु ससि-वण्णु पविचित्तउ ॥७॥

बयालीसवीं सन्धि

वार-वार विभीषणने रावणकी खोटे शब्दोंमें निन्दा की। उसने पटकी ओटमें बैठी हुई सीता देवीसे पूछा।

[१] "हे सुन्दरी! तुम अपनी वात निर्भ्रान्त होकर कहो। रोती हुई तुम्हें यह (दशानन) किस प्रकार ले आया। तुम किसकी कन्या हो, और तुम्हारा पति कौन है ?" चिंतित होकर, विभीषणने पुनः कहा,"तुम्हारा ससुर कौन है, और कौन तुम्हारा देवर है ? तुम्हारा सुप्रसिद्ध भ्राता कौन है, तुम्हारे कोई कुटुम्बीजन हैं, या तुम अकेली हो ? वताओ इस वनमें तुम भूल कैसे पड़ी ? किस कारणसे तुम्हें वनवासके लिए आना पड़ा। चक्राधिपति रावणने तुम्हें किस प्रकार देख लिया ? तुम मनुष्यनी हो या खेचरपुत्री कुशीला हो या शीलकी पात्र हो ? तुम्हारा देशान्तर कौन-सा है ? अपनी कहानी जरा विस्तारसे कहो।" विभीषणके इन वचनोंको सुनकर सीतादेवीने उत्तरमें कहा, "(और विभीषण शान्तिसे सुनता रहा) बहुत कहनेसे क्या मैं भामण्डलकी बहन सीता देवी हूँ। जनककी पुत्री, और रामकी पत्नी ॥१-६॥

[२] भरतेश्वर भरतको राज्यपट्ट बाँधकर हम तीनों वनवासके लिए निकल पड़े थे। सिंहोदरका मान नष्ट कर, दशपुर-नाथके मनका अनुरंजन कर, कल्याणमालाको अभयदान देकर रेवा नदीको छोड़कर हम लोगोंने—विन्ध्याटवीमें प्रवेश किया। वहाँपर रुद्रभूतिको अपने पैरोंमें झुकाकर, बालिखिल्यको उसके अपने नगरमें पुनः प्रतिष्ठित किया। रामपुरीमें चार माह रहकर राजा धरणीधरकी कन्यासे पाणिग्रहण कर, अतिवीर्यकी वीरताको खण्डितकर वह क्षेमंजलि नगरमें पहुँचे। वहाँ भी पाँच शक्तियोंको

घत्ता

हरि-सीय-बलाइँ जावइँ सण्णइँ आइयइँ ।
णं मत्त-गयाइँ दण्डारण्णु पराइयइँ ॥९॥

[२]

तहिँ मि काले मुणि-गुत्त-सुगुत्तइँ । संजम - णियम - धम्म-संजुत्तइँ ॥१॥
तणेँ आहार-दाणु इच्छावेँवि । सुरवर-रयण-वरिसु वरिसावेँवि ॥२॥
पक्खिहेँ पक्ख सुवण्ण समारेँवि । जडउकुमारु दीण ठवारेँवि ॥३॥
अच्छहुँ जाव तेत्थु वण-कीलएँ । एक्क कमलाहि जाव णाय-लीलएँ ॥४॥
पासु वइट्ठिय करिणि व करिणहोँ । पुणु णिब्भच्छ भणइ "महुँ परिणहोँ" ॥५॥
बल-णारायणेहिँ उवलक्खिय । पुणु पायालएँ जाय विलक्खिय ॥६॥
ताय खर-दूसणेहुँ कुमारेँहिँ । णिडियएँ वि लहुँ सयलेँ कुमारेँहिँ ॥७॥

घत्ता

किं बुज्झइ ण बुज्झइ मोह-गाउ एवँ लक्खणेँण ।
तं खग्गु मुएवि राउ पधाइउ लक्खणेँण ॥८॥

[३]

गउ लक्खणहोँ गवेसउ जावेँहिँ । हुउँ कलहलिय गिरिन्दें तावेँहिँ ॥१॥
अण्णु वि जण-मण-णयणाणन्दहोँ । पासु गेहु महँ रहुवरणन्दहोँ ॥२॥
लइउ णाउँ जं दुम्मइ-वयणहुँ । हरि-हलहर - आणन्दण-णयणहुँ ॥३॥
चित्तु विहीसण-रायहोँ डोल्लिउ । तुम्हेँहिँ सुयउ सुयउ जं बोल्लिउ ॥४॥
ते हउँ जोइ आसि विणिवाएँवि । णवर वियप्पन्ति मन्ति उप्पाएँवि ॥५॥

पराजितकर, अरिदमन राजाका मुख कालाकर, उसकी कन्याका पाणिग्रहण किया। फिर वहाँसे (चलकर) उन्होंने दो मुनियोंका उपसर्ग दूर किया। उसके बाद राम, लक्ष्मण और सीता देवी, यहाँ इस साज से आये मानो मत्तगजने ही दण्डकारण्यमें प्रवेश किया हो ॥१-६॥

[३] वहाँ उस समय संयम, नियम और धर्मसे युक्त मुनिवर गुप्त और सुगुप्तको वनमें हमने आहार दिया। जिससे सुरवरोंने रत्नोंकी वर्षा की। पक्षिराज जटायुके पंख सोनेके हो गये। फिर लक्ष्मणने वीर शम्बुक कुमारको मारा। इस प्रकार जब हम वनमें क्रीड़ा कर रहे थे। तभी लीलापूर्वक एक कुमारी वहाँ आई। वह राम लक्ष्मणके पास उसी प्रकार पहुँची जिस प्रकार हथिनी हाथीके पास पहुँचती है। निर्लज्ज वह बोली कि मुझसे विवाह कर लो। फिर राम-लक्ष्मणसे तिरस्कृत होकर, वह थोड़ी दूर पर जाकर अत्यन्त विद्रूप हो उठी। क्रन्दन करती हुई वह खर-दूषणके पास पहुँची। वे भी राम-लक्ष्मणसे युद्ध करने आये थे। युद्धमें चाहे लक्ष्मणने सिंहनाद किया हो या नहीं, किन्तु उस शब्दको सुनकर राम तत्काल दौड़े ॥१-८॥

[४] जब तक वह लक्ष्मणकी, खोज-खबरके लिए गये कि इतनेमें निशाचर रावणने मेरा अपहरण कर लिया। आज भी मेरा प्रेम जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देने वाले रामचन्द्रके प्रति है।" इस प्रकार जब सीता देवीने दशरथ पुत्र राम, लक्ष्मण और भामण्डलका नाम लिया तो राजा विभीषणका चित्त जल उठा। उसने कहा, "रावण, तुमने सुना है क्या? जो कुछ इसने कहा। अरे, मैं तो उन दोनों (दशरथ और जनक) को मारकर आया था। मुझे बड़ी भारी भ्रान्ति है। क्या, वे दोनों जीवित हैं। तो

दुक्कु पमाणहों मुणिवर-भासिउ । जिह "खउ लक्खण-रामहों पासिउ" ॥६॥
एव वि करहि महारउ वुत्तउ । उत्तिम-पुरिसहुँ एउ ण जुत्तउ ॥७॥
एक्कु विणासु अण्णु लज्जिज्जइ । धिद्धिक्कारु लोएं पाविज्जइ ॥८॥

घत्ता

णिय-कित्तिहेँ राय सायर-रसण-खलन्तियहेँ ।
मं भञ्जहि पाय तिहुयणें परिसक्कन्तियहें ॥९॥

[५]

रावण जे रमन्ति परदारइँ । दुक्खइँ ते पावन्ति अपारइँ ॥१॥
जहिँ ते सत्त णरय भय-भीसण । हसहसहसहसन्त स-हुवासण ॥२॥
हुहुहुहुहुहुहुहन्त स-उपद्दव । सिमिसिमिसिमिसिमन्त-किमि-कद्दम॥३॥
रयणि-सकर - वालुय - पङ्क-प्पह । धूमप्पह - तमपह - तमतमपह ॥४॥
तहिँ असरालु कालु अच्छेवउ । पहिलएँ उवहि-पमाणु जिवेवउ ॥५॥
तिण्णि सत्त वीसद्ध रउद्दइँ । सत्तारह वावीस समुद्दइँ ॥६॥
पुणु तेत्तीस-जलहि-परिमाणइँ । जहिँ दुक्खइँ गिरि-मेरु-समाणइँ ॥७॥
जो पुणु णरउ णिगोउ सुणिज्जइ । मेइणि जाव ताव तहिँ छिज्जइ ॥८॥
तें कज्जें पर-दारु ण रम्मइ । तं किज्जइ जं सुगइहिँ गम्मइ' ॥९॥

घत्ता

आरूढु दसासु 'किं पर-दारहों एह किय ।
तिहुँ खण्डहुँ मज्झें अक्खु पराइय कवण तिय' ॥१०॥

[६]

तो अवहेरि करेवि विहीसणें । चडिउ महग्गएँ तिजगविहूसणें ॥१॥
सीय वि पुप्फ-विमाणें चडाविय । पट्टणें हट्ट-सोह दरिसाविय ॥२॥
संचल्लउ णिय-मण-परिओसें । झल्लरि - पडह - तूर - णिग्घोसें ॥३॥
'सुन्दरि पेक्खु महारउ पट्टणु । वरुण - कुवेर - वीर - दलवट्टणु ॥४॥
सुन्दरि पेक्खु पेक्खु चउ-वारइँ । णं कामिणि-वयणइँ स-वियारइँ ॥५॥

फिर मुनिवरका कहा सच होना चाहता है। अब तुम्हारा राम-लक्ष्मणसे विनाश होगा। अब भी तुम मेरा कहना मानो। उत्तम पुरुषके लिए यह उचित नहीं है। एक तो विनाश और दूसरे लोक-लाज। फिर दुनिया थू थू करेगी। हे राजन्, तीनों लोकोंमें व्याप्त समुद्रके स्वरसे स्खलित अपनी कीर्तिको नष्ट मत करो। उसकी रक्षा करो ॥१-६॥

[५] रावण, जो परस्त्री-रमण करते हैं वे अपार दुख प्राप्त करते हैं। आग-सहित हस-हस करते हुए जो सात भयङ्कर नरक हैं उनमें उपद्रव और हूहू शब्द होते रहते हैं। सिम-सिमाती कृमि और कीचड़से वे सराबोर हैं। उनके नाम हैं। रत्न शर्करा, बालुका, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और तमतमप्रभ। उनमें तुम अनन्त काल तक रहोगे। पहले नरकमें एक सागरप्रमाण तक, उसके बाद फिर तीन, सात, दस, ग्यारह, सत्तरह और बाईस सागरप्रमाण समय दूसरे-दूसरे नरकोंमें रहना पड़ेगा। उसके अनन्तर तेतीस सागरप्रमाण काल तक वहाँ रहोगे जहाँ सुमेरु पर्वत बराबर बड़े-बड़े दुख हैं। फिर निगोद सुना जाता है उसमें भी तुम तब तक सड़ते रहोगे कि जब तक यह धरती है। इसलिए पर-स्त्रीका रमण करना ठीक नहीं। ऐसा काम करो जिससे देवगति प्राप्त हो। यह सुनकर रावणने क्रुद्ध हो कहा—"क्या परस्त्रीमें यह कृत्य है ? अरे, तीनों लोकोंमें किसी स्त्रीने इन्द्रियोंको पराजित किया ॥१-१०॥

[६] तब विभीषणकी उपेक्षा करके रावण अपने त्रिजगभूषण हाथीपर चढ़ गया और सीता देवीको पुष्पक विमानमें बैठाकर नगरमें बाजारकी शोभा दिखानेके लिए ले गया। झल्लरी, पटह और तूर्यके निर्घोषसे अपने मनमें सन्तुष्ट होकर वह निकला। उसने सीता देवीसे कहा—"देवी ! मेरा नगर देखो, वह वरुण और कुबेर जैसोंको धूलमें मिलानेवाला है। सुन्दरी, देखो-देखो ये चार

सुन्दरि पेक्खु पेक्खु धय-छत्तइँ । पप्फुल्लियइँ णाइँ सयवत्तइँ ॥६॥
सुन्दरि पेक्खु महारउ राउलु । हीर-गहणु मणि-खम्भ-रमाउलु ॥७॥
सुन्दरि करहि महारउ वुत्तउ । लइ चूडउ कण्ठउ कडिसुत्तउ ॥८॥
सुन्दरि करि पसाउ लइ चेलिउ । चीणउ लाडु घोडु हरिकेलिउ ॥९॥

घत्ता

महु जीविउ देहि बोल्लहि वयणु सुहावणउ ।
चडु गयवर-खन्धेँ लइ महएवि-पसाहणउ' ॥१०॥

[७]

सम्पइ दक्खवन्तु इय सेज्जएँ । दोच्छिउ रावणु राहव-भज्जएँ ॥१॥
'केत्तिउ णियय-रिद्धि महु दावहि । अप्पउ जणहोँ मज्झेँ दरिसावहि ॥२॥
एउ जं रावण रज्जु तुहारउ । तं महु तिण-समाणु हलुआरउ ॥३॥
एउ जं पट्टणु सोमु सुदंसणु । तं महु मणहोँ णाइँ जमसासणु ॥४॥
एउ जं राउलु णयण-सुहङ्करु । तं महु णाइँ मसाणु भयङ्करु ॥५॥
एउ जं दावहि खणेँ जोव्वणु । तं महु मणहोँ णाइँ विस-भोयणु ॥६॥
एउ जं कण्ठउ कडउ स-मेहलु । सील-विहूणहँ तं मलु केवलु ॥७॥
रहवर-तुरय-गइन्द-सयाइ मि । आयहिँ मसु पुणु गण्णु ण काइ मि ॥८॥

घत्ता

सग्गेण वि काइँ जहिँ चारित्तहोँ खण्डणउ ।
किं समलहणेण महु पुणु सीलु जेँ मण्डणउ' ॥९॥

[८]

जिह जिह चिन्तिय आस ण पूरइ । तिह तिह रावणु हियएँ विसूरइ ॥१॥
'विहि तेत्तडउ देइ जं विहियउ । कि वढ जाइ णिलाडएँ लिहियउ ॥२॥
हउँ कम्मेण केण संखोहिउ । जाणन्तो वि तो वि जं मोहिउ ॥३॥
धिधि अहिलसिय कुणारि विलीणी । वुण्ण-कुरङ्गि जेम मुह-दीणी ॥४॥

द्वार हैं। जो विकार-पूर्ण कामिनियोंके मुखोंके समान लगते हैं। सुन्दरी, देखो-देखो ये ध्वज और छत्र हैं। मानो कमल ही खिल उठे हों। सुन्दरी! देखो-देखो, हीरोंसे गम्भीर और मणियोंके खम्भों से सुन्दर यह मेरा राजकुल है। सुन्दरी, तुम मेरा कहना भर कर दो। और लो यह चूड़ामणि कण्ठा और कटक-सूत्र। सुन्दर चीनी वस्त्र, ताड़, अश्व और हरिकेल लेकर मुझपर प्रसाद करो। मुझे जीवन दो। मीठे शब्द बोलो। इस महागजपर आरूढ़ होकर महादेवीका प्रसाधन अङ्गीकार करो ॥१-१०॥

[७] इसपर राघवको पत्नी आदरणीया सीतादेवीने भर्त्सना करते हुए रावणको उत्तर दिया—"अरे, मुझे कितनी अपनी ऋद्धि दिखाता है, अपने लोगोंको ही दिखा। यह जो तुम्हारा राज्य है, वह मेरे लिए तिनकेकी तरह तुच्छ है, चन्द्रमाकी तरह सुन्दर जो यह नगर है वह मेरे लिए मानो यमशासनकी तरह है। नयन-शुभङ्कर तुम्हारा यह राजकुल, मेरे लिए भयङ्कर श्मशानकी तरह है। और जो तुम वार-वार अपने यौवनका प्रदर्शन कर रहे हो, वह मेरे लिए विप-भोजनकी तरह है। और जो यह मेखला-सहित कण्ठा और कटक हैं, शीलविभूपिताके लिए केवल मल हैं। सैकड़ों रथवर तुरग और गज भी जो हैं उन्हें मैं कुछ भी नहीं गिनती। उस स्वर्णसे भी क्या जहाँ चारित्र्यका खण्डन हो, यदि मैं शीलसे विभूपित हूँ तो मुझे और क्या चाहिए" ॥१-६॥

[८] जैसे-जैसे अचिन्तित आशा पूरी नहीं होती वैसे-वैसे रावण मनमें दुखी होने लगा। विधाता उतना ही देता है जितना भाग्यमें होता है, जो ललाटमें लिखा है, उससे क्या बढ़ती होता है, मैं किस कर्मके उदयसे इतना पतित बना, जो जानते हुए भी इसपर मोहित हुआ। मुझे धिक्कार है कि जो मैंने विपन्न हिरनीकी

आयहँ पासिउ जाउ सु-वेसउ । महु घरेँ अत्थि अणेयउ वेसउ' ॥५॥
एव विचित्तु चित्तु साहारेँवि । दुक्खु दुक्खु मण-पसरु णिवारेँवि ॥६॥
सीयएँ समउ खेड्डु आमेल्लेँवि । तं गिव्वाणरमणु वणु मेल्लेँवि ॥७॥
णरवर-विन्देँहिं परिमिउ दहमुहु । संचल्लिउ णिय-णयरिहेँ अहिमुहु ॥८॥

घत्ता

गिरि दिट्ठु तिकूडु जण-मण-णयण-सुहावणउ ।
रवि-डिम्भहोँ दिण्णु णं महि-कुलवहुअएँ थणउ ॥९॥

[९]

णं धरु धरहेँ गब्भु णीसरियउ । सत्तहिँ उववणेहिँ परियरियउ ॥१॥
पहिलउ वणु णामेण पइण्णउ । सज्जण-हियउ जेम वित्थिण्णउ ॥२॥
वीयउ जण-मण-णयणाणन्दणु । णावइ जिणवर-बिम्बु स-चन्दणु ॥३॥
तइयउ वणु सुहसेउ सुहावउ । जिणवर-सासणु णाइँ स-भावउ ॥४॥
चउथउ वणु णामेण समुच्चउ । बग-बलाय - कारण्ड - सकोच्चउ ॥५॥
चारण-वणु पञ्चमउ रवण्णउ । चम्पय - तिलय-बउल - संछण्णउ ॥६॥
छट्ठउ वणु णामेण णिवोहउ । महुअर-रुणुरुणन्तु सुसोहउ ॥७॥
सत्तमु वणु सीयलु सच्छायउ । पमउज्जाणु णाम-विक्खायउ ॥८॥

घत्ता

तहिँ गिरिवर-पट्ठेँ सोहइ लङ्काणयरि किह ।
थिय गयवर-खन्धेँ गहिय-पसाहण वहुअ जिह ॥९॥

[१०]

घत्ता

ताव तेत्थु णिज्झाइय वावि असोय-मालिणी ।
हेमवण्ण स-पओहर मणहर णाइँ कामिणी ॥१॥

तरह दीन मुखवाली विलाप करनेवाली कुमारीकी अभिलाषा को। इसके पास जो सुन्दर रूप है, मेरे घर तो उससे भी सुन्दर अनेक रूप हैं? इस प्रकार अपने विचित्र-चित्तको सहारा देकर और बड़े कष्टसे मनके प्रसारको रोककर, सीताके साथ क्रीड़ाका त्यागकर उसे उसने नन्दन वनमें छोड़ दिया। और श्रेष्ठ पुरुषोंसे घिरा हुआ वह अपनी नगरीकी ओर चला। मार्गमें उसे जनोंके मन और नेत्रोंको सुहावना लगनेवाला त्रिकूट नामक पहाड़ ऐसा दीख पड़ा, मानो सूर्यरूपी बालकके लिए धरतीरूपी कुलवधूने अपना रतन दे दिया हो ॥१-८॥

[९] या मानो धराका गर्भ (अन्तर) ही निकल आया हो। वह सात उपवनोंसे घिरा हुआ था। उसमेंसे पहले 'पइण्ण' वन सज्जनके हृदयकी तरह विस्तीर्ण जन-मन-नयनप्रिय, दूसरा उपवन, जिनके बिम्बकी तरह चन्दन (पेड़ और चन्दन) से सहित था, सुहावना तीसरा सुहसंत? वन जिनवर-शासनकी तरह, सावय (श्रावक और वृत्तविशेष) से सहित। चौथा समुच्चय नामका वन बलाका, कारंडव और क्रौंच पक्षियोंसे भरा हुआ था। पाँचवाँ सुन्दर चारण वन था, छठा निबोधित नामक वन सुन्दर और भौरोंसे गुञ्जित था और सातवाँ प्रसिद्ध प्रमद वन था जो सुन्दर छाया सहित और शीतल था। गिरिवरकी पीठपर लंका नगरी ऐसी शोभित हो रही थी मानो महागजकी पीठपर नई दुलहिन ही खूब सज-धजकर बैठी हो ॥१-९॥

[१०] वहीं पर उसे अशोकमालिनी नामकी सुन्दर वापिका दिखाई दी जो कामिनी की तरह, सुनहरे रङ्गकी, पयोधर (स्तन

चउ-दुवार-चउ-गोउर - चउ-तोरण - रवण्णिया ।
चम्पय - तिलय-वउल-णारङ्ग- लवङ्ग - छण्णिया ॥२॥
तहिँ पएसेँ वइदेहि ठवेप्पिणु गउ दसाणणो ।
झिज्जमाणु विरहेण विसंथुलु विमणु दुम्मणो ॥३॥
मयण-वाण-जज्जरियउ जरिउ दुवार-वारओ ।
दूइआउ आवन्ति जन्ति सयवार-वारओ ॥४॥
वयणएहिँ खर-महुरेँहिँ मुहु सूसइ विसूरए ।
छोहेँ छोहेँ णिवडन्तएँ जूआरो व्व जूरए ॥५॥
सिरु धुणेइ कर मोडइ अङ्गु वलेइ कम्पए ।
अहरु लेवि णिज्झायइ कामसरेण जम्पए ॥६॥
गाइ वाइ उव्वेल्लइ हरिस-विसाय दावए ।
वारवार मुच्छिज्जइ मरणावत्थ पावए ॥७॥
चन्दणेण सिञ्चिज्जइ चन्दण-लेउ दिज्जए ।
चामरेहिँ विज्जिज्जइ तो वि मणेण झिज्जए ॥८॥

घत्ता

किं रावणु एक्कु जो जो गरुअइँ गज्जियउ ।
जिण-धवलु मुएवि कामेँ को ण परज्जियउ ॥९॥

[११]

थिएँ दसाणणेँ विरह-भिम्भले । जाय चिन्त वर-मन्ति-मण्डले ॥१॥
'एत्थु मल्लु को कुइएँ लक्खणे । सिद्धु जासु असि-रयणु तक्खणे ॥२॥
णिहउ सम्बु जेँ दूसणो खरो । होइ कुन्इ ण सावण्णु सो णरो' ॥३॥
भणइ मन्ति सहसमइ-णामेँणं । 'कवणु गहणु एक्केण रामेँणं ॥४॥
लक्खणेण सह साहणेण वा । रह-तुरङ्ग-गय-वाहणेण वा ॥५॥
दुत्तरे दुसञ्चार-सायरे । कहिँ पएसु विच्ची-भयङ्करे ॥६॥

और जल) से सहित थी। चार द्वार, चार गोपुर और तोरणोंसे रमणीय थी। चम्पक, तिलक, मौलश्री, नारंगी और लवंगसे आच्छन्न उस प्रदेशमें सीताको छोड़कर रावण चला गया। विरहसे क्षीण और अस्त-व्यस्त, विमन दुर्मन, कामबाणोंसे जर्जर द्वार-पालकी तरह बूढ़ा वह रावण दूतीकुलकी तरह बार-बार आता और लौट जाता। कठोर और मधुर वचनोंसे उसका मुख सूख रहा था ? क्षोभसे जुआरी की तरह गिरता पड़ता वह कभी अपना सिर धुनने लगता, कभी हाथ मरोड़ता, कभी अंग-अंग झुकाकर काँप उठता। कभी अधर पकड़कर चिंतामग्न हो जाता। कभी कामके स्वरमें बोल पड़ता। गाता बजाता हुआ, कभी-कभी हर्ष और विषादकी दीप्तिसे उद्वेलित हो उठता। बार-बार मूर्छित होकर वह मरणदशाको पहुँच गया। चंदनके (जल) सिंचन और उसीके लेपसे तथा चामरोंसे हवा करनेसे वह मन ही मन छीज रहा था। क्या रावण अकेला ही पीड़ित हुआ ? जिनको छोड़कर, कौन ऐसा है जो गर्वसे गरजता नहीं और कामसे पराभूत नहीं हुआ ॥१-६॥

[११] इस प्रकार रावणके विरहव्याकुल होने पर रावणके मंत्री-मंडलमें चिंता व्याप्त हो गई। वे विचार करने लगे कि लक्ष्मणके क्रुद्ध होने पर, यहाँ कौन-सा वीर है। जिसे तत्काल सूर्यहास खड्ग सिद्ध हो गया। जिसने खरदूषण और कुमार शम्बूक की हत्या की, वह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। इसपर सहस्र-मति नामके मंत्रीने कहा कि एक रामको पकड़नेकी क्या बात है। सेना, रथ, तुरंग, गज और वाहनों सहित लक्ष्मणको पकड़ने में भी क्या रखा है। रावणकी सेना दुस्तर लहरोंसे भयंकर

रावणस्स पवलं वलं महा। अत्थि वीर एक्केक दूसहा ॥७॥
किं मुएण दूसणेण सम्बुणा। सायरो किमोहु विन्दुणा' ॥८॥

घत्ता

तं वयणु सुणेवि विहसेंवि पञ्चामुहु भणइ।
'किं वुच्चइ एक्कु जो एक्कु जें सहसइँ हणइ ॥९॥

[१२]

अण्णुएँ णिसुअ वत्त मइँ एहिय। रावण-मन्दिरें णीसन्देहिय ॥१॥
जे जे णरवइ केइ कइद्धय। जम्वव - णल - सुग्गीवङ्गङ्गय ॥२॥
समउ विराहिएण वण-सेवहुँ। मिलिया वासुएव-वलएवहुँ' ॥३॥
तं णिसुणेवि दसाणण-भिच्चें। वुच्चइ पञ्चामुहु मारिच्चें ॥४॥
'एह अजुत्त वत्त पइँ अक्खिय। रावणु मुएँ वि ण अण्णहुँ पक्खिय ॥५॥
का वि अणङ्गकुसुम वलवन्तहों। दिण्णी खरेण धीय हणुवन्तहों ॥६॥
तं किं माम-वइरु वीसरियउ। जें पडिवक्ख मिलइ भय-डरियउ' ॥७॥
तो एत्थन्तरे भणइ विहीसणु। 'केत्तिउ चवहु वयणु सुण्णासणु ॥८॥
एवहिँ सो उवाउ चिन्तिज्जइ। लङ्का-णाहु जेण रक्खिज्जइ' ॥९॥
एम भणेवि चउदिसु ताडिय। पुरें आसालिय विज्ज भमाडिय ॥१०॥

घत्ता

तियसहु मि दुलङ्घु दिट्ठु माया-पायारु किउ।
णीसङ्कु णिसिन्दु रज्जु स यं भु ञ्जन्तु थिउ ॥११॥

अउज्झा कण्डं समत्तं !

●

आइच्चुएवि-पडिमोवमाएँ आइच्चम्विमाए (?)।
वीअमउज्झा-कण्डं सयम्भु-घरिणीएँ लेहवियं ॥

●

समुद्रसे भी प्रबल है। उसका एक-एक योधा असाध्य है। शम्बूकके घातसे क्या ? एक बूँद पानी सूख जानेसे समुद्रका क्या बिगड़ता है। यह सुनकर पंचमुखने हँसकर उत्तर दिया,"अरे, एक क्या कहते हो, अकेले ही वह हजारोंका काम तमाम कर देगा" ॥१-९॥

[१२] तब उसने और भी निवेदन किया, "दूसरोंके मुखसे मैंने यह सुना है कि जाम्बवंत, नल, सुग्रीव, अंग और अंगद प्रभृति जो कपिध्वज हैं, निसंदेह वे सब राजा विराधितके साथ, वन-वासमें ही राम और लक्ष्मणसे जा मिले हैं"। यह सुनकर रावणके अनुचर मारीचने पंचमुखसे कहा, "उन्हें रावणके सिवा किसी दूसरेसे नहीं मिलना था। खरने अपनी कन्या अनंगकुसुम हनु-मानको दी थी। क्या वह भी उसकी माताके शत्रुको भूल गया जो इस प्रकार डरकर प्रतिपक्षीसे जा मिला है"। तब बीचमें ही टोककर विभीषणने कहा—"खाली विचार करनेसे क्या लाभ, कोई उपाय सोचना चाहिए। जिससे लंकानरेश रावणको बचाया जा सके।" यह कहकर उसने आशाली विद्याको बुलाया और नगरके चारों ओर उसकी परिक्रमा दिलवा दी। इस प्रकार देवों द्वारा अलंघ्य दृढ माया प्राचीर बनवाकर निशाचरराज वह निश्शंक होकर राज्य करने लगा ॥१-११॥

अयोध्याकाण्ड समाप्त

आदित्य देवीकी प्रतिमासे उपमित स्वयंभू कविकी पत्नी आदित्य देवी द्वारा लिखित यह दूसरा अयोध्याकाण्ड समाप्त हुआ।



हमारे सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

उर्दू शायरी

१.	शेर-ओ-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
२.	शेर-ओ सुखन [भाग १]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
३.	शेर-ओ-सुखन [भाग २]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
४.	शेर-ओ-सुखन [भाग ३]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
५.	शेर-ओ-सुखन [भाग ४]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
६.	शेर-ओ-सुखन [भाग ५]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)

कविता

७.	वर्द्धमान [महाकाव्य]	श्री अनूप शर्मा	६)
८.	मिलन-यामिनी	श्री बच्चन	४)
९.	धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
१०.	मेरे बापू	श्री हुकमचन्द्र बुखारिया	२॥)
११.	पञ्च-प्रदीप	श्री शान्ति एम० ए०	२)

ऐतिहासिक

१२.	खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
१३.	खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
१४.	चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास	४)
१५.	कालिदासका भारत [भाग१-२]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	८)
१६.	हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन १-२	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

नाटक

१७.	रजत-रश्मि	श्री डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
१८.	रेडियो नाट्य शिल्प	श्री सिद्धनाथ कुमार	२॥)
१९.	पचपनका फेर	श्री विमला लूथरा	३)
२०.	और खाई बढ़ती गई	श्री भारतभूषण अग्रवाल	२॥)
२१.	तरकश के तीर	श्रीकृष्ण एम० ए०	३)

ज्योतिष

२२.	भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
२३.	करलक्खण [सामुद्रिकशास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	।।।)

कहानियाँ

२४.	संघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
२५.	गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
२६.	आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)
२७.	पहला कहानीकार	श्री रावी	२।।)
२८.	खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
२९.	अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३०.	जिन खोजा तिन पाइयाँ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
३१.	नये बादल	श्री मोहन राकेश	२।।)
३२.	कुछ मोती कुछ सीप	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
३३.	कालके पंख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३४.	नये चित्र	श्री सत्येन्द्र शरत्	३)
३५.	जय-दोल	श्री अज्ञेय	३)

उपन्यास

३६.	मुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
३७.	तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२।।)
३८.	रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)
३९.	संस्कारोंकी राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२।।)

संस्मरण, रेखाचित्र

४०.	हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४१.	संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४२.	रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
४३.	जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

सूक्तियाँ

४४. ज्ञानगङ्गा [सूक्तियाँ] — श्री नारायणप्रसाद जैन — ६)
४५. शरत्की सूक्तियाँ — श्री रामप्रकाश जैन — २)

राजनीति

४६. एशियाकी राजनीति — श्री परदेशी साहित्यरत्न — ६)

निबन्ध, आलोचना

४७. ज़िन्दगी मुसकराई — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ४)
४८. संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद — श्री अत्रिदेव 'विद्यालङ्कार' — ३)
४९. शरत्के नारी-पात्र — श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी — ४॥)
५०. क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ? — श्री रावी — २॥)
५१. बाजे पायलियाके घुँघरू — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ४)
५२. माटी हो गई सोना — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — २)

दार्शनिक, आध्यात्मिक

५३. भारतीय विचारधारा — श्री मधुकर एम० ए० — २)
५४. अध्यात्म-पदावली — श्री राजकुमार जैन — ४॥)
५५. वैदिक साहित्य — श्री रामगोविन्द त्रिवेदी — ६)

भाषाशास्त्र

५६. संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन — श्री भोलाशंकर व्यास — ५)

विविध

५७. द्विवेदी-पत्रावली — श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' — २॥)
५८. ध्वनि और संगीत — श्री ललितकिशोर सिंह — ४)
५९. हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान — श्री सम्पूर्णानन्द — १)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

